१

दोपहर की चिलचिलाती धूप, गरम हवा और लू के कारण सारा गाँव निर्जन रेगिस्तान सा मालूम पड़ रहा था। पशुपक्षी भी जैसे इस धूप और लू से जान बचाने के लिये इधर उधर कोनों में छिपे अथवा पेड़ों की छाया में पड़े संध्या के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। संध्या का आगमन दोपहर की लू और गरमी के कारण, प्राण-दायक आश्रय-दायक सा अनुभव होता था। ज़मीन गरम तवा सी तप रही थी, धूप की लहरें उठ उठ कर सारे वातावरण को आतप-पीड़ित कर रही थीं। यमुना भी शांत और स्थिर संध्या की शीतल छाया की मौन प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी उत्ताल तरंगें, आलोड़ित ऊर्मियाँ, मानो उसके सुखद अंक में छिप प्राण रक्षा कर रही थीं।

राही-बटोही तो क्या दिखाई पड़ते राह पर। सारा गाँव मानो सूरज के डर से घरों के भीतर समा गया था। केवल छबिया दरवाज़े पर खड़ी हुई सखी, लू और गरमी की परवाह न कर, किसी का इन्तज़ार कर रही थी। इस इन्तज़ार में ऊब भी रही थी, यह तो नहीं कहा जा सकता, हाँ उतावली ज़रूर हो रही थी वह। इसी समय तो रोज़ मदन इधर से गुज़रता था। बोला चाली न हो तो क्या, देख तो लेता था आँखें उठा कर उसकी ओर! यही क्या कम बात थी? वह आखिर आज क्यों नहीं आ रहा है? कब तक राह देखा करे! राह देखने की भी कोई हद होती है।

छबिया ने सोचा आज मदन दिखाई पड़े तो वह स्वयं बात करेगी। अब तक आँखों में बातें हो चुकी थीं लेकिन इससे जी नहीं भरता। मन की गाँठ खोलने की ज़रूरत थी। एक दो बात भी बोल दे तो अच्छा

हुआ । मन को ढाढ़स होगा और बोझ हलका हो जायेगा । लेकिन वह आवे भी तो !

इसी प्रकार सोचते सोचते घड़ी भर और वक़्त बीता लेकिन मदन दिखाई न दिया । अब मनको शांत रखना छबिया के बस के बाहर था । वह जैसे चीख़ पड़ना चाहती थी, जैसे ज़ोर से चिल्ला कर कहना चाहती थी, "आज ही देर करना था तुमको—आज ही जब कि मेरा मन उमड़ रहा है, जब मैं तुमसे बोलना चाहती हूँ । आते क्यों नहीं आख़िर !" छबिया की प्रतीक्षा, वेदना और उतावलेपन के कारण पीड़ा देने लगी । आँखों में निराशा और अस्थिरता की छाया साफ़ देख पड़ने लगी । वह अब लौट जाना चाहती थी अपनी कोठरी में । जिसमें मुँह ढँक कर रो ही ले । निष्ठुर अभी तक नहीं आया, ओह !

मतई चाचा खाँसते हुये उधर आये तो उसका ध्यान टूटा, सकपका गई । आगे बढ़ उन्होंने पूछ ही तो लिया, "क्या हो रहा है बिटिया, इस तपन लू में घर के भीतर बैठना चाहिये, यहाँ खड़ी होने से लू लगने का डर रहता है, जा भीतर बैठ !"

"हाँ, चाचा," छबिया ने सँभल कर कहा, "अभी अभी आई हूँ यहाँ, भीतर भी तो ठंढक नहीं, जैसे आग लग गई हो सब तरफ़ ।"

"बेटा, गरमी के दिन तो हैं ही, ये ही थोड़े दिन तपन के हैं । भगवान की कारसाज़ी आदमी क्या समझे । ऐसी तपन न हो तो धरती कैसे जले और बरसात में खेतों में हरियाली कहाँ से आवे ? तपन और धूप से जल कर धरती ऊपजे के लायक हो जाती है । पैदावार बढ़ जाती है ।"

"क्या सच चाचा ? तब तो यह गरमी-लू भी अच्छी चीज़ है," छबिया ने बात बढ़ाने के लिये कहा । उसे डर था कि चाचा ने उसे बहुत देर तक खड़ी देख लिया था, उन्हें भुलावा देने और बात टाल जाने के लिये बोली—"भगवान भी बड़े कारसाज हैं चाचा, धूप में जलाते हैं तो बरसात में ठंढा भी करते हैं ।"

परम भक्त मतई अपनी भतीजी की भगवद् भक्ति पर गदगद हो

गये। भगवान पर अटल निष्ठा, उनके न्याय पर अटल विश्वास और भक्ति-भावना ने मतई को गाँव भर का चाचा बना दिया था। जवानी में वह चाहे जैसे भी रहे हों, जब से कंठी ली, मछली छूने का नाम भी नहीं लिया, मद-ताड़ी की बात ही क्या? बिना जमुना स्नान कर जल चढ़ाये कुछ भी ग्रहण न करते हुये उन्हें बीस साल होने को आ गये। हाँ बीस और दस साल उनके इसी गाँव में बीत गये। यहीं का जल पिया यहीं का अन्न खाया। स्वयं निस्सन्तान थे। देवी देवता की पूजा करते करते थक गये। लेकिन भाग्य का लिखा कहीं मिट सकता है! भाई के बच्चों से नेह लगाया, ज़िन्दगी भर निबाहने की ठानी और निबाहते आ रहे हैं। भगवान का नाम लेना और अपने भाई के सन्तान के लालन पालन में अपनी निराशा और वेदना को भूलने की कोशिश करना, यही काम था मतई चाचा का। छबिया की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देख गद्गद् हो बोले—"बिटिया, भगवान के दरबार में देर है अँधेर नहीं। हम गरीब लोग पाप बहुत करते हैं। पाप का धन्धा, झूठ की कमाई! भगवान का कोप नहीं होता यही क्या कम है? प्रभू दयावान हैं। एक दफ़ प्रेम से सुमिरन करो तो वह पाँव-प्यादे भागे आते हैं, लेकिन किसी में इतनी भक्ति हो भी तो!" कहते कहते मतई चाचा ड्योढ़ी के भीतर आ गये। छबिया को भी उनके पीछे पीछे आना ही पड़ा। भीतर के आँगन में पहुँचने के पहिले उसने फिर घूम कर देखा शायद वह आता हो, लेकिन वह न दिखाई दिया, न दिखाई दिया।

शाम को जमुना जी की ओर छबिया चली तो उसका मन उदास था। दाहिने हाथ में बंसी लिये, बायें हाथ से साड़ी सँभालती, वह धीरे धीरे चली आ रही थी। बालू अब भी जल रहा था। पाँव पड़ते तो उठा लेने को जी होता। हवा अब भी गरम थी, लेकिन उतनी गरम नहीं। जमुना जी के नज़दीक पहुँची तो कुछ ठंढक मालूम हुई। पानी से भीजा बालू ठंढा हो चुका था। वहीं बैठ, बंसी लगा, चुपचाप, घुटनों के ऊपर सर रख, शून्य आँखों से डूबते सूरज की ओर ताकती

रही । पश्चिमी क्षितिज पर रंगीन बादलों की ओट में नीचे जाता हुआ, करुणा की मूर्ति सा सूरज जैसे अपनी करनी पर रो रहा था । दिन भर धरती जलाई, मानव, पशु पक्षी सबको तपाया और अब पछताता सा बादलों के पीछे छिपने की कोशिश कर रहा था । सतरंगे बादलों की छाया लहरों पर पड़ रही थी । जमुना मानो दो हिस्सों में बँट गई थी । पश्चिमी तरफ़ के पाट पर पीली चादर बिछ गई थी, पूर्वी पाट की नीलिमा और भी गहरी हो गई थी । लहरें उठतीं गिरतीं, कल कल करतीं बढ़ी जा रहीं थीं, अनवरत गति से । जैसे उन्हें छबिया का ध्यान ही न था । वे ऐसे ही चलती आई हैं, चलती जाएँगी । आकाश में पक्षियों का जोड़ा ऊपर ही ऊपर उड़ता चला जाता । जैसे वे देखते ही न हों कि नीचे भी कोई, उदास, हताश निरीह प्राणी मौजूद है । दल के दल पक्षियों को उड़ते देख, उसका मन भी उड़ने लगता जैसे उनके ही साथ भाग जाना चाहता हो । लेकिन तुरत ही जैसे किसी बोझ से दबा रह नीचे आ गिरता । अवसाद की प्रतिमा छबिया गहरी साँस छोड़ देती ।

न मालूम उसे क्या हो रहा था । क्या सोच रही थी, यह भी उसे पता न था । क्या चाहती थी, वह बता नहीं सकती थी । लेकिन चाहती कुछ ज़रूर थी । बंसी में बोझ मालूम पड़ा तो उसका ध्यान बँटा । सँभाल कर झटका दिया, एक छटपटाती चमकती मछली बाहर आ गई । छबिया ने उसके मुँह से काँटा छुड़ाया और पास के छोटे से बालू के गड्ढे में उसे डाल दिया । बंसी में आटा लगा, उसे फिर पानी में डाल, बंसी को सजगता से पकड़, वह पुराने आसन से बैठ गई । कुछ देर तक मछली को देखती रही, फिर उसे उठा लिया । हाथ में आते ही मछली छटपटाने लगी । वह बार बार बालू पर आ गिरती और छबिया उसे हाथ में उठा लेती । छटपटाती मछली को देख उसे अच्छा लग रहा था । उसी से खेलते खेलते वह फिर उदास होने लगी । जैसे छाती के भीतर टीस सी, दर्द सा, उठ रहा था । मछली को बालू के गड्ढे में डाल, वह अपनी छाती को घुटनों से दबा, लहरों की ओर

देखने लगी । मछली के साथ खेलने में उसका मन बहलने वाला ही था कि उसे दर्द का अनुभव हुआ । दर्द ज़्यादा न था, हल्का सा, ज़रा ज़रा हो रहा था । लेकिन छुनिया बेचैन थी । थोड़ी देर और बैठ छुनिया चलने को तैयार हुई । बंसी समेट, मछलियों को ले, वह वापस जाना ही चाहती थी कि कोई आता दिखाई दिया । उसने आँखें गड़ा, ध्यान से देखा, मदन ही था । वह हर्ष विह्वल थी या भयाकुल—बहर हाल, उसके दिल की धड़कन बढ़ गई थी । झट उसी जगह बैठ गई और बंसी पानी में डाल, सिर नीचा किये उसी ओर देखने लगी ।

मदन, मझोला बदन वाला अलमस्त जवान था । नाव चलाने से उसकी बाहुओं की माँस पेशियाँ उभर आई थीं । कुर्ता, ऊँची धोती और सफ़ेद टोपी पहिने खूब फबता था । छुनिया ने देखा वह उसी की ओर बढ़ता आ रहा है । वह सिमट कर बैठ गई, जैसे अपने में ही सिकुड़ जाना चाहती थी । कैसे बोलेगी, क्या कहेगी, वह क्या कहेगा…!

मदन ने पास आ पूछा—"अरे रात भर मछली ही पकड़ी जायेगी ! अँधेरा हो रहा है, अब तो बस करो ।" छुनिया काँप गई, कुछ बोलना चाहती थी, पर बोले कैसे ? मदन पास खिसक, बालू पर बैठ, पानी में अपने पाँव डाल, बीड़ी सुलगाता हुआ बोला—"अरे कुछ बोलोगी भी, यहीं बीड़ी पीता यूँ ही ताकता रहूँ ?"

"क्या बोलूँ" लजाती हुई छुनिया इतना ही कह पाई, जैसे उसका गला रुँध रहा हो ।

"कुछ बोलो," बीड़ी का कश खींचते हुये मदन बोला—"तुम्हारी मीठी बातें सुनने के लिये ही तो यहाँ आया हूँ । दिन भर आज काम में फँसा था, बड़ी मुश्किल से विनय बाबू के पास जा पाया, वापस लौटकर इधर आ निकला । सोचा दोपहर में दरशन नहीं मिला तो साँझ को ही सही ।"

"ड्योढ़ी पर खड़ी खड़ी मेरी आँखें पथरा गईं ।"

"माफ़ करना, इन्तज़ार करना पड़ा, मगर विनय बाबू के पास जाना ज़रूरी था, कल ही बैठक है । बातें करनी थीं ।"

"तुम विनय बाबू से बातें करो और मैं पंथ निहारूँ ।"

"अच्छा, जाने दो छबी, बताओ, चाचा की क्या राय है। कुछ सुनगुन मिला।"

"कैसी राय ? हम क्या जानें ?"

"दादा कह रहे थे, मतई चाचा यह सम्बन्ध नहीं चाहते। गाँव की लड़की गाँव में ही रहे यह उन्हें पसन्द नहीं।"

"तब क्या होगा ?"

"क्या बताऊँ, कोई उपाय बताओ"

"उपाय, उपाय क्या है ? चाचा की बात सब के ऊपर। बाबा तो उनके सामने बोलते नहीं, और लोगों कि बिसात ही क्या ? कोई मुझसे पूछे तो बताऊँ ?"

"क्या बताओगी ?"

"यही कि मुझे ब्याह नहीं करना है। जो मरद ब्याह के पहिले इतना बेवफ़ा है, वह ब्याह के बाद क्या करेगा ?"

मदन झेंप गया। छबिया इतनी बातूनी है इसका उसे पता न था। रुक कर बोला।

"ब्याह से बाद क्या करेगा ? और भी बेवफ़ा हो जायेगा।" छबिया चुप रह गई, जैसे उसे भरपूर जवाब मिल गया।

"इसीलिये तो कहती हूँ, मैं ब्याह न करूँगी ऐसे बेदरद से" वह मुस्कराती हुई बोली।

"नहीं सच, छबिया, मेरा जी डर रहा है। दोपहर में मिलना तो तुमसे ज़रूर यही कहता। थोड़े दिन और बाकी हैं। साइत निकल जायेगी तो जाड़ों तक इन्तज़ार करना होगा। तब तक जाने क्या हो। किसी उपाय से जल्दी कर सको तो कितना अच्छा हो।"

"तो क्या चाचा से मैं खुद कहूँ। उनके मन जो भावेगा वही करेंगे वे। कहते हैं चीज़-वस्तु का बन्दोबस्त करना होगा, रुपयों का इन्तज़ाम करना होगा, महँगी का जमाना है। कैसे इस उतावली में सब होगा।"

"बाद में दादा ही नहीं कर दें तब तो और गुड़ गोबर हो जायेगा। आज तो ये तैयार भी हैं, कल दूसरे किसी ने जोर मारा और दादा ने हामी भर ली, तब तो जिन्दगी भर को रोना रह जायेगा। छबी, मेरा मन डरता है। अगर यह गरमी टली तो फिर आगे नाउमेदी ही समझो।" उदास हो मदन ने कहा।

छबिया चाचा की आना-कानी सुनती ज़रूर थी लेकिन उसका इतना गंभीर नतीजा होगा, यह उसकी समझ में नहीं आया था। मदन की बात सुन कर वह काँप गई। इस कठोर सत्य के सामने उसके भविष्य के सपने धूल से उड़ते दिखाई देने लगे। वह चुप बैठी रही खिन्न और दुखी होकर।

मदन ने मौन तोड़ने के लिये फिर बीड़ी जलाई और दिया सलाई के प्रकाश में उदास खिन्न छबिया की रुआसी सूरत देख उसका मन जाने कैसा होने लगा। बीड़ी का कश खींच अपनी उदासी को धुँआ के साथ उड़ाने की कोशिश करता हुआ बोला,

"कोई बात नहीं छबिया, तुम परेशान न हो, हो सका तो मैं खुद दादा से कहूँगा। अगर मेरी बात मान वे चाचा से बातें करने को तैयार हो जायेंगे तो ठीक है वरना···।"

"वरना···क्या होगा?"

"होगा क्या, सब अच्छा होगा। मैं पूरी कोशिश करूँगा, तुम घबराओ नहीं" कहते हुये मदन उठने लगा। छबिया भी उठ खड़ी हुई। मदन ने चाहा, छबिया को अपने हाथों में ले, अपनी ओर खींच, दबा ले।

अँधेरा बढ़ता जा रहा था। आसमान में तारे झिलमिला रहे थे। लहरों के कलकल के अलावा पूर्ण शान्ति का साम्राज्य था। दो तरुण हृदयों की धड़कन साथ-साथ बढ़ती जा रही थी। पास में सटकर खड़े होने से दोनों की साँसे भी मिलती जा रही थीं। मदन ने काँपते हाथों में छबिया को समेट लिया। लड़खड़ाती छबिया उसके अंक में आगई। ओठों में थोड़ा ही अन्तर रह गया था कि छबिया ने भर्राई आवाज़ में

धीमे से कहा, "अभी नहीं, फिर कभी।" मदन रुक गया। अपने को रोक ले गया और धीरे धीरे दोनों कुछ अलग हो गये।

"छबी, माफ़ करना, ग़लती इन्सान से ही होती है" मदन ने शर्म से आहत हो, क्षमा याचना की मुद्रा में कहा, जैसे वह कोई बड़ी ग़लती करने जा रहा था।

"चलो, बड़े वैसे हो" कह छबिया चुप हो रही। वह निश्चय न कर सकी थी कि मदन को रोक उसने अच्छा किया या नहीं। अपनी करनी पर उसे पछतावा हो रहा था।

दोनों गाँव की ओर धीरे धीरे चले। दोनों मौन थे। दोनों ही यह समझने में असमर्थ थे कि क्या बातें की जायँ। ओंठ खुल खुल कर बन्द हो जाते। बातें ज़बान पर आतीं, ओंठों से टकरातीं, वापस चली जातीं। यह मौन टूटा उस समय जब गाँव पास आ गया।

"अब जाओ, नहीं, कोई देख लेगा।" छबिया ने कहा।

"अच्छा, कल मिलेंगे, यहीं जमुना तट पर, इसी समय। मैं नाव लेकर आऊँगा।" मदन ने विश्वास दिलाया।

"नाव लेकर आओगे, किस लिये?" आल्हाद, विस्मय और संकोच की मूर्ति छबिया ने संशक भाव से पूछा।

"योंही, ज़रा घूमेंगे" मदन के स्वर में उल्लास था।

"अच्छा कल जरूर ..."

"हाँ ज़रूर" कहते हुये मदन दूसरी पगडन्डी पर हो लिया, रुक कर बीड़ी जलाई और तेज़ क़दम बढ़ाता हुआ निकल गया।

छबिया थकी थी। उद्भ्रान्त सी धीरे धीरे दाहिने हाँथ में बंसी, बायें हाँथ से भीगे आँचल में मछलियाँ सम्भाले, अपने घर की ओर चली जा रही थी। पाँव तो ज़रूर बढ़ते जा रहे थे घर की ओर लेकिन आँखे उसी ओर लगी हुई थीं; उसी ओर जिधर से होकर मदन चला जा रहा था।

× × ×

मतई और कन्हई दोनों भाइयों में स्नेह बहुत था। मतई बड़े थे

और सन्तान हीन। उनकी स्त्री भी अब नहीं रही थी। अपने छोटे भाई की औलाद का मुँह देख ज़िन्दगी के बाक़ी दिन गुज़ारे जा रहे थे। कन्हई के मन में अपने भाई के लिये आदर का भाव था। इसीलिये अधिक बातचीत दोनों में न हो पाती थी। रात को खाना खा, चिलम जला, भाई के पास ही बैठ, कन्हई ने संकोच से पूछा—"भैया, कुछ सोच विचार लिया कि अभी नहीं; आज सबेरे रामदास मिले थे। कह रहे थे, अच्छा है जल्दी सब काम निपट जाय। देर करने से क्या फ़ायदा।"

"मैं कुछ नहीं कहता, देखो छबिया की शादी में अपना अरमान निकालना चाहता हूँ। भगवान की मर्ज़ी हुई तो गाँव भरके लोग देखेंगे, कि छबिया की शादी कितनी शान से होती है। लेकिन तुम्हीं बताओ इतनी महँगी है। रुपया पैसा का भी परबन्ध नहीं, इतना बड़ा काम कैसे उठाया जाय सिर पर। कुछ समय भी तो चाहिये।" मतई ने अपने छोटे भाई को समझाने की कोशिश की।

"तुम्हारी जैसी मरजी, बात यह थी कि शुभ काम जितनी जल्दी हो जाय अच्छा है। छबिया की माई भी यही चाहती थी और......"

"और तुम भी यही चाहते हो, करो जैसा चाहो। छबिया की माई को कुछ इन्तजाम तो करना नहीं है। बस शादी हो जाय। अरे, शादी ब्याह भी कोई खेल तमाशा है।"

"भैया, सो तो तुम ठीक कहते हो। लेकिन छबिया की उमर, देह सब कुछ देख, जल्दी करना ही वाजिब मालूम होता है। आगे फागुन तक इन्तज़ाम हो जायगा, इसका विश्वास कैसे हो। उधार बाढ़ी से इस समय भी काम चलेगा, उस समय भी। इतने दिनों में रुपया बरसेगा तो नहीं। मछली पर कन्टरोल की खबर है। अगर ऐसा हुआ तो चार पैसे की आमदनी का ज़रिया भी खतम हो जायेगा। सोच-विचार लो, करना सब तुम्हीं को है।" कन्हई ने युक्ति-संगत बात कही।

मतई ने सिर हिलाया जैसे बात उनकी समझ में आ रही है। उसने कहा, "अच्छा, फिर जैसा चाहो। रामदास से साइत बाइत की बातें तय कर लो। भगवान का नाम लेकर काम शुरू करो बेड़ा पार

२

लग ही जायेगा।" मतई ने आशीर्वाद दिया।

भीतर बैठी छबिया की मां सब बातें गौर से सुन रही थी। उसे मतई का बार बार टालने की बातें करना अच्छा नहीं लग रहा था। जब मतई ने हामी भर ली तो उसके मन का बोझ उतर गया। 'पहिली शादी थी घर में, उछाह-बधाव में कमी नहीं होनी चाहिये। उसके घर की नाक इसी बात में है कि गाँव-गिराँव के लोग वर को देख, ब्याह में हिस्सा लें, वाह वाह करें। बदनामी की बात नहीं होनी चाहिये चाहे खरच कुछ भी पड़े। ऐसा सुभ मौका कोई रोज रोज थोड़े ही आता है।' छबिया की माँ सोचती जा रही थी। 'मदन अच्छा लड़का है। आस पास कोस दो कोस में उसके मुकाबिले का कोई और पट्ठा नहीं। चलता है तो छाती उभरी रहती है। मुदा है सीलवान। आँखें ऊपर उठाते किसी ने नहीं देखा। सभी उसका गुन गाते हैं। रामदास चौधरी भी कोई ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं। बात के धनी, वादा के पक्के। कह देंगे सो करेंगे। तभी तो ऐसा लड़का जनमा है, जैसा बाप वैसा बेटा। छबिया के भी भाग खुल गये। बिचारी को हम लोग क्या सुख दे सके। दो जून रोटी देते गये, बस किसी तरह जीती रही। चूनी भूसी से कहीं सरीर बनता है। अब चौधरी के घर उसका मान जान होगा। गुन सहूर से सबका मन जीत लेगी। भगवान ने चाहा तो उसके भाग खुल जायेंगे।' मंगल-कामना और आशीर्वादों का मूक बरदान देती हुई छबिया की माँ सोने चली गई।

कन्हई भी अपनी खाट पर जा पड़ा और खर्राटे भरने लगा। लेकिन मतई का जी भारी था। कन्हई की बात वे टाल न सके, हामी भर ली। अब क्या होगा, कैसे होगा!

साँझ हुई तो छबिया फिर जमुना किनारे बंसी लिये आ पहुँची। बंशी पानी में डाल मदन का इन्तज़ार करने लगी। दिन पहाड़ हो गया था। रोज़ दोपहर उसे देख लिया करती। लेकिन आज दोपहर में न आने को कह गया था। इसलिये कोई उमेद न थी। फिर भी उसे लगता था कि शायद आ ही जाय, कौन जाने। इस लिये बार बार

दरवाज़े पर आ, थोड़ी देर रुक, राह देख, भीतर चली जाती। अन्दर बाहर आने जाने का यह क्रम तब टूटा जब साँझ होने को आई। इसी तरह रात भी उसकी बेहाली में कटी थी। चाचा और बाबा की बातें वह सुन चुकी थी। बातें सुनते समय उसके मन में गुदगुदी उठ रही थी। जब चाचा ने हामी भर ली और दोनों भाई सोने चले तो छबिया को विश्वास हो गया कि अब किसी गड़बड़ी का ख़तरा नहीं है। चाचा ही बाधक थे, सो बाधा भी दूर हुई और अब ब्याह होने में रुकावट नहीं आयेगी। सोचते सोचते मदन का साँवला सलोना रूप सामने आ गया। गठीला बदन, उभरी छाती, मोटे मोटे पट्ठे, कितना रोबीला मालूम पड़ता है! सीधा भी कितना, जरा सी नाहीं की और मान गया। लेकिन पुरुषों के ये लच्छन भी क्या? उसे ऐसे मान लेना नहीं चाहिये था। जोर जबरदस्ती भी होनी चाहिये। कौन मैं सचमुच मना कर रही थी। डरता था मैं बिगड़ न जाऊँ, बुरा न मान जाऊँ। लेकिन बुरा मैं क्यों मानती! मेरा भी तो जी चाहता था, मैं भी तो चाह रही थी कि वह मुझे प्यार करे—हाथों से, ओटों से... .....

छबिया सोचती जा रही थी, 'ब्याह, कितनी अच्छी चीज है। हँसना बोलना, चुहल करना, रूठना-मनाना—कितना मजा आता है।' उसके हाथ-पाँव चंचल और ढीले होते जा रहे थे। आँखों में खुमारी का सा नशा, कुछ भारीपन लिये हुये। दिल में धड़कन कुछ टीस-पीड़ा लिये हुये! माथे में सनसनाहट, नसों में सनसनाहट—सारे शरीर में जैसे कुछ हो रहा हो। और वह सोचती जा रही थी, अभी वह आयेगा, नदी के किनारे इस सुनसान में वह मुझसे मिलेगा, घुल मिल कर बातें होंगी, फिर नाव में बैठेंगे, बैठने के पहिले मैं 'ना' कहूँगी, वह जिद करेगा। मैं मान लूँगी, वह खुश हो जायेगा। फिर साथ नाव चलाई जायेगी, एक डाँड मेरे हाथ में एक उसके! और फिर इन डाँडों के सहारे, लहरों को चीरते, थपेड़ों को दबाते, नाव चलाते हम इधर से उधर, उधर से इधर घूमेंगे। इस रात में, इस सूने में, इस नदी की गोद में, इन झिलमिलाते तारों को गवाह बना, इन लहरों की

सौगन्ध दिला, पूछूँगी, 'बाँह पकड़ते हो, निबाहोगे ? अपनी कहते हो, भार समझते हो ? बोझ उठेगा, दम है ? समझ सोच कर बोलो, धोखा तो नहीं दोगे।' तब वह 'हाँ' कहेगा और मैं उसका पैर चूमूँगी, हाथ चूमूँगी, माथा चूमूँगी। वह मुझे गोद में ले, प्यार से, दुलार से, ठोढ़ी छू, ऊपर उठा, आँखों में आँखें डाल पूछेगा, 'तुम मेरी रहोगी, निबाहोगी,' तो मैं झेंप जाऊँगी। लेकिन किसी न किसी तरह कहूँगी जरूर 'हाँ'।

वाह्य वातावरण को भूलती सी छबिया की भावनायें अन्तर्मुखी होती गईं, 'मदन' मेरे मन का राजा है, सपनों का देवता है, आशाओं की पूर्ति है। वह मेरा होगा तो मुझे क्या न मिल जायेगा ? मैं और मेरा मदन ! लेकिन मेरी माँ, बाबा, चाचा और मेरा घर द्वार ! मेरी सखी सहेलियाँ ! मेरा बचपन और मेरा भोला यौवन, ऊँह ! क्या करूँ ? मन ऐसा क्यों हो रहा है ? यह भारी पन, यह उदासी क्यों ? इस आवेग, उल्लास, उत्कण्ठा के समय मन में उदासी ! छबिया जैसे समझ न पाई यह क्या हो रहा है। उसका मन बैठा क्यों जा रहा है। अभी तक नवीनता की प्राप्ति का उल्लास था, उत्साह था अब, अब तक के जीवन से वियोग के आभास की पीड़ा और उसका भार ! दोनों का संयोग छबिया के मन को मथे डाल रहा था। लगा, जैसे सभी अभी छूटे जा रहे हैं, अब वे न मिलेंगे। एक विरोधाभास, एक द्वन्द्व, एक संघर्ष का अनुभव करती छबिया ऐसी हो रही थी जैसे कुछ समझ अथवा सोच सकने की उसकी सामर्थ्य विलीन हुई जाती हो। सामने लहरें आमोद प्रमोद मनाती चली जा रहीं थीं। उसके हाथ की बंशी स्थिर यों ही पानी में पड़ी हुई थी। संध्या का अंधकार गाढ़ा होता जा रहा था। उधर, दूर, क्षितिज के पास उठता चाँद मानो छिप जाने की कोशिश कर रहा था, और आसमान के सितारे विद्रूप की सी हँसी हँस रहे थे। छबिया और भी उदास हो चली। एक अप्रत्याशित भय और आकुलता का संचार उसके रोम रोम में हो चला। अतीत, वर्तमान, भविष्य के मेल ने उसे अवाक, चकित, उद्भ्रान्त और किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया। उसका

मन जैसे किसी का सहारा पाने, किसी के सहारे अपना बोझ हल्का करने के लिये व्याकुल हो उठा। छबिया अब क्या करे ?

मदन अब भी न आया। नदी की ओर ताकते ताकते उसकी आँखें थक गईं। सोचा शायद अब न आयेगा। लेकिन दूर, उधर से नाव ही शायद चली आ रही थी। मदन डाँड़ें मारता तेज़ी से नाव लिये चला आ रहा था। छबिया के शरीर में रोमांच होने लगा। मन की गुदगुदी जाग उठी और आँखें उघार वह एक टक तेज़ी से बढ़ी आती नाव और जल्दी जल्दी डाँड़ें मारते हुये मदन की ओर देख रही थी कि नाव पास पहुँच, किनारे आ लगी।

"आओ छबी," मदन के शब्दों में उल्लास से भरा आग्रह था।

छबिया अपनी सारी बातें, सारे मंसूबे भूल गई और बंसी बाहर निकाल, ज़मीन पर रख, मदन का सहारा लेती, नाव में कूद गई। दोनों ने अपनी अपनी डाँड़े सम्हालीं और नाव द्रुतगति से जमुना के बीच की ओर चल निकली।

"देर हो गई जरा, क्या बताऊँ ऐसा काम लग जाता है। इन्तजार तो बहुत करना पड़ा तुमको।" क्षमा याचना की मुद्रा में मदन ने कहा।

"जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलती। इतनी देर लगा दी! घर कब जाऊँगी? तुम जाने क्या क्या करते रहते हो। अब देखो, यह काम वह काम। शाम से बैठी बैठी थक गई।" छबिया मान करती, झूठा क्रोध जताती बोली।

"अच्छा बताओ, क्या हुआ। कुछ चर्चा आया था घर में।"

"हाँ, बाबा ने चाचा को ऊँचा नीचा समझाया तो चाचा भी राजी हो गये। मैं सब सुन रही थी। बाद में वे बंदोबस्त की बातें कर रहे थे।"

"तब क्या फिर! अब हमारी मनो कामना पूरी होगी। अब तुम हमारी हो जाओगी—क्यों छबी!" मदन ने सर उठा छबिया की ओर ज़रा खिसक, प्रसन्नता से कहा, जैसे उसके अरमानों के पूरे होने

की सूचना मिल गई हो।

छबिया कुछ न बोली। बोलती भी क्या ? कैसे बोले ?

"क्यों, चुप क्यों हो गई, कुछ बोलो ना।" मदन ने आग्रह किया।

"क्या बोलूँ।"

"अच्छा बताओ, तुम्हें चाचा की बातें अच्छी लगीं। जब उन्होंने 'हाँ' कहा तो तुम्हें कैसा लगा ?"!

"कुछ नहीं लगा, न अच्छा न बुरा, हाँ नहीं तो।"

"अब हम तुम साथ साथ अपनी जिन्दगी बिता देंगे। तुम मेरी मदद करना, मैं तुम्हारी। जैसे इस समय दोनों की मदद से यह नाव चल रही है। करोगी ?"

"हाँ।"

और, उधर ज़रा सा चाँद आसमान में ओझल होने जा रहा था। तारों की चमक वैसी ही थी। मदन ने हाँथ उठा, उंगली से इशारा करते हुये कहा, "छबी वह चाँद डूबने जा रहा है। आज की उसकी जिन्दगी समाप्त हुई। कल वह फिर पैदा होगा, आसमान में चमकेगा, लेकिन और बड़ा होकर, अधिक उत्साह से। देखती हो ?"

"हाँ।"

"और हमारे अरमानों का चाँद। वह भी चमकेगा, दिन पर दिन अधिक जोत वाला हो कर।"

"हाँ।"

"तो फिर उसी चाँद से प्रार्थना करो, इन्हीं तारों का सौगन्ध लो, जमुना मैया को याद करो और करो 'हम एक हों, एक रहें,'" मदन का स्वर भर्रा उठा। गला रूँध गया। आगे वह बोल न सका।

छबिया ने हाँथों में आँचल ले, मूक हो, आसमान की ओर देखा, जैसे वह अपने अचल सोहाग की याचना नभ के चाँद और तारों से कर रही हो !

२

पंडित नरोत्तम प्रसाद गांधीवादी राष्ट्रभक्त थे। अपने जीवन को सादा, सच्चा और परिश्रमशील बनाये रख वे आसपास के लोगों के लिये आदर्श बन गये थे। प्रातः स्नान-ध्यान, गीता पाठ के बाद नियम से एक घण्टा चर्खा चलाते। फिर अपने दैनिक कार्यों में लग जाते। मितभाषी थे, प्रसन्नमुख। ज़िन्दगी में कभी किसी की बुराई याद रहते नहीं की। लोकसेवा, लोककल्याण और लोक-आराधना में अपनी घड़ियाँ व्यतीत करते। 'उपदेश' उनका साप्ताहिक पत्र था। 'उपदेश' के अंकों में 'सदाचार' 'ब्रह्मचर्य', 'अपरिग्रह', 'अनासक्ति योग', 'अहिंसा 'स्वदेशी' आदि विषयों पर सदा ही विशेष लेख रहा करते थे। समाज में इन लेखों का बड़ा सम्मान था। पढ़ी लिखी जनता इन्हें बड़े चाव से पढ़ती और 'उपदेश' की फाइलें बड़े जतन से रखती। 'कहाँ मिलेंगे ऐसे शान-गरिमा-पूर्ण लेख, ऐसे अमूल्य रत्न' जनता सोचती। प्रत्येक आन्दोलन में जेल जा और हमेशा सी क्लास में ही सज़ा काट उन्होंने अपने को ग़रीबों का हमदर्द साबित कर दिया था। बाहर भी 'हरिजन सेवा', 'ग्रामोद्धार' आदि आन्दोलनों में बराबर हिस्सा लिया करते। 'हिन्दू मुस्लिम एकता' के लिये तो वे प्राण देने को तैय्यार थे। कितनी बार छुरा खाने से बच गये, लेकिन अटूट लगन और निर्भीकता के कारण वे पीछे कभी न भागे, आगे ही डटे रहे। नगर में उनका नाम श्रद्धा से लिया जाता, घर घर में उनकी पूजा होती।

पंडित जी को माधोपुर के लिये बड़ा दुख था। जमुना की तरेटी में बसा हुआ यह गाँव प्रकृति की गोद में खेलते हुये पुष्प की भाँति था। दक्षिण की ओर जमुना, उत्तर शहर की बस्तियाँ, पूरब-पश्चिम में बड़े-बड़े रेतीले मैदान। बीच में काफ़ी ऊँचाई पर बसा यह गाँव बहुत भला मालूम पड़ता था। सामने से एक नाला बहता जमुना में जा मिलता। एक दो बनियों और कंधी गढ़ों के मकानों को छोड़ सभी मकान कच्चे थे। पाँच सौ घरों की बस्ती, सभी नीची जाति के। गाँव के ज़िमीदार

बूढ़े, दयानतदार, भले आदमी थे। मल्लाहों की संख्या सबसे अधिक थी। रहे होंगे कोई साढ़े तीन सौ घर। सौ घर कंचीगढ़ और बाकी पचास में दूसरी जाति के लोग। मल्लाह शराब पीते, जुआ खेलते, दूसरों की बहू-बेटी ताकते और आपस में लड़-झगड़, मारपीट कर जेल की हवा भी खा आते। आये दिन पुलिस-थाना के मारे अच्छे भले आदमियों के नाकों दम लगा रहता। गवाही साखी, जर जुर्माना, थुक्का-फजीहती, यही रोज़ का काम था। मज़ा मारते और लोग, परेशान होते गाँव के शरीफ़ सीधे आदमी।

पंडित जी ने बड़ी कोशिश की कि इस गांव में सुधार हो, लोग अपना आचरण सँभाले, राम का नाम लें, मेहनत की रोटी खाँय, एक दूसरे के काम आयें और शान्ति पूर्वक इह लोक लीला समाप्त करें। इसी बात के लिये उन्होंने माधोपूर में 'ग्राम-पंचायत' खोली और गांव वालों को बटोर उसका सदस्य बनाया। घर पीछे दो पैसा महीनवारी चन्दा बाँध दिया। गाँव के लड़कों के लिये पाठशाला खोलवाई और सोचा धीरे धीरे लोग चेतेंगे तो स्वयं ही सुधार की ओर अग्रसर होंगे।

लेकिन गाँव वाले न सुधरे, न सुधरे। पुलिस से दुश्मनी ली, उनकी आमदनी मारी जाती थी। अफ़सरों से बुरे बने और गाँव के कुछ लोगों से हमेशा के लिये खटक गई। फिर भी पंडित जी का उत्साह ढीला नहीं हुआ। उनको मनुष्य की दैवी वृत्तियों में विश्वास था। समझते थे आज इनकी ज्ञान की आँखें बन्द हैं। जब चेतेंगे, बुरा भला समझेंगे तो स्वयं ही सुधर जाएँगे। पाशविक वृत्तियाँ तो देवताओं पर भी हावी हो जाया करती हैं। ये बेचारे निरीह प्राणी, अनपढ़, मूर्ख-गँवार, पेट के गुलाम, दाम के लोभी, काम के कठपुतले क्या जानें शुचिता, पवित्रता, महानता क्या है? अरे, दिन भर मेहनत किया, मछली मारी, नाव चलाई, थक के चूर हो जाते हैं। अपनी मुसीबतें, परेशानियाँ, थकान भुलाने, ग़म ग़लत करने के लिये शराब पीते हैं। नशे में अच्छे बुरे का ज्ञान ही कहाँ रह जाता है? मति भ्रष्ट हो जाने पर जुआ खेलना, दूसरे की बहू बेटियों पर निगाह डालना

उन पर हाथ लगाना, यही तो बाक़ी रह जाता है। उन्हें दुख था कि समाज की मूल में कुठाराघात करने वाली ये प्रवृत्तियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। फिर जो सजग हैं, समझते हैं, उन्हें भी चुप हो बैठ रहना नहीं चाहिये। समझ बूझ कर चुप रह जाना पाप है। इस पाप के भागी बन अपना दोनों लोक बिगाड़ना पंडित जी को मूर्खता जान पड़ती। इसलिये अनेक बार हताश होने पर भी, बारबार मुसीबतों के जाल में फँसने के बावजूद भी पंडित जी उद्धार कार्य में जुटे ही रहे।

ग्राम पंचायत की बैठक पंडित जी की बगिया के बीच में स्थित पक्के फ़र्श पर होती। छोटा सा ज़मीन से एक फ़ुट उठा हुआ चबूतरा था। ऊपर छप्पर छाया हुआ था। खंभों के सहारे लतरें चढ़ी हुई थीं। बगिया का दृश्य मनोरम था। फाटक से भीतर घुसने पर, दाहिने हाँथ, ऊँचा, बड़ा सा मैदान था। जिसमें करीने से फुलवारियाँ लगी हुई थीं। सुन्दर फूलों की क्यारियाँ, बीच बीच में नालियाँ, एक कोने में पक्का कुआँ और रस रस कर पानी का चारों ओर दौड़ना भला लगता था। हर प्रकार के फूल थे। गुलाब, गुलनार, गुलशब्बो, गेंदा, खसखस, हरसिंगार आदि। किनारे किनारे मेंहदी की हरियाली थी गाढ़ी सी। तितली और भवरों की दौड़धूप की सरगर्मी से बगिया की शोभा दूनी हो जाती।

पश्चिमी किनारे पर 'उपदेश' प्रेस था, बग़ल में दफ़्तर और उससे हटकर पंडित जी के बैठने का कमरा। कमरे की सजावट, सफ़ाई, सादगी और रुचि का प्रमाण थी। औसत दर्जे का कमरा, कोई अठारह फीट लम्बा और १२ फीट चौड़ा। कमरे में सफ़ेद पुताई थी। चारों दिवारों पर गाँधीजी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जवाहर लाल नेहरू और मौलाना आज़ाद के चित्र लटक रहे थे। एक कोने में दो ट्रंक बड़े, एक ट्रंक छोटा, बगल में बँधा हुआ बिस्तर, कोने में खड़ी पतली छड़ी, पास ही में चर्खा और ऊपर खूँटी पर सुफ़ेद कुर्ता, टोपी और धोती टँगी हुई। दरवाज़े के पास पावदान बिछा था। खिड़कियों पर हरे रंग के खद्दर के पर्दे। खिड़की से सटकर तख़्त बिछा था जिस पर पतला तोशक, सफ़ेद चदरा बेदाग़ फैला हुआ था। चदरे में शिकन कहीं न

थी। सिरहाने सुफ़ेद, सादे, झालरदार गिलाफ़ से ढँकी तकिया थी जिस की बग़ल में चश्मे का केस और चाभियों का गुच्छा था। कमरे की सादगी बताती थी कि पंडित जी सात्विक पुरुष हैं।

पंचायत की बैठक छः बजे से होने वाली थी। प्रेस के काम से ख़ाली हो पंडित जी कमरे में आये। नौकर से चबूतरे पर पानी छिड़क बिस्तर बिछा देने को सहेज, पंडित जी आराम करने के लिये लेटे ही थे कि विनय आता दिखाई दिया। विनय चौबास पच्चीस बरस का गोरे रंग और एकहरे बदन का सुन्दर जवान था। आँखें बड़ी थीं जिनसे ज्योति सी निकलती रहती। बाल सूखे बिखरे हुये। साइकिल एक तरफ़ रख, वह पंडित जी की ओर बढ़ आया। पंडित जी ने उसका अभिवादन किया और बैठने का इशारा कर ज़रा लेट से गये।

"अभी आप प्रेस से आये हैं मालूम होता है।" विनय ने ऐसे पूछा जैसे उसने इस समय आकर पंडित जी को नाहक परेशान किया।

"नहीं, कोई बात नहीं, ज़रा थक जाता हूँ। आज देर भी हो गई। बृहस्पति के बाद, कुछ काम बढ़ ही जाता है। अंक की तैयारी करनी पड़ती है न ? अकेले काम सँभलता नहीं।" विनय की व्यग्रता दूर करने की कोशिश करते हुये पंडित जी ने कहा।

"थक तो आप ज़रूर जाते होंगे ? किसी सहकारी को क्यों नहीं रख लेते ? आपका बोझ ज़रा हलका हो जाता।" विनय ने सम्मति दी।

"यह बात ठीक है। लेकिन 'उपदेश' से इतनी आमदनी ही नहीं होती कि पूरा ख़र्च चल सके। हमेशा किसी न किसी से सहायता लेनी पड़ती है। सहकारी रखने का अर्थ है पचास-पचहत्तर का व्यय और बढ़ाना। जब तक ग्राहक संख्या न बढ़ जाय सहकारी रखना असम्भव है।" उदास हो पंडित जी ने कहा।

"'उपदेश' तो बड़े चाव से पढ़ा जाता है नगर भर में। बाहर भी इसकी प्रतियाँ जाती होंगी। तब भी पूरा ख़र्च नहीं निकलता ?" विनय को विस्मय हुआ।

"इसमें आश्चर्य ही क्या ! आजकल पत्र-पत्रिका चलाना बड़ा

मुश्किल काम है। विज्ञापन छापने और सरकारी नोटिस छापने के सहारे ही सभी पत्र चलते हैं। कोई भी पत्र ग्राहक संख्या के बल पर नहीं चल सकता। सरकारी नोटिसें मुझे मिलती ही नहीं। विज्ञापनों में श्लील-अश्लील, देशी-विदेशी का ध्यान रखता हूँ। इसलिये घाटे में ही रहना पड़ता है। रुपयों के लिये सिद्धान्तों की बलि नहीं चढ़ा सकता।" पंडित जी ने आत्मसंतोष और और गर्व से कहा।

"पंडित जी, फिर काम कैसे चलेगा? अकेले 'उपदेश' में ही अगर आपकी सारी शक्ति लग जायेगी तो और कामों का क्या होगा? आखिर उपदेश निकालना ही तो आपके जीवन का ध्येय नहीं है। 'उपदेश' तो अपनी बातों के प्रचार का एक साधन मात्र है। फिर एक साधन के लिये अपना सर्वस्व होम कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है। मैं आपको सीख नहीं दे रहा। आपके शरीर की अवस्था देख चिन्ता होती है। शरीर को कष्ट दे दे कर आपने उसे क्षीण और कमज़ोर बना डाला। प्राकृतिक चिकित्सा और विटामिन के चक्कर ने आपका खून सुखा डाला। रही सही शारीरिक शक्ति 'उपदेश' के लिये समाप्त कर आप अपना या समाज किसी का भी भला नहीं कर रहे हैं।" विनय के शब्दों में तिरस्कार का भाव था।

"तुम्हारी बातें बहुत हद तक ठीक हैं। 'उपदेश' में आवश्यकता से अधिक समय और श्रम लग रहा है। मैं स्वयं चिन्तित हूँ। लेकिन जिन सिद्धान्तों का प्रचार और प्रसार मेरे जीवन का ध्येय है, उसका साधन 'उपदेश' ही है। उसे बन्द कर देने से मेरी ज़बान बन्द हो जायेगी। 'उपदेश मेरी ज़बान बनकर घर घर जाता है और मेरी बातों को जन-जन तक पहुँचाता है। उसे रोकने का अर्थ है अपनी बातों को लोगों तक न पहुँचाना। जब मेरी बातें लोगों तक न पहुँचेंगी तो उनके सुधार का मेरा सपना कैसे पूरा होगा? 'उपदेश' से मैं किसी लाभ की आशा नहीं करता, उससे मेरी रोटी चलती रहे और मेरी बातें लोगों तक पहुँचती रहें तो मुझे संतोष हो जायगा। तुम्हीं बताओ विनय, महात्मा जी 'हरिजन' निकालते हैं।

उसमें कोई विज्ञापन नहीं छपता। उससे किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की आशा नहीं है। फिर भी 'हरिजन' का प्रकाशन बन्द कर देना क्या उचित होगा ?" पंडित जी ने आँखें उघार ध्यान से विनय की ओर देखा।

"बन्द करने का सवाल ही क्या है ? मेरा तो निवेदन केवल इतना था कि आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रख कर ही परिश्रम करें। आपको 'उपदेश' बहुत प्रिय है। वह आपके हाथ का बनाया हुआ खिलौना है। उसे तोड़ देने को मैं कैसे कहूँ ? लेकिन 'उपदेश' जैसा निकलता है, उसमें जिस प्रकार के लेख छपते हैं, हो सकता है आपकी निगाहों में वे उच्चकोटि के हों, परन्तु मेरी समझ में उनसे जनता का लाभ न होकर हानि ही अधिक होती है। आप समझते हैं कि निवृत्ति मार्ग की ओर संकेत कर, अपरिग्रह, असंग्रह, अहिंसा आदि का उपदेश कर, आप जनता को सुखी बनाने में यत्नशील हैं। मेरी समझ में यह, वर्तमान सामाजिक सच्चाइयों की ओर से आँखें मूँद, अन्तर्मुखी भावनाओं के सहारे, पलायन की प्रवृत्तियों को गति प्रदान करने का साधन है। लेकिन मैं आपसे सिद्धान्तों और उनके मौलिक भेदों की बात नहीं करना चाहता। आप जो भी रास्ता उचित समझें उसपर समाज को चलाने का प्रयत्न करें। जनता को संगठित करना, उसके सामने नारों और योजनाओं को रख उन्हें कार्य रूप में परिणित करने के लिये जनता को तैयार करना, यही हमारा काम है। मैंने हमेशा आपसे यही निवेदन किया है कि जनता में संतोष और संयम के कोरे उपदेशों का प्रचार प्रतिक्रिया मूलक है। आज का समाज अन्याय, हिंसा, शोषण की भित्ति पर क़ायम है। शोषण और अन्याय के विरुद्ध असंतोष और विद्रोह की भावनाओं को जागृत करने के स्थान पर उन्हें असंग्रह, संतोष और संयम का पाठ पढ़ाना किसी भी प्रकार उन्हें क्रांति की ओर अग्रसर नहीं कर सकता। 'उपदेश' में लगा आपका श्रम अगर इस काम में आता तो जनता का अधिक लाभ होता और जिस ध्येय के लिये आप इतनी बार जेल गये, ग़रीबी अख़्तियार की, यातनायें सहीं

उसकी पूर्ति की घड़ियाँ अधिक निकट आतीं।" विनय रुकते रुकते भी कह ही गया। बहुत दिनों से पं० नरोत्तम प्रसाद से वह खुलकर अपने मन की बातें कहना चाहता था। आज चर्चा छिड़ा तो वह रुक न सका।

पंडित जी चौंक उठे। बातें कहाँ से शुरू हुईं और कहाँ पहुँच गईं! उनके 'उपदेश' के बारे में विनय की यह की यह राय है यह जान कर उन्हें क्षोभ हुआ। विनय से और भी कई बार विचार विनिमय हुआ था। पिछले बार जब पंडित जी वात-शूल से अधिक पीड़ित हुये, लेकिन दवा कराने को तैयार न हुये तो विनय झुँझला पड़ा था और उसने ज़बरदस्ती डाक्टर को बुलाया था। अनेक विरोधों के बाद भी जब विनय न माना तो हार मान दवा कराने पर पंडित जी राज़ी हो गये और धीरे धीरे उनकी दशा सुधर गई। उस समय भी विनय ने पंडित जी की जीवन चर्या, सिद्धान्तों और उपदेशों की कड़ी आलोचना की थी। विनय आज फिर झुँझलाया सा मालूम पड़ा तो पंडित जी सकपका गये। दोनों के जीवन दर्शन में ज़मीन आसमान का अन्तर था, लेकिन साथ साथ काम करने और उठने बैठने से घर का सा सम्बन्ध हो जाने के कारण विनय पंडित जी से साफ़ साफ़ बातें करने का आदी हो गया था। पंडित जी विनय से स्नेह करते थे। विचार भेद के बावजूद भी उसका आदर करते थे। उसकी झुँझलाहट में जिस सहृदयता और अपने पन का पुट रहता था, उसे पंडित जी जानते थे। इसी लिये उसकी बातों को वे कभी भी बुरा नहीं मानते थे।

जल पान के लिये नौकर को आवाज़ दे पंडित जी बोले, "विनय, हमारे तुम्हारे दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। इसलिये तुम 'उपदेश' की आलोचना करते हो। यों तुम्हारी आलोचना मुझे बुरी नहीं लगती। लेकिन मैं जिन सिद्धान्तों को सही समझता हूँ उनका प्रचार भी करना चाहता हूँ। भारतीय जन जीवन में सर्वमुखी क्रान्ति तुम भी चाहते हो और मैं भी। तुम समाज के निर्माण और उसके इतिहास

कहना यह है कि स्वयं मानवीय वृत्तियों का निर्माण सामाजिक शक्तियों के अन्तर्सम्बन्धों, अन्तर्द्वन्दों और घात प्रतिघातों के फल स्वरूप होता है। जीवित रह पाने के लिये संघर्ष करने वाला प्राणी मूलतः आवश्यकता वश प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न के परिणाम स्वरूप उसके मस्तिष्क और शरीर में क्रियात्मकता आती है। दिमाग़ सोचता है, हाँथ पाँव हिलते डुलते हैं। दोनों के सहयोग से शरीर की आवश्यकतायें पूरी होती हैं। इसी प्रकार मनुष्य सोचने, समझने अथवा कार्य करने की अपनी क्षमता बढ़ाता जाता है। सोचने और प्रयत्न करने की इस प्रक्रिया में उसका दूसरे व्यक्तियों का साथ होता है, कभी सहयोग, कभी प्रतियोग, कभी विरोध के रूप में। यह प्रक्रिया स्वयं विकसित होती है और साथ ही सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से मानव प्राणी भी। परिणाम स्वरूप वृत्तियों का रूप निर्माण और उनका निखार होता है। जो वृत्तियाँ मानव प्राणी के लिये सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से शिव, मंगलकारी और कल्याण प्रद होती हैं उन्हें हम दैवी कहते हैं, जो वृत्तियाँ इसके उल्टे सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से अशिव, अमंगलकारी और अकल्याणकर होती हैं उन्हें पाशविक कहते हैं। हमेशा इन वृत्तियों में संघर्ष होता रहता है। जो वृत्तियाँ बली होती हैं वह व्यक्तिगत रूप से प्राणियों और सामाजिक रूप से सारे समाज पर अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं। और तब, हम समाज अथवा मनुष्य को किसी वृत्ति विशेष का शिकार बताने लगते हैं। देखना यह है कि इन वृत्तियों के निर्माण के मूल में क्या है! इनके निर्माण के मूल में है आवश्यकताओं की पूर्ति, आनन्द की प्राप्ति, सुख के सर्जन की बलवती इच्छा। आज का समाज, हमारी आनन्द प्रद, सृजनात्मक बलवती इच्छा को दबा, उसे कुचल, उसकी चिता पर खड़ा अट्टहास कर रहा है। समाज की बाग डोर जिनके हाँथ में होती है उनके इशारे से समाज का सारा कार्य संचालित होता है और स्वयं समाज की रूप रेखा, बनावट और शक्तियों में परिवर्तन हो जाता है। अगर समाज को इनके पंजे से छुड़ाना है और उन्हें

हमेशा के लिये अशक्त कर देना है तो अपनी सृजनात्मक विकासोन्मुख प्रवृत्तियों को बल प्रदान करना होगा। अपनी सामाजिक प्रगतिशील इच्छा शक्ति को उभरने, बल प्राप्त करने और अपनी हुँकार से इस स्वार्थी समुदाय को कँपा देने के लिये तैयार करना होगा। स्पष्ट है कि शारीरिक सुखों और सांसारिक आनन्द से दूर रहने का उपदेश जनता में ऐसी आग नहीं लगा सकता जिसकी लपटें इस स्वार्थी, प्रतिक्रियावादी वर्ग और उसके शासन, अनुशासन और नियन्त्रण के नियमों को चाट जाँय, निगल जाँय। अन्यतम शान्ति और आनन्द की खोज में वर्तमान अशान्ति, अन्याय और उत्पीड़न की परिपाटी, उनकी मूलभित्तियों और कारणों की ओर से आँखें मूँद लेना और संतोष तथा अहिंसा के कोरे उपदेश देना, इस पृष्ठभूमि, में असंगत ही नहीं है शुद्ध पलायनवाद का प्रचार है, कर्तव्य विमुख होने का निमन्त्रण है, सच्चाइयों, कठोर सच्चाइयों पर आवरण डालना है, अनुभवों के आधार पर खिझी हुई सचेष्ट जनता को अक्रियशील बनाने का अक्षम्य अपराध है, जन जीवन को पथारूढ़ बनाने के बजाय पथ-भ्रष्ट करने का घृणित प्रयत्न है।" विनय जोश में आ रहा था इसीलिये उसकी वाणी में ओज और प्रवाह आ गया था।

पंडित जी जानते थे कि विनय पढ़ा लिखा आदमी है। उसकी बातों से वे प्रभावित हुये, मूलतः सहमत न होते हुये भी इस जवानी की उम्र में विनय ने जीवन की गहनता और उसके मूलबद्ध प्रश्नों पर इतना विचार किया, पढ़ा लिखा है इस पर उन्हें सन्तोष था। प्रशंसा की मुद्रा में बोले—

"विनय मैं तुमसे सहमत हूँ अथवा असहमत, लेकिन तुमने मेहनत से पढ़ा लिखा है मेरी यह पुरानी धारणा आज दृढ़तर हो गई। मुझे बड़ी खुशी है।" पंडितजी आनन्द गद्‌गद्‌ हो बोले।

साढ़े पाँच हो रहा था। बातचीत में एक घण्टा बीत गया था। पंडित जी ने घड़ी देखी और पूछा, "अभी संतोष नहीं आया?"

"आयेगा अवश्य, नसीम के पास गया होगा। मैंने ही कहा था

नसीम को साथ लेते आने के लिये।" विनय ने कहा।

"नसीम बड़ी भली लड़की है। मैं उसे जब देखता हूँ बड़ी श्रद्धा होती है। इतने बड़े घराने की लड़की, शान शौक़त का नाम नहीं। देखते नहीं कालेज युनिवर्सिटी के दूसरे लड़के लड़कियों को! शानबान में पानी की तरह धन बहाते हैं। पढ़ाई लिखाई से कोई वास्ता नहीं। सूट-बूट, हैट-पैण्ट भर के ही हो जाते हैं। एक नसीम है कि जैसे बनाव सिंगार के लिये उसे फ़ुर्सत ही न हो!" पंडित जी नसीम की प्रशंसा में बोले।

"क्या बनाव सिङ्गार बुरी चीज़ है? शरीर को स्वस्थ और सुन्दर रखने में क्या हर्ज है?" विनय अर्ध गम्भीर हो बोला।

"क्यों नहीं बुरी चीज़ है? आजकल के लड़के लड़कियाँ सेवाय अच्छा कपड़ा पहिनने और इधर उधर अपना समय ख़राब करने के करते क्या हैं? इन्हें न देश से मतलब, न समाज से स्नेह! देश में आग लगे या पत्थर पड़े—युनिवर्सिटी-कालेजों की दीवारों में बन्द ये फ़ैशन के ग़ुलाम सोचने की फ़ुर्सत भी नहीं पाते कि उनका कर्त्तव्य क्या है। इस शिक्षालयों में ये लोग सीखते कम हैं और भूलते अधिक।" पंडित जी खीझ उठे।

"यानी?" विनय यह अन्तिम वाक्य समझ न सका।

"यही कि थोड़ी बहुत अंग्रेजी भाषा और विदेशी इतिहास, विज्ञान आदि का ऊपरी ज्ञान इन्हें अवश्य हो जाता है, लेकिन इसके लिये उन्हें क़ीमत क्या देनी पड़ती है, जानते हो? अपने देश की संस्कृति, भाषा, कला, आचार-विचार, धर्म सब कुछ भूलना पड़ता है। आज की शिक्षा-व्यवस्था हमारे तरुण, तरुणियों को अपने अतीत पर गर्व करना नहीं सिखाती, उस पर आँसू ढालना और लज्जित होना सिखाती है।" विषाद और क्षोभ से पंडित जी ने कहा।

विनय कुछ कहना चाहता था कि नसीम और संतोष हौले हौले बढ़े आते हुये दिखाई पड़े। "यह लीजिये, आ गये ये लोग" प्रसन्न हो, उठकर उन्हे लेने के लिये दरवाज़े की ओर बढ़ते हुये विनय ने कहा।

"खूब आये तुम लोग, अभी तुम्हारा ही चर्चा हो रहा था" स्नेह से पंडित जी ने उनके नमस्कार का जवाब देते हुये कहा।

"जी, हम लोगों का चर्चा! यही विनय कुछ टीका टिप्पणी कर रहे होंगे" मुस्कराते हुये नसीम बोली। बूटेदार खद्दर का लम्बा कुर्ता, चुस्त मोढ़ी वाला; सलवार सादा और सफ़ेद, हल्के बादामी रंग का पेशावरी चप्पल; हाथों में एक एक गाटापर्चा की चूड़ियाँ, रूखे काले सँवारे हुये बाल, जिनमें से कुछ उड़ उड़ कर माथे पर लोट लोट जाते, लम्बी नागिन की सी चोटी, महीन खद्दर के सिल्क के चद्दर के भीतर से झलकती, कानों में लटकते हुये काँच के टाप्स—नसीम का निखरा रूप भव्य और आकर्षक था। बोली तो उसके सफेद दाँत चमक उठे। मुस्कान आँखों और ओठों से शुरू हो सारे चेहरे पर फैल गई।

"नहीं, विनय तो नहीं, मैं ही कुछ कह रहा था। कहो संतोष, अच्छे तो हो?" पंडित जी ने पूछा।

"जी हाँ, सब आपकी कृपा है। गरमी बहुत पड़ती है। निकलने की हिम्मत नहीं होती घर से।" संतोष बोला।

"समय तो हो रहा है बैठक का। अभी चौधरी वगैरह नहीं आये," विनय ने कहा। उसकी आँखें नसीम की ओर बार बार चली जातीं। आज इस सादे लिबास में वह कितनी अच्छी लग रही थी!

"अभी आये जाते हैं। रास्ते में मदन, मतई, रामदीन सभी मिले थे।" नसीम ने कहा।

"तो चलो वहीं चला जाय" कहते हुये पंडित जी उठे और उनके साथ ही नसीम, संतोष और विनय भी बाहर आगये। चबूतरे पर पानी छिड़क कर बिस्तर बिछाने पर भी गरमी काफ़ी थी। इधर उधर की बातों के बीच पंडित जी ने पूछ ही लिया, "विनय, तुम शादी क्यों नहीं कर लेते?"

विनय कुछ कहने ही वाला था कि नसीम ने पेशक़दमी की, "पंडित जी, इनसे शादी कौन लड़की करेगी! इन्हें पार्टी के कामों और 'कलाकारी' से फ़ुरसत ही नहीं। चौबीस घण्टा या तो पार्टी का

काम या 'क्रान्ति-गीत' ! कोई भी लड़की अपनी शादी करने से पहिले यह तो देख ही लेगी कि जिसके साथ उसे ज़िन्दगी भर निबाहना है वह है भी किसी काम के क़ाबिल या······।"

बात काट कर संतोष बोल उठा, "याने, आपके मुताबिक़ विनय शादी के काम के नहीं हैं। मेरा ख़्याल है विनय के साथ यह आप की ज़्यादती है।" संतोष ने चुटकी लेते हुये कहा।

"आप मज़ाक़ कर रहे हैं और मैं ठीक बात कह रही हूँ। पूछिये इनसे, पचीस बरस के होने को आये शादी की याद आई कभी ?" नसीम ने अपनी सफ़ाई दी।

"याद क्यों नहीं आई, लेकिन कोई इन्हें पूछे भी तो", तूल देने की कोशिश की संतोष ने।

विनय चुप तमाशा देखता रहा। सोचा, ख़ूब ! मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त ! मेरे बारे में बहस हो रही है और मेरे बोलने की ज़रूरत ही कोई महसूस नहीं करता। पंडित जी ने बीच बचाव किया, "रहने दो, तुम दोनों विनय को चिढ़ाना चाहते हो। मैं अपने विनय की शादी करूँगा। ऐसी लड़की ढूँढूगा जो राजनैतिक कार्य भी करे और कला प्रेमी भी हो। तब जोड़ा ठीक होगा। क्यों विनय !"

विनय क्या बोलता ! लेकिन इन बातों में उसे आनन्द अवश्य आ रहा था। फाटक के भीतर पञ्च लोग आते दिखाई दिये तो वातावरण बदला। 'जयराम जी,' 'पैलगी-आशीर्वाद', 'नमस्ते' आदि के विनिमय के बाद पञ्चायत की कार्रवाई शुरू हुई। चौधरी रामदीन सभापति हुये। मदन ने रिपोर्ट सुनाई। एक महीने के कामों की रिपोर्ट पर थोड़ी देर बातचीत हुई और उसे थोड़े से परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया गया। नगर कांग्रेस कमेटी के नये प्रोग्राम के अनुसार स्वावलम्बन और स्वरक्षा के प्रोग्राम पर बहस चली।

"फ़ी घर एक आदमी चाहिये न" पंडित जी ने पूछा "कितने घर कुल हैं ?"

"पाँच सौ के करीब हैं" रामदीन ने कहा।

"तो पाँच सौ स्वयं सेवक हुये ?" संतोष बोला।

"हाँ, अगर हर घर से एक आदमी पहरा देने के लिये मिल गया। लेकिन मुझे काम आसान नहीं मालूम पड़ता। गाँव में इधर उधर घूमा ज़रूर और लोगों से बातें भी कीं, लेकिन वे इस काम को सरगर्मी के साथ उठाने के लिये तैय्यार नहीं हैं।" मदन ने कहा।

"मदन की बात ठीक है। कुछ तो गाँव वाले ढीले ढाले हैं, कुछ वह बनिया जमुना प्रसाद नहीं करने देता। जो बात हो पुलिस वालों को ख़बर जरूर पहुँचा देता है।" मतई ने रामदीन की ओर समर्थन पाने की आशा में देख कर कहा—

"ठीक कहते हो भैया, 'घर का भेदी लङ्का ढाह'। उस जलील आदमी का काम ही है हमारी हर बात को उन तक पहुँचाना। वैसे हम कोई बम पिस्तौल तो बनाते नहीं। अपना सङ्गठन करते हैं, गाँव की जिन्दगी सुधारते हैं। मेल मुहब्बत बढ़ाने और शान्ति से जिन्दगी बिताने के लिये मद्पान और जुआ बन्द कराना चाहते हैं। पी पाकर ये जुआड़ी शराबी होश खो देते हैं और चोरी छिनाला बढ़ जाता है गाँव में। हमारे इस काम में मदद करने की कौन कहे वह बनिया दुश्मनी ही करता है। जैसे उसके बहू बेटी हैं ही नहीं। न मालूम काहे पर उसको इतना गरूर है। गाँव से दुश्मनी करके जायगा कहाँ ?" चौधरी रामदीन ने अपना रोष प्रकट किया।

"अब वह दुष्ट तो है ही गाँव में। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अपना काम ढीला कर दें। ऐसे ही लोगों को देख कर तो जोश दूना हो जाता है। उसे क्या मतलब गाँव के भले बुरे से ! दलाली करता है, रुपये सीधा करता है। अभी उसका सितारा बुलन्द है लेकिन उसकी करनी बायें नहीं जायेगी। भगवान सब बैठे बैठे देख रहे हैं। छः छः धार आँसू न रोया तो कहना। लोगों की आह पड़ रही है, पाप फूट कर निकलेगा। आज धन है, जोर है, कल ही कौड़ी का तीन न हो गया तो कहना कि मतई क्या कह रहा था।" गंभीर मुद्रा बना चुनौती सी देता मतई अपना आवेश रोक न सका।

बुज़ुर्ग बाबू रामलाल अभी तक चुप बैठे सब सुन रहे थे। उन्होंने देखा कि काम की बात न होकर इधर उधर ये लोग बहके जा रहे हैं। बोले, "पंचो, आप उस बनिये के बारे में जो कुछ कह रहे हैं उचित है। पर हम यहाँ उसके लिये अपने मन का गुबार निकालने नहीं आये हैं। हमें अपनी रक्षा करनी है, अपने गाँव वालों को इस भयंकर महँगी और परेशानी से बचाना है। पिछली बैठक में यह तय हुआ था कि हम लोगों में इस बात का प्रचार करें कि वे अपना बचाव करने और अपनी ज़रूरत की चीज़ों को पैदा करने या उसे पा सकने का प्रबन्ध करें। जो हड़कम्प चारों ओर मचा हुआ है उससे लोग कितने दुखी और घबराये हैं यह आपको मालूम ही है। कलकत्ते की बमबारी का नतीजा यह हुआ कि हमारे गाँव में और आस पास चोरी डाका आदि बढ़ गये। भूख से परेशान लोग और कर ही क्या सकते हैं? कपड़े की महँगी आप देख ही रहे हैं। अनाज का भाव कितनी तेज़ी से चढ़ता जा रहा है। इसलिये एक जमुना प्रसाद के नाम पर रोने अथवा ग़ुस्सा होने से काम न चलेगा। हमें सारे गाँव को जगाना है। मेरी समझ में अगर हमें गाँव भर से पचास जवान भी मिल गये जो रात को पहरा दे सकें तो हमारा काम चल निकलेगा। आगे आपकी राय जैसी हो।"

पंडित जी ने कहा, "रामलाल जी ठीक कहते हैं। हमें काम की बातें करनी चाहिये। पंचायत फ़ौरन ही एक सभा बुलाए और उसमें 'स्वयं सेवकों' की माँग करे। स्वयं सेवकों के कप्तान मदन होंगे। गाँव में इतना समझदार, तगड़ा और हिम्मती जवान और दूसरा नहीं है।"

विनय ने इसका समर्थन किया। सब ने इस बात को मान लिया। संतोष ने कहा, "पहरे के अलावा अनाज, कपड़ों के इन्तज़ाम की बात भी सोचनी चाहिये।" तय हुआ कि पंडित जी, बा० रामलाल, संतोष और रामदीन मिलकर कपड़ा, और अनाज के इन्तज़ाम के बारे में अगली बैठक में रिपोर्ट देंगे।

जमुना प्रसाद के प्रति क्या रुख़ रखा जाय इस पर बातें करना ज़रूरी समझ रामदीन ने फिर कहा, "पंचो, एक हमारी अरज यह भी

है कि जमुना प्रसाद को कोई सजा अवश्य दी जाय। अगर उसको रोका न गया तो वह सरारत करता ही जायेगा। गाँव में गेहूँ देखने को नहीं मिलता, लेकिन उसके घर में भरा हुआ है। आसपास के किसानों से वह गेहूँ लेकर रख लेता है और फिर महँगे दामों में देसावर भेजता है। वह रुपये की थैलियाँ मोटी किये जा रहा है और इधर गाँव के लोगों के पेट पचकते जा रहे हैं। अनाज गाँव में ठीक से बिके और जहाँ तक हो सके सस्ते दामों पर लोग उसे पावें इसका इन्तजाम तो आप करना चाहते हैं। लेकिन जमुना प्रसाद के रहते आप कुछ कर नहीं सकते। अनाज पैदा तो होता है लेकिन वह हम लोगों तक पहुँचने नहीं पाता। बीच ही यह राक्षस उसे हड़प लेता है। गाँव में त्राहि त्राहि मची है। उसकी तिजोरियों में चमकते सिक्के खनक रहे हैं। वह·······"

बात काटते हुँये पंडित जी ने कहा, "भाई, इसमें तो क़सूर हमारे किसानों का है। वे अपना अनाज उसके हाथ न बेचें तो क्या वह ज़बरदस्ती छीनकर अपनी खत्तियों में भर लेगा? इसीलिये तो गाँव में सङ्गठन की आवश्यकता है। सङ्गठन हो तो किसान अपना भला बुरा समझें और अपना अनाज जमुना प्रसाद के हाथों न बेच गाँव के भाइयों के हाँथ बेचें।"

विनय ने कहा, "ऐसी बात नहीं है। किसान उसके हाथ अपना अनाज बेचते हैं इसके तीन कारण हैं। जमुना प्रसाद ने लहना छोड़, सूद पर रुपये दे, सभी किसानों को अपने बस में कर लिया है। बीज खेत में डाले जाँय इसके पहले ही तय हो जाता है कि जमुना प्रसाद को पैदावार का कितना हिस्सा मिलेगा। पहले से बँधा हुआ किसान अपना अनाज उसे देने को मजबूर हो जाता है। दूसरे, रुपये की लालच भी बड़ी चीज़ होती है। किसान यह नहीं देख पाता कि अनाज महँगा बेचकर वह अन्त में अपना ही नुकसान करता है। महँगा बेचकर वह रुपये तो पा जाता है लेकिन जब सब अनाज हाथ से निकल जाता है तो उसे खुद ख़रीदना पड़ता है दूने चौगुने दामों पर। लेकिन

इतनी दूर तक उसकी निगाहें नहीं जातीं। फिर, जमुना प्रसाद ज़ोरदार भी है। रुपये की लालच से अगर अनाज न मिला तो दूसरे तरह तरह के हथकण्डे उसके पास हैं ही। इन हथकन्डों के सहारे, डरा-धमका कर वह अनाज ले ही लेता है। इसलिये पंचायत को चाहिये कि वह जमुना प्रसाद से लोहा लेने की तैयारी करे। उसका पूरी तरह भंडा-फोड़ करे, और गाँव के सामने उसे ज़लील करे। तभी काम चल सकता है। किसानों को दोषी ठहराना और उन्हें एक होने अथवा अपना सुधार करने का कोरा उपदेश देने से कोई लाभ नहीं होगा।"

"बहुत ठीक है।" मतई ने समर्थन किया।

"विनय कहते ठीक हैं। यह काम उसी कमेटी के सुपुर्द किया जाय। जमुना प्रसाद के प्रति अपना रुख़ तय करने में कमेटी को इस रिपोर्ट से सहायता मिलेगी। मैं समझता हूँ कि इस जमुना प्रसाद को हमेशा के लिये सबक दे देना चाहिये। वरना यह ठीक रास्ते पर कभी न आयेगा। गाँव में सारी बुराइयों की शुरूआत इसी के घर से होती है। कच्ची शराब की खुल्लम खुल्ला बिक्री इसी के गुर्गों के द्वारा होती है। जुआ खेला कर वह अपना उल्लू सीधा करता है। गाँव वालों को आपस में लड़ाना और दोनों पार्टियों से रुपये वसूल करना, सूद पर रुपये बाँटना और ऐसे दर पर कि वह ज़िन्दगी भर अदा ही न हो सके, उसका रोज़ का काम है। गाँव की मुसीबत में जमुना प्रसाद का बहुत बड़ा हाँथ है। इस हाँथ को हमें तोड़ ही देना है।"

"या यों कहिये कि हमें अपना सारा ध्यान बटोर, जमुना प्रसाद का विरोध और भन्डाफोड़ करने के नारे पर ही सारे गाँव को संगठित करना चाहिये। लेकिन पहरा देने, अधिक अनाज उपजाने वगैरह पर भी तो ध्यान देना है। मेरी राय में, इस समय हमें अपने वालंटियरों को सब से पहिले सङ्गठित करना चाहिये। ये पचास वालंटियर हमारी बहुत बड़ी ताकत हो जायेंगे। इनकी मदद से हम गाँव में पहरे का इन्तज़ाम कर सकते हैं, अधिक अन्न उपजाने और उसे ठीक तरह बेचने का काम कर सकते हैं और साथ ही अपने सङ्गठन के ज़रिये

किसानों और गाँव वालों को मज़बूत बना जमुना प्रसाद का भी सामना कर सकते हैं। मेरा मतलब है कि हमें अपनी पूरी हालत को ध्यान में रख कर ही अपना प्रोग्राम बनाना चाहिये। निरा जोश काम को बिगाड़ सकता है, बना नहीं सकता।" गंभीर हो शान्ति पूर्वक नसीम ने कहा। उसकी बात सब की समझ में आ गई।

बैठक समाप्त हुई तो विनय, संतोष, नसीम, पंडित जी के साथ ही साथ फाटक की ओर चले। दूसरे पक्ष चले गये लेकिन मदन रुका रहा। कुछ इधर उधर की बातें होने पर पंडित जी से विदा ले ये चारों भी चले। मदन साथ में था इसलिये सभी पैदल चल रहे थे। हवा कुछ ठंडी थी। चाँद उग आया था आसमान में। मदन को छेड़ने के लिये संतोष ने कहा, "कहो भाई तुम्हारी शादी का क्या हुआ? सुना लड़की बिल्कुल पटाख़ा है। चलो अच्छा है, अब हमारे पास एक के बजाय दो साथी हो जायेंगे।"

"क्यों मदन, क्या यह सच्ची बात है? तुम्हारी शादी होने वाली है?" विनय ने विस्मय से कहा। उसे अभी तक मदन की शादी का पता न था।

"तुम लोगों से मतलब? शादी होगी या नहीं, होगी भी तो किस से, कब, यह सब पूछने वाले तुम कौन?" नसीम ने कहा। उसने उपेक्षा की नज़र से पहिले विनय की ओर देखा, फिर संतोष की ओर।

"क्यों नसीम, हमारे साथी मदन की शादी हो और हम पूछ भी न सकें कि कहाँ हो रही है, कब हो रही है किससे हो रही" विनय ने पूछा।

"क्या करोगे पूछ कर? शादी ब्याह ऐसी नीरस, बे मतलब चीज़ों से तुम्हें क्या दिलचस्पी? दिन भर पार्टी के कामों में खटो और रात में मोटी मोटी किताबें पढ़ते पढ़ते सो जाओ। यही है तुम्हारी ज़िन्दगी। आप कवि हैं, रसिक हैं और न मालूम क्या क्या हैं। कहो तो कविता अभी सुनाने लग जायँ। लेकिन उस कविता ने, उसके रस ने, इनके दिल के किसी कोने में जगह पाया है इसमें मुझे शक है। मैं यह साफ़

देख रही हूँ कि तुम दोनों और तुम्हारे ही जैसे और हजारों नौ जवानों की ज़िन्दगी एकाङ्गी होती जा रही है। मैं यह नहीं कहती कि सियासत छोड़ तुम सब घर बसाने लगो। लेकिन यह ज़रूर कहती हूँ कि सियासत में हमेशा के वास्ते टिकने के लिये यह ज़रूरी है कि तुम लोग अपनी ज़िन्दगी से संतुष्ट रहो और जमकर अपना काम करो। शादी के बग़ैर ऐसा होना नामुमकिन है।" नसीम ने अपने दिल की बात इस समय कह दी।

विनय चुप उसकी ओर देखता रहा। संतोष ने कुछ जवाब देना चाहा था कि मदन बोल उठा, "भैया, आप लोग क्यों ब्याह नहीं करते?" नसीम की ओर आखें उठा उसने कहा, "ये लोग शादी करेंगे तो ज़रूर, लेकिन इनके जोग लड़की मिलना कठिन है। इसी लिये ये हिचकिचाते हैं। ऐसी लड़की मिले जो इनके काम में बाधा न पहुँचायें बल्कि साथ दे तो ज़रूर ये शादी कर लेंगे। क्यों विनय भैया?"

"ज़रूर" विनय के मुँह से निकल गया।

"अब बोलिये" मदन ने नसीम की ओर देख कर कहा।

संतोष ने व्यंग करते हुये कहा, "इस 'ज़रूर' का मतलब?"

"मतलब यह कि हम शादी से भागते नहीं, शादी करना बुरा नहीं समझते। लेकिन शादी के बाद हमारे पैरों में बेड़ी पड़ जाय और हम किसी काम लायक़ रह ही न जाँय तो? दाम्पत्य जीवन में जब तक पूरी तरह से बराबरी न हो, सहयोग न हो, जीवन सुखी नहीं हो सकता। ज़िन्दगी के अरमानों को पूरा करते हुये आगे बढ़ते जाने की साध अगर मन में है तो निश्चय ही शादी करने के पहिले बीसों बातें सोचनी पड़ेंगी। हमारी ज़िन्दगी का एक ध्येय है, एक आदर्श है। उस आदर्श को पूरा करने के लिये हमें त्याग की राह ही चलना पड़ेगा। उमंगों के असर में आकर नहीं, तर्क और बुद्धि का सहारा लेकर ही हम शादी कर सकते हैं और इस प्रकार अपने उस जीवन साथी को पा सकते हैं जो हर घड़ी, हर समय साथ दे, सहारा दे, दो सके तो

रास्ता भी दिखावे।" आज पहिले दिन विनय ने विवाह के विषय पर अपनी सम्मति प्रगट की थी। नसीम को ऐसा लगा कि जैसे ये बातें उसी को लक्ष्य कर के कही गई हैं। वह सहमी सी विनय की ओर नीची निगाह से देखती रही। "क्यों नसीम, मैं सही कह रहा हूँ?" विनय ने नसीम की ओर मर्म भरी आँखों से देखा।

"हाँ" नसीम ने कह दिया। वह हतबुद्धि सी रह गई।

गाँव के किनारे के मोड़ पर पहुँचते पहुँचते संतोष ने मदन से कहा, "लड़की देख ली है, ठीक है न?"

"हाँ है तो, शादी हो जाय तब जानिये" मदन ने कुछ चिंता से कहा।

"क्यों, क्या बात है?" संतोष उत्सुक हुआ।

"इस महँगी ने हम लोगों को बर्बाद कर दिया। ब्याह में चार पाँच सौ का खर्चा है। दादा परेशान हैं। जमुना प्रसाद रुपये देने को तैय्यार हैं लेकिन आना रुपया सूद माँगता है और चार सौ की जगह छः सौ लिखने को कहता है। दादा सोचते तो हैं कि लिख देंगे लेकिन आगे कर्ज अदा भी कर सकेंगे इसमें उन्हें शक है। इस लिये हिम्मत नहीं पड़ती उनको।" मदन ने दुखी हो कहा।

"क्यों इससे कम में शादी नहीं हो सकती?" संतोष ने प्रश्न किया।

"हो क्यों नहीं सकती? लेकिन कुल मरजाद का भी तो ख्याल रखना है। दादा कहते हैं कि वे अपना सब कुछ मिटा देंगे लेकिन कुल मरजाद को हाथ से जाने नहीं देंगे। मैं कुछ बोल भी तो नहीं सकता।" मदन बहुत उदास था।

थोड़ी देर सन्नाटा रहा। मदन नमस्ते कर गाँव की ओर लौटा। विनय, संतोष, और नसीम अपनी अपनी सायकिलों पर सवार हो आगे बढ़े। तीनों चुप थे। लेकिन तीनों के दिल को चोट पहुँची थी। अपने परिश्रम और लगन से मदन ने इन साथियों के हृदय में अपने लिये स्थान बना लिया था। मदन का दुख इन सब का अपना दुख था। उसने कितना असहाय हो कहा था, "मैं कुछ बोल भी तो नहीं सकता।"

३

रात को क़रीब नौ बजे होंगे। इसी समय वह रोज़ आती। बिजली के खंभे का सहारा ले ऊपर आकाश की ओर ताकती, बायें हाथ से लठिया टेके, कुछ मिल जाने की आशा में यह बुढ़िया घन्टों खड़ी रह जाती। नसीम ने पहले झिड़क कर कहा था, "जाओ कुछ नहीं मिलेगा" और बुढ़िया निराश हो वापस चली भी गई थी। लेकिन दूसरे दिन फिर उसी समय आ गई। बुढ़िया के वापस चले जाने पर नसीम को पछतावा हुआ था। उसे लगा था कि उसने पाप किया। लेकिन बुढ़िया जब फिर आई तो आगे बढ़ नसीम ने ख़ुद उसे एक दोअन्नी दी। वह बहुत प्रसन्न हो गई और 'दूधो नहाओ, पूतो फलो' आशीर्वाद देती चली गई। तब से बुढ़िया रोज़ आती, कुछ न कुछ पा जाती और आशीसों की वर्षा करती चली जाती।

सन जैसे सुफ़ेद बाल, झुर्रियों और गढ़ों से भरा सूखा चेहरा, निष्प्रभ ज्योतिहीन आँखें, उभरी हुई गालों की हड्डियाँ, माथे की सिकुड़न, काँपते दुबले पतले हाथ-पैर जिन पर चमड़ा लटक आया था। और फूली फूली नसें उभर आई थीं, हाथ की पतली लकुटिया, सभी इस बात की गवाही देते थे कि बुढ़िया पचासों बरसात, जाड़ा और गर्मी झेल चुकी है और अब उसका दिया बुझने ही वाला है। बुढ़िया कहाँ रहती है, उसके कोई और है या नहीं इसका नसीम को पता न था। लेकिन न जाने क्यों नसीम के दिल में उस बुढ़िया के लिये जगह बन गई थी। बुढ़िया आना दो आना नसीम से हर रात नौ बजे अवश्य पा जाती। नसीम न होती तो अकबर ही बड़बड़ाता आता और उसकी ओर पैसे बढ़ा कहता, "अब तो जा बाबा, तू तो जैसे हमारी बीबीजी को लूटने पर लगी है, एक दिन भी नागा नहीं करती!" और बुढ़िया हतप्रभ हो एकन्नी अथवा दोअन्नी जो कुछ उसको मिलता टटोलती, आशीर्वाद देती चली जाती।

कई बार नसीम ने सोचा बुढ़िया से बातें कर उसका कुछ हाल

जाने, लेकिन बुढ़िया कुछ न बताती, आनाकानी कर चली जाती। उस दिन नसीम लौटी तो उसका मन उदास था। विनय के प्रति उसका स्वाभाविक आकर्षण था, संतोष से तो उसे न जाने क्यों चिढ़ थी। लेकिन उसने अपने किसी व्यवहार अथवा बातचीत से अपने भावों को प्रकट नहीं होने दिया। व्यवहार उसका विनय और संतोष दोनों के साथ एक ही जैसा था। विनय अधिक प्रतिभावान, कुशाग्र और मेहनती था। उसकी बातों और उसके कामों में सामंजस्य था। इसके उल्टे संतोष बातूनी और लम्बी चौड़ी हाँकनेवाला, स्कीमें बनाने वाला, चंचल, उथला, भावुक तरुण था। विनय गोरे रंग का, एकहरे बदन का, बड़ी बड़ी तेज़, चिन्तनशील, रसभरी, आँखों वाला नौ जवान था। उसकी प्रतिभा उसकी आँखों से चमकती थी। संतोष गेहुँआ रंग का, कुछ मोटे बदन का, भोंदू जैसा मालूम पड़ता था, लेकिन हर चीज़ में अपनी टांग अड़ाने में तेज़ था।

मदन की शादी की बात सुनी तो नसीम को अपनी शादी की बात याद आई और उसके दिल के किसी कोने में उठा हुआ दर्द वायुगोला सा बढ़ कर फैलने लगा। ऐसी बातें कई बार और भी पहले हो चुकी थीं, लेकिन दर्द दबा दिया था नसीम ने ज़बरदस्ती। आज बैठक से लौट रास्ते में उसका मन न जाने कैसा हो रहा था, इसलिये घर पहुँच उसने चाहा कि बुढ़िया आ जाती तो उसी से कुछ इधर उधर की बातें करती।

नसीम की उदासी का कारण क्या था? माधोपुर के पंचों ने अपने कामों में ढिलाई नहीं की थी। पंचायत का काम बढ़ता ही जा रहा था। नसीम समझती थी कि ज्यों ज्यों पचायत का काम आगे बढ़ेगा मुश्किलें भी बढ़ती जायेंगी। उन मुश्किलों का सामना करने के लिये कमर बस्ता हो तैयार भी रहना पड़ेगा। नसीम भी तैयार थी। पं० नरोत्तम प्रसाद और विनय की सूझबूझ और मदन, भतई आदि की कर्मठता में उसे पूरा विश्वास था। इसलिये उदासी का कारण कुछ और था।

बारजे पर खड़ी नसीम सोचती रही। उसने कपड़े बदल डाले थे और खद्दर के छींट का हल्का हरा लम्बा कुर्ता, छींटदार सलवार, ऊपर धानी सिल्क का चदरा डाले हुये वह खड़ी थी। वापस आकर एक प्याला चाय भी पिया था। सोचा था हाथ मुँह धो, कपड़े बदल, चाय पी लेने से बदन हल्का हो जायेगा, उदासी भी कुछ कम हो जायेगी। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अब वह क्या करे? बारजे पर वह टहलती रही। सामने बिजली का लैम्पपोस्ट था। एक दो कीड़े उसके चारों ओर मँडरा रहे थे। बाज़ कीड़े बल्ब से जा भिड़ते थे और पट पटाकर नीचे गिर जाते। नसीम यह क्रीड़ा देखती रही। जब जब कीड़े उड़कर बल्ब की ओर जाते नसीम काँप उठती और उन्हें जलकर तिड़-तिड़ कर नीचे गिरते हुये देख नसीम चीख़ पड़ना चाहती। कभी उधर से आँखें फेर लेती, कभी देखते हुये भी अनदेखी कर जाती।

अपने समय पर बुढ़िया भिखारिन दिखाई दी। काँपती हुई ऊपर की ओर ताकती बढ़ी आ रही थी धीरे धीरे। नसीम ने उसे ऊपर बुलाया।

"कैसे आऊँ बेटा, दिखाई नहीं देता, पाँव भी काँपते हैं, ऊपर चढ़ने की हिम्मत नहीं पड़ती।" बुढ़िया ने लाचारी ज़ाहिर की।

"अच्छा मैं आती हूँ" कह नसीम सीढ़ी से नीचे उतरी और बुढ़िया को सहारा दे ऊपर ले आई। बुढ़िया ने नसीम का हाथ पकड़, एक एक सीढ़ी पर रुक रुक, किसी तरह ऊपर पहुँच, कमरे में पाँव रखा। उसके पाँव आगे बढ़ते न थे। कुछ इस लिये कि वह थक गई थी, ज़्यादा इस लिये कि उसे संकोच हो रहा था। उसके पाँव गंदे, धूल से सने थे। बिवाइयाँ फटी हुई थीं। कमरे के मुलायम ग़लीचे पर पाँव पड़ते ही बुढ़िया काँप गई। वह वहीं बैठ जाना चाहती थी।

नसीम ने उसे आगे ले जाते हुये कहा, "नहीं, नहीं, यहाँ मत बैठो, अन्दर चलो।"

बुढ़िया घसिटती आगे चलती गई। भीतर ले जा, कुर्सी पर उसे बैठा, नसीम ने पङ्खा खोल दिया। बुढ़िया कुर्सी पर बैठी तो उसके पाँव

ज़मीन पर न थे, जैसे उसे बैठने नहीं आता था कुर्सी पर। उसका जी धक धक कर रहा था। लगता था कि ज़िन्दगी में शायद पहिली बार वह गलीचों वाले कमरे में, बिजली के पंखे के नीचे, कुर्सी पर बैठी थी। उसे सब कुछ सपने जैसा लग रहा था। जैसे यन्त्रचालित सी वह सब कुछ करती जा रही थी।

नसीम फालसे का शर्बत ले कर आई तो देखा बुढ़िया माथे पर हाँथ धरे, झुकी हुई बैठी है। उसकी अँधी आँखों से आँसू बह रहा है। नसीम कुछ न समझ सकी। पास आ, बुढ़िया की ओर शर्बत का गिलास बढ़ाती हुई नसीम ने पूछा, "बूढ़ी माँ, तू रो क्यों रही है! यह शर्बत ठंढा है, ले, पी ले!" बुढ़िया फूट पड़ी। नसीम और भी परेशान हो गई। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। बुढ़िया की इतनी इज़्ज़त हुई, उसे बिजली के पंखे के नीचे, कुर्सी पर बिठा, शर्बत पीने को कहा जा रहा था। और वह रो रही है!

"बोलो क्या बात है, क्या हुआ है तुमको!" नसीम ने और नज़दीक आ पूछा।

"अब जाती हूँ बेटी, भगवान तुम्हारा भला करे, मुझे नीचे पहुँचा दो" बुढ़िया ने झिझकते हुये कहा।

"नहीं तुम अभी नहीं जा सकोगी। शर्बत पीलो, आराम कर लो तब जाना, जल्दी क्या है!" नसीम ने इसरार किया।

बुढ़िया ने काँपते हाँथों से गिलास लिया। शर्बत उसके गले के नीचे नहीं उतर रहा था। किसी तरह आधा गिलास पी सकी और बाक़ी नीचे फ़र्श पर रखने लगी तो नसीम ने गिलास अपने हाथ में ले लिया और टेबुल पर रख, वापस आ बातें करने लगी।

"बूढ़ी माँ, तुम बता सकती हो कि तुम रो क्यों पड़ीं?"

"क्या करोगी जान कर बेटी, बड़ी अभागिन हूँ। भीख माँगना कुछ ही दिनों से शुरू किया है। पहिले मेरे पास भी ऐसा ही घर था!"

नसीम के विस्मय का ठिकाना न रहा। अपनी उदासी वह भूल गई। "तब क्या हुआ!" उसने पूछा उत्सुक होकर।

बिजली की हवा और शर्बत की ठंडक से बुढ़िया कुछ स्वस्थ हो चली थी। आँसू पोंछ कहने लगी, "बेटी, मैंने किसी से अपनी बात नहीं बताई। आज तुम पूछ रही हो तो कह रही हूँ, किसी से कहना मत। अपना दुखड़ा सब से रोने से क्या फ़ायदा? सम्पत्ति सब बाँट लेते हैं, विपत्ति कोई नहीं बाँटता।"

"माँ, मै किसी से कुछ न कहूँगी, वायदा करती हूँ" नसीम ने विश्वास दिलाया।

बुढ़िया राम कहानी कहने लगी।

"खान्दान मेरा बड़ा न था। एक ही लड़का था। लायक़, होन-हार। पढ़ लिख कर बड़ा हुआ और नौकरी की। पाँच सौ की आम-दनी थी। घर में नौकर चाकर थे, बिजली की बत्ती जलती थी, बिजली का पङ्खा चलता था। मुझे संतोष था। लड़के की शादी में जी खोल कर ख़र्च किया, लायक़ बहू आई और घर गुलज़ार हो गया। कुछ दिनों बाद फूल सा बच्चा पैदा हुआ। शहर के रईसों की दावत हुई, नाच मुजरा हुआ। दिन कटते रहे खुशी से, आराम से।

मुन्नू बड़ा हुआ और पढ़ने लगा। कालिज गया धीरे धीरे एफ० ए० पास किया। अब खराब दिन आये। मेरे लड़के की आदतें बिग-ड़ने लगीं। बहू अब नहीं रही थी। ऐश आराम की ज़िन्दगी बसर करने वाला मेरा लड़का उदास रहा करता था। उसने शराब पीना शुरू किया। रंडियों से नाता जोड़ा, यहाँ तक कि वे घर भी आने लगीं। आस पास के रईसों से उसकी दोस्ती हुई। उनके साथ जूए के फड़ पर वह भी जमने लगा। पल्ले का रुपया उड़ गया, बहू के गहने निकल गये, मेरे पास जो कुछ था सब चला गया। लेकिन वह रुका नहीं। साथ वाले उसे बढ़ावा देते ही रहे। दो तीन मकान थे वे भी गिरवी रखे गये और सौ पाँच का सौ लिख कर उसने हज़ारों रुपये क़र्ज़ लिये। देखते देखते हमारी हालत अबतर हो गई। मुन्नू की पढ़ाई छूट गई और मेरा लड़का बीमार हो, पहाड़ पर चला गया। वहाँ उसकी हालत सुधर न सकी। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। लड़का वापस

आया और कुछ महीनों बाद मुन्नू और मुझे अनाथ छोड़ चल बसा।

"रोना पीटना भी बन्द नहीं हुआ था कि कचहरी से सम्मन आने लगे। लोगों ने दावे ठोकना शुरू किया, कुर्की लगवाई और दो साल में ही सब मकान निकल गये। मुन्नू पागल हो रहा था। कभी वह महाजनों पर खीझता, कभी अपने पिता पर। इस कच्ची उमर में उसे कचहरी की ख़ाक छाननी पड़ी, वकीलों के सामने गिड़गिड़ाना पड़ा। लेकिन सब कोशिशों के बाद भी कुछ न हो सका। सब मकान महाजनों ने हड़प लिया। जिस मकान में हम लोग थे, उसे भी बेचना पड़ा। मकान बनवाने में बीस हज़ार लगा था लेकिन बिका दस हज़ार में। तब महाजनों का कर्ज़ अदा हुआ।

"यहीं पास में माधोपूर गाँव है। वहाँ एक रईस रहता है, नाम है जमुना प्रसाद। उसने वादा किया था कि महाजनों का सब कर्ज़ा अदा करने पर जो रुपया बचे हमें दे देगा। लेकिन उसने हमें कुछ नहीं दिया। रजिस्ट्री होकर जब महाजनों का रुपया अदा हो गया तो उसने हमें अँगूठा दिखा दिया। अब हम बे घर बार हो गये और एक सस्ते किराये का मकान लेकर रहने लगे। रिश्तेदार नातेदार जो मेरे बेटे की ज़िन्दगी में आते थे और गुलछर्रे उड़ाया करते थे, जिनकी परवरिश मैंने और मेरे बेटे ने की थी, कोई भी काम न आये। सभों ने आँखें फेर लीं जैसे उनसे मेरी जान पहिचान ही न हो। मैंने कुछ गहने छिपा कर अपने नातेदारों के यहाँ रख दिये थे, उसमें से बहुत सा उन लोगों ने दबा लिया। इसी ज़माने में धर पकड़ शुरू हुई और मुन्नू भी जेल चला गया। मुन्नू के छुड़ाने की पूरी कोशिश की। लेकिन मुन्नू ने कागज नहीं लिखा, न माफ़ी माँगी। उसको जेल में ही रहना मंज़ूर था।

"महँगी बहुत थी। जो कुछ सामान बचा था, बेच बाच कर खा गई। अधम पेट कहाँ मानता है! केराया न पहुँचने से मकान मालिक ने निकाल बाहर किया और अब सड़क के किनारे झोपड़ी बना उसी में

रहने लगी। मुन्नू दो साल सज़ा काट बाहर आया और मेरी हालत देख आपे में न रहा। मुझसे तो कुछ न बोला, लेकिन सभी रिश्तेदारों को खरी खोटी सुनाई, महाजनों को धमकाया और जमुना प्रसाद से कहा सुनी हो जाने पर हाथा पाई भी हो गई। लौट कर बोला, 'मुझसे जमुना प्रसाद से लड़ाई हो गई है। दूसरे महाजनों से भी कहा सुनी हो गई। तुम समझ लो कि मैं मर गया, मैं भी समझ लेता हूँ कि तुम नहीं हो। जब तक इन लोगों से अच्छी तरह बदला न ले लूंगा, वापस नहीं आऊँगा। या तो यही लोग रहेंगे या तुम्हारा मुन्नू !'

"वह एक दिन फिर आया और अपने साथ रहने के लिये कहा। मैं झोपड़ी छोड़ने को तैयार न थी। उसने मेरे हाथों में रुपयों के बहुत से नोट डाल दिये और चला गया।

"उसने कहा था यहीं एक मुसलमान लड़की रहती है, बड़ी शरीफ़, सीधी। जब किसी चीज की ज़रूरत हो उससे मिल लूँ। मैं उसी की टोह में रोज़ आती हूँ। तुम उसे जानती हो बेटा, वह यहीं कहीं रहती है। मुन्नू ने कहा था उसी के घर शायद मेरी उसकी भी भेंट हो जाय कभी। मैं तुमसे भीख लेने नहीं आती! मैंने कभी किसी से भीख नहीं ली बेटा—भीख लेने के पहिले मर जाना चाहूँगी। नसीम मिलती तो मुन्नू का पता चलता.........?

"......हर घड़ी उसका इन्तज़ार करती हूँ। मिलने के ही लिये इतनी दूर हिलती काँपती आती हूँ। रोते रोते मेरी आँखें फूट गईं। लेकिन मुन्नू न आया......" बुढ़िया आगे न बोल सकी। उसके होंठ हिल रहे थे। पोपले गालों की नसें नाच रही थीं।

"माँ, मैं......ही......न......" आगे नसीम कुछ न कह सकी। ज़बान पर आई बात रोक नसीम निचले ओंठ को दांतों से दबाये, दोनों हाथ मींज रही थी। उसकी भीगी पलकें भारी पड़ रही थीं। आँखों की लाल डोरियाँ चिनगारी की भाँति चमक रही थीं। वह एक टक बुढ़िया की ओर देखती रही।

बहुत देर तक सन्नाटा रहा। बुढ़िया अबोल बैठी रही। नसी

उसके सारे शरीर को सिर से पैर तक देखती रही। यह बुढ़िया अभी कुछ साल पहिले सुख से रहती थी। नौकर चाकर थे, कमासुत लड़का था। और आज यह बुढ़िया कङ्काल है।

मौन तोड़ती हुई नसीम ने कहा, "मुन्नू का कुछ पता नहीं चल सकता माँ ?"

"अब उसका क्या पता चलेगा ? कौन जाने वह दुनियाँ में है या नहीं।" बुढ़िया ने सर्द आह भरी! वह निराशा की सजीव मूरत सी जान पड़ती थी।

"अच्छा अब चलूँगी बेटा, बुरा न मानना, कल से भीख लेने यह बुढ़िया तुम्हारे दर पर नहीं आयेगी" कहती हुई भिखारिन अपनी लठिया के सहारे, चलने को उद्यत, खड़ी हो गई। उसके पाँव काँप रहे थे।

नसीम ने रोका, बहुत रोका लेकिन बुढ़िया न मानी और नसीम को उसे नीचे पहुँचाना ही पड़ा। वह चली गई। ऊपर आ नसीम ने अकबर को आदेश दिया कि वह बुढ़िया के पीछे जाय और उसकी झोपड़ी का पता लगा आवे। अकबर हौले हौले बुढ़िया के पीछे हो लिया।

नसीम फिर बारजे पर टहलने लगी। अब उसके चेहरे पर उदासी न थी, क्रोध था, विह्वलता थी, उत्सुकता थी, वेदना और पीड़ा की काली छाया थी, प्रतिहिंसा की भावनायें उसके शांत परन्तु अस्थिर मुखमंडल पर क्रीड़ा कर रही थीं। बार बार सिर उठा सड़क की ओर देखती कि अकबर आ रहा है या नहीं। घड़ी भर बाद अकबर दौड़ता हुआ आया तो नसीम ने ऊपर से ही पूछा, "कहो क्या हुआ ?"

"ग़ज़ब हो गया बीबी जी, ग़ज़ब!" अकबर ने चीख़ कर कहा।

नसीम जल्दी जल्दी सीढ़ियों के नीचे आगई।

"बुढ़िया ने ग़ज़ब कर दिया, बीबी जी! यहाँ से लौट वह इतनी तेज़ी से बढ़ी जैसे उसके पैरों में बिजली की ताक़त आ गई हो। मैं भी पीछे पीछे बढ़ा। एक मील तक वह चलती ही गई। फिर उसकी

झोंपड़ी आई, सड़क के किनारे कुछ सुनसान में। बुढ़िया अन्दर गई मैं बाहर खड़ा देखता रहा। थोड़ी देर में बुढ़िया बाहर निकली। उसके हाँथ में दो पुड़ियाँ थीं। एक पुड़िया खोल उसने मुँह में डाल लिया—सफेद सफेद रङ्ग का था उसमें कुछ। दूसरी पुड़िया जमीन में रख वह आसमान की ओर मुँह करके लेट गई। थोड़ी देर में धुआँ निकला झोंपड़ी से और एक दो लपटें भी दिखाई पड़ीं। मैं सब मामला समझ गया। बुढ़िया के पास जा, उसे झोंपड़ी से दूर हटाया। पास पड़ी पुड़िया उठा ली और शोर मचाया। बड़ी मुश्किल से दो चार आदमी आ पाये, लेकिन तब तक झोंपड़ी ख़ाक हो चुकी थी। बुढ़िया को उसी तरह पड़ी छोड़, दूसरे लोगों से वहीं रहने के लिये कह, मैं यहाँ भागा आया। यह है वह दूसरी पुड़िया" हाँथ बढ़ा, पुड़िया नसीम के हाथों में देता हुआ अकबर बोला। वह काँप रहा था, हाँफ रहा था।

नसीम ने पुड़िया खोली। सोने की अँगूठी थी, नग पर कुछ लिखा हुआ था। नसीम धक से रह गई। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। बेहोशी सी आने लगी तो अकबर के सहारे वह ऊपर जा आराम कुर्सी पर लेट रही। अकबर ने ठंढा पानी दिया, उसका मुँह धुलाया। चेतना जागने पर अकबर को बुला नसीम ने नीचे चलने को कहा। कमज़ोरी के कारण अब भी वह काँप रही थी।

रिक्शा पर जब वह चलने लगी तो अकबर ने पूछा, "बीबी जी, कैसी तबियत है आपकी ?" चुप रहने का इशारा करती हुई नसीम दूसरी ओर ताकने लगी। वह बातें नहीं करना चाहती थी। वह चुप थी। रिक्शा चला जा रहा था। आस-पास हो कर गुज़रने वाली सवारियों अथवा स्वयं रिक्शा की टुन टुन की आवाज़ उसके ध्यान को तोड़ने का असफल प्रयत्न करतीं। लेकिन नसीम को न कुछ सुनाई देता था, न सुझाई।

बुढ़िया की लाश को घेरे हुए बहुत से आदमी खड़े थे। कोई नहीं जानता था कि यह बुढ़िया कौन थी, क्या करती थी। इसे सड़क पर शायद ही किसी ने कभी देखा हो। जीवित रहने पर उसकी फ़िक्र किसी

को न थी। काठ हो जाने पर उसके क्रिया-कर्म की सब को परवाह थी। यही चर्चा चल रहा था। नसीम का रिक्शा रुका तो लोगों ने रास्ता दिया। नसीम बुढ़िया के पास पहुँची। बुढ़िया कभी की कूच कर चुकी थी। नसीम के मुँह से 'आह' निकल गई।

"आप लोग इस बुढ़िया का कुछ इन्तज़ाम कर सकते हैं?" नसीम ने दर्द भरी आवाज़ में पूछा।

"हाँ, क्यों नहीं, यह लाश ऐसे ही पड़ी रहेगी? हम इसको घाट पर ले जायेंगे।" कई आदमियों ने साथ ही जवाब दिया।

"मैं भी आपके साथ चल सकती हूँ?" नसीम ने दूसरा सवाल पूछा। लोग हिचके तो नसीम ने फिर कहा, "मुझे चलने दीजिये, आप मुझे मत रोकिये।" नसीम की आँखों से आँसू उफन कर बाहर आ गये। लोगों की समझ में कुछ नहीं आया। शरीफ़ घराने की यह लड़की इस बुढ़िया के लाश के साथ क्यों जाना चाहती है? कौन है यह लड़की? लोग अवाक्, स्तम्भित थे।

"मैं चाहती हूँ कि मैं इस बुढ़िया की लाश के साथ घाट तक चलूँ। आप को कोई एतराज़ है?" नसीम ने फिर कहा।

लोग चुप रहे।

"तो मैं ज़रूर चलूँगी" नसीम ने कहा।

घाट पर पहुँच सवाल हुआ 'मुखाग्नि' कौन दे। नसीम ने फिर कहा, "मैं आग दूँगी। मुझे कोई रोक नहीं सकता।" लोग कुछ समझ न पाये। जैसे जादू के असर में सब कुछ हो रहा हो। कोई कुछ कहे इसके पहिले नसीम ने कुछ सरपत उठा, आग सुलगा, बुढ़िया के मुँह पर रख दिया। दो तीन बार चिता के चारों ओर घूम उसने बुढ़िया की लाश को प्रणाम किया और बिजली की भाँति वहाँ से चल दी।

नसीम आगे आगे भागी चली जा रही थी और अकबर उसके पीछे पीछे। रिक्शा घाट से कुछ दूर रुका हुआ था। नसीम रिक्शे पर धम से आ गिरी। अकबर ने आगे बढ़ने के लिये रिक्शे वाले से कहा।

वह नसीम को सँभाले बैठा था और रिक्शा फ़र्र फ़र्र करता सुनसान सड़क पर चला जा रहा था।

दूसरे लोग भी लाश के कुछ जल जाने के बाद वापस लौटे। उनकी समझ में कुछ नहीं आया था। पंजाबी नौ जवान लड़की, बड़े घर की, साथ में बूढ़ा सुफ़ेद दाढ़ी वाला मुसलमान नौकर, आँधी की तरह आई, तूफ़ान की तरह चली गई! लड़की थी, 'मुखदाह' किया, कोई कुछ बोल न सका। सभी चित्र लिखित से खड़े रह गये। किसी का कुछ बस न चल सका। और वह चली गई।

घर पहुँचते पहुँचते नसीम बेहोश सी हो चुकी थी। उसके बाल बिखर गये थे। हाँथ पैर बे जान, ढीले हो गये थे। अकबर ने सँभाल कर उसे उठाया और किसी तरह ऊपर ले गया। नसीम बिस्तर पर पड़ रही। बड़बड़ाती हुई बोली, "विनय को बुला लाओ अकबर, मेरी तबियत बहुत ख़राब है। और कुछ मत कहना।"

अकबर नसीम को अकेली छोड़ जाना नहीं चाहता था। लेकिन "क्या तुम अभी नहीं गये" पूछने पर वह रुक न सका।

× × ×

"नसीम की बात मेरी समझ में ठीक है। हमारा आन्दोलन एक व्यक्ति के विरुद्ध नहीं है। यह तो उस प्रथा के विरुद्ध है जो जमुना प्रसाद जैसे लोगों को आश्रय ही नहीं देती, पालती पोसती भी है। जिस प्रथा के हम शिकार हैं उसी प्रथा के सहारे वह फूलता फलता है। उस प्रथा को नष्ट कर दो, जमुना प्रसाद के हाँथ पाँव स्वयं टूट जायेंगे।" विनय ने संतोष को समझाते हुये कहा।

संतोष को विनय की बातें ठीक मालूम पड़ती हुई भी व्यवहार्य नहीं मालूम पड़ती थीं। उसने फिर कहा, "देखो, रास्ते में भी मैं तुमसे यही कह रहा था और यहाँ भी यही कहता हूँ कि तुम्हारी बातें सिद्धान्त रूप से सही भी होने पर अमली रूप से ग़लत हैं। सिद्धान्त वही सही है जो अमल में लाया जा सके। माधोपूर में सङ्गठन बढ़ाने और वहाँ के रहने वालों को जाग्रत करने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें

जमुना प्रसाद के ख़िलाफ़ उभारा जाय। जमुना प्रसाद सब का दुश्मन है। कौन उनसे नाराज़ नहीं है? इस नाराज़गी से फ़ायदा उठाना ही बुद्धिमानी है।"

"इससे तो यह साबित होता है कि लोग अपनी आम बदहाली और परेशानी को दूर करने की बात सोचना छोड़ जमुना प्रसाद से बदला लेने की बात सोचने लगें, क्यों?" विनय ने प्रश्नात्मक दृष्टि से सन्तोष की ओर देखा।

"क़रीब क़रीब यही। जमुना प्रसाद उनके दुखों का कारण है इसलिये जमुना प्रसाद को ख़त्म करना, उसकी कमर तोड़ देना अत्यावश्यक है।"

"मैं तुम्हारे इस कथन में आतंकवाद का अवशेष ही देख पाता हूँ। तुम कारणों और व्यक्तियों को एक में मिला देते हो। यह बहुत बड़ी भूल है। मेरी भी कुछ सालों पहिले यही धारणा थी। स्वयं मेरा उससे कोई स्नेह नहीं है। व्यक्तिगत रूप से उससे मैं जितना घृणा करता हूँ उतना तुम कर नहीं सकते। लेकिन मार्क्सवाद ने हमें अगर कुछ सिखाया है तो यही कि हम परिस्थितियों का वैज्ञानिक विश्लेषण करें और कारणों का पता लगा उन पर आघात करें। सफलता हमें अवश्य मिलेगी। केवल कुछ व्यक्तियों पर अपना गुस्सा उतार कर हम न तो लोगों की आम बदहाली दूर कर सकते हैं, न उन कारणों को ही समाप्त कर सकते हैं जिनके फलस्वरूप ये नृशंस अत्याचारी निर्बाध अपनी ज़ुल्म की चक्की चलाते चलते हैं। संतोष, ज़रा सोचो, जमुना प्रसाद क्या है? क्या वह परिस्थितियों की कठपुतली मात्र नहीं है? आज देश की हुकूमत की बागडोर ग़ैरों के हाँथ में है। इतनी महँगी है। जनता त्राहि त्राहि कर रही है। लेकिन उसका पुरसाँहाल कोई नहीं। काँग्रेस-मंत्रिमंडल होता तो क्या जमुनाप्रसाद इसी तरह मुनाफ़ाख़ोरी कर पाता? शहर काँग्रेस कमेटी की एक रिपोर्ट, गाँव की एक पंचायत और जमुनाप्रसाद का एक बार का सामाजिक बहिष्कार उसे छठी के दूध की याद दिला देते और तब भी वह कम्बख़्त न मानता तो उसे जेल की

हवा खानी पड़ती। आज क्या है ? हमारी कौन सुनता है ? मंत्रिमण्डल तो छोड़ो, राजनैतिक आकाश में काले बादल मँडरा रहे हैं। कब बरसेंगे कौन जाने ? हम आज यहाँ पंचायत खोल अपने किसान-मज़दूरों को संगठित कर रहे हैं। पहरों का इन्तजाम कर रहे हैं, बद-हाली, भूखमरी और नग्नता से बचने के उपाय लोगों को बता रहे हैं। कल अगर आकाश फटा और हम सीख़चों के भीतर नज़र आये तो इनका क्या हाल होगा ? जमुना प्रसाद की बन आयेगी उस समय। अधिकारियों की सहायता से वह गाँव वालों को तबाह कर डालेगा, किसी की बहू बेटी नहीं छोड़ेगा, जो कुछ संगठन हम कर पाये हैं, जो कुछ शक्ति माधोपूर वालों में आ पाई है, सब टूट फूट विशृँखलित हो जायेगी। राजनीति के साथ खेल नहीं करना चाहिये संतोष! आगा-पीछा सोच विचार कर तब कोई प्रोग्राम बनाओ और उसे अमली शक्ल दो। तभी काम चलेगा।" विनय ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में संतोष से कहा।

संतोष निरुत्तर था। तर्क और समझ में वह विनय का क़ायल था। लेकिन प्रकट रूप से विनय की बात मानना उसे अपमानजनक मालूम पड़ता था। बिगड़ कर बोला, "तो करो जो जी में आवे। मेरा क्या ? जब तक निभती है निभाये जाऊँगा, जब न निभेगी साथ छोड़ कर चला जाऊँगा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम मार्क्सवादी होकर इस प्रकार की शान्तिवादी मनोवृत्ति के कैसे हो गये। मुझे तो तुम्हारी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति पर कभी कभी शक होने लगता है। मैं जानता हूँ कि तुम पढ़े लिखे हो और किसी भी कुर्बानी से पीछे नहीं हटोगे। लेकिन तुम्हारी बातों को सुन कर ऐसा लगता है कि तुम सुधारवादी और शान्तिवादी होते जाते हो। कहीं पं० नरोत्तम प्रसाद का असर तो नहीं पड़ रहा है ?" संतोष ने व्यंग किया।

"बको मत, संतोष," विनय को गुस्सा आ गया। "तुमसे तो बातें करना असम्भव हो गया है। राजनैतिक मसलों पर ग़ौर करने और सही नतीजों पर पहुँचने के बजाय तुम व्यक्तिगत सम्बन्धों और असंगे

की बातें क्यों करते हो ? क्या मैं यह समझ लूँ कि नसीम से भी कम राजनैतिक समझ तुम्हारी है ? मैं पूछता हूँ, अगर तुमने जमुना प्रसाद को मारा पीटा और किसी तरह हिंसा का प्रयोग किया तो तुम्हें कांग्रेस वालों का सहयोग मिल सकेगा ? ज़ाहिर है कि कांग्रेस के लोग किसी भी हिंसात्मक कार्य में हाँथ नहीं बटा सकते। फिर अकेले हम तुम मिल कर ही सारी लड़ाई चलाते जायेंगे ! अगर हिंसा हुई और जमुनाप्रसाद को चोट चपेट आई तो पुलिस क्या करेगी, वह पुलिस जो जमुनाप्रसाद के कहे में है और दोनों का सहज गठबन्धन है ? मैं किसी भी तरह तुम्हारे प्रोग्राम से सहमत नहीं हूँ। रास्ते में जो कुछ भी बातें तुमसे कहीं मैंने उन पर ठंढे दिल और दिमाग़ से ग़ौर करो और तब बताओ क्या करना चाहिये। राजनीति भावावेश की वस्तु नहीं, तर्क और बुद्धि से काम लेना पड़ता है इसमें। दो क़दम पीछे भी हटना पड़े तो हम हट सकते हैं अगर एक क़दम आगे बढ़ने की उम्मीद हो। जान बूझ कर दहकते अँगारे में कूदना बुद्धिमत्ता नहीं, बुद्धि हीनता है।" विनय ने आँखें फाड़कर संतोष की ओर देखा। उसे आशा थी कि संतोष उसकी बातें समझ सका होगा।

संतोष नाराज़ हो चुका था। विनय की लेक्चरबाज़ी उसे अच्छी न लगी। उसकी बातों से अपमान का आभास मिलता था। नसीम से उसकी समानता दी गई, नहीं, उसे हेय बताया गया था। संतोष तिल-मिला उठा। उसने छूटते ही कहा, "अच्छा, रहने दो यह बकवास। मैं तुम्हारा लेक्चर नहीं सुनने आया। अगर मेरा प्रोग्राम तुम्हें नापसन्द है तो पंचों के सामने रख कर उसे असफल करा दो। मैं चुप रह जाऊँगा। तुम्हारी ये लम्बी चौड़ी बातें मेरी ज़बान बन्द नहीं कर सकतीं, न मेरे हाँथ पाँव पर ही बन्धन लगा सकती हैं।"

विनय ने नर्मी से कहा, "देखो संतोष, राजनीति दोधारी तलवार है, निशाना चूका तो वार अपने ही ऊपर पड़ती है। तुम एक बार सोचो तो मैं क्या कह रहा हूँ। तुम्हें नाराज़ होने के बजाय मुझे सम-झाने की कोशिश करनी चाहिये। हम दोनों ने मिलकर माधोपूर को

बल दिया है, शक्ति दी है। हम तुम अलग हो गये तो माधोपुर का क्या होगा? वहाँ की पंचायत क्या छिन्न भिन्न न हो जायेगी? पहरे का सारा इन्तज़ाम क्या ख़त्म न हो जायेगा? तब जमुनाप्रसाद से बदला लेने का तुम्हारा सपना भी तो पूरा न होगा?"

"चलो, हो चुका जो कुछ होना था। अब तुम और नसीम उस गाँधी के गोबर की पूजा करना और गाँव वालों से सूत कतवाना। देख ली तुम्हारी क्रान्तिकारी भावना और मनोवृत्ति। मैं चला अपनी राह" कहता हुआ संतोष कमरे के बाहर हो गया।

विनय को चोट लगी। उसने सोचा 'नसीम से संतोष को हेय बता कर उसने अच्छा नहीं किया। औरतों से हेय बनना पुरुष कभी भी स्वीकार नहीं करता, असलियत चाहे जो हो। लेकिन संतोष का व्यवहार भी किसी माने में उचित न था। जो आदमी बुद्धि से काम नहीं लेता, वह राजनीति में कभी भी निर्भर रहने लायक नहीं माना जा सकता। भावुक व्यक्तियों का ठिकाना ही क्या? उँह, चलो अच्छा हुआ। स्पष्ट बातें अन्त में अच्छा ही फल लाती हैं', सोच कर विनय ने संतोष कर लिया।

विनय थक गया था। उसने सोने की तैय्यारी की। पाकिट से सिगरेट निकाल उसने जलाया और आसमान के तारों की ओर देखने लगा। लेटे लेटे उसे नसीम की बातें याद आईं। शादी की बात! नसीम मेरे पीछे क्यों पड़ी है? वह क्यों चाहती है कि मैं शादी कर लूँ? अभी मेरी उम्र ही क्या हुई है? फिर, राजनीतिक परिस्थिति इतनी भयावह है। कलकत्ते पर बम बारी हो चुकी है। काँग्रेस का ऊँट किस करवट बैठेगा यह भी नहीं कहा जा सकता। हमारी पार्टी को क्या करना होगा, उसे कौन से दिन देखने पड़ेंगे, कुछ पता नहीं। ऐसे मौक़े पर शादी की बात कुछ जँचती नहीं। छोड़ो भी। लड़कियों की बातों पर ज़्यादा ध्यान नहीं देना चाहिये। विनय ने करवट बदली। सिगरेट का अंतिम हिस्सा ही बचा था, ज़ोर का एक कश खींच उसने आँखें मूँद लीं। थका था, कुछ मिनटों बाद ही गहरी नींद आ गई।

अकबर ने एक दो नहीं कई आवाज़ें दीं, तब विनय की नींद टूटी। इतनी रात गये अकबर क्यों आया? विनय घबरा गया। नीचे आ जल्दी से पूछा, "कहो भाई, इतनी रात गये कैसे चले? ख़ैरियत तो है?"

"जी हाँ, बाबू जी ख़ैरियत ही है। बीबीजी ने आप को याद किया है. अभी बुलाया है।" अकबर ने स्थिरता से कहा।

साइकिल बाहर निकाल, दरवाज़े पर ताला लगा, विनय ने पैडिल मारी। एक मिनट में ही साइकिल हवा से बातें कर रही थी।

नसीम कमरे में चारपाई पर करवटें बदल रही थी। वह जानती थी कि अकबर कोई भेद न खोलेगा। वह .ख़ुद भी विनय से सारी बातें नहीं बताना चाहती थी। साइकिल की खड़खड़ाहट सुन वह समझ गई कि विनय आ गया।

साइकिल बाहर ही फेंक विनय दो दो सीढ़ियाँ फाँदता हुआ ऊपर आया और उसने सीधे नसीम के पास जा पूछा, "कहो नसीम, कैसी तबियत है? यह तुम्हें हो क्या रहा है? ये बाल क्यों बिखरे हैं? आँखों में सूजन क्यों है?" विनय पूछता ही गया, "तुमने इतनी रात गये मुझे कैसे याद किया?"

नसीम ने अपनी ओर और निकट आने का इशारा किया। विनय नज़दीक खिसक उसके माथे पर हाँथ फेरने लगा। नसीम के बालों में अपनी उगँलियों को फँसाते और घुमाते हुये विनय बोला, "नसीम, क्या बात है? आज तुमको यह हो क्या गया है? कौन सी आफ़त मुसीबत आ गई? शाम को तो तुम अच्छी भली थीं?"

"कुछ नहीं, मुझे डर लग रहा है? नींद नहीं आती। तुम्हें यहीं सोना होगा मेरे पास, इसी लिये तुम्हें बुलाया है" नसीम ने सादगी से, अपने सारे भावों, मन के उमड़ते तूफ़ानों को, दबाते हुये कहा।

शील, सभ्यता और संयम की प्रति मूर्ति नसीम से इस बात की सपने में भी आशा न करने वाला विनय घबरा गया। यों तो वह कलेजा मज़बूत करके आया था। कुछ न कुछ विचित्र अघट घटना के

लिये शंकालु-हृदय विनय, दृढ़-निश्चय हो कर आया था सभी परिस्थितियों का सामना करने की नियत से। परन्तु नसीम ने जो कुछ कहा उसके लिये वह कदापि तैयार न था। शाम वाली बातें उसके दिमाग़ में घूम गईं। 'क्या नसीम शाम को यही कहना चाहती थी? क्या इसी बात के लिये शाम को भूमिका बनाई जा रही थी? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नसीम का हृदय विशाल है, और मस्तिष्क भी। वह इतने छोटे दायरे में सोच नहीं सकती! फिर क्या बात है?' विनय चुप बैठा सोचता रहा। कभी वह नसीम की ओर देखता, कभी जलते हुये बिजली के बल्ब की ओर।

"सोच क्या रहे हो, आओ, सो जाओ मेरे पास। तुम्हारे सीने पर सिर रख सुख की नीद सोना चाहती हूँ, आओ।" नसीम ने विनय की ओर देख कर कातर करुण स्वर में कहा।

"पागल तो नहीं हो गई हो, नसीम! तुम कह क्या रही हो? ऐसे दिमाग़ ख़राब नहीं करते!" विनय ने दुलार से कहा।

"नहीं विनय, मैं पागल नहीं हो गई हूँ। मान मर्यादा सब का मुझे ध्यान है। फिर भी मैं चाहती हूँ कि तुम यहीं, अभी, मुझे अपनी गोद में ले लो और हमेशा के लिये! मैं होश में बातें कर रही हूँ, दिमाग़ मेरा ठीक है विनय!" नसीम ने आजिज़ी से कहा।

"अच्छा, अच्छा। घबराओ नहीं, मैं यहीं हूँ तुम्हारे पास, हमेशा रहूंगा भी। आराम से सो जाओ।" विनय ने नसीम का सिर अपनी जाँघों पर ले लिया और उसे सहलाने लगा।

थोड़ी देर तक नसीम चुपचाप पड़ी रही। फिर यकायक करवट ले, अपना मुँह विनय की जाँघों में गड़ा, दोनों हाथों से विनय की कमर पकड़, नसीम फूट पड़ी।

४

"मुनीम जी, कितने बोरे आये गेहूँ के ?" जमुना प्रसाद ने पूछा।

चश्मे के भीतर से झाँकते हुये, कान पर क़लम रख, मुँह ऊपर उठा, मुनीम जी बोले, "ढाई सौ आये सिर्फ़।"

"लेकिन दलालों ने तो चार सौ का वायदा किया था ? बात क्या है ?" जमुना प्रसाद ने पूछा।

"किसान अनाज को दबा के रखने लगे हैं। सोचते हैं आगे न मालूम कैसे दिन आयें। उनसे अनाज निकाल लेना मुश्किल हो रहा है। दलाल बेचारे क्या कर सकते हैं ?" मुनीम जी ने जवाब दिया।

"मुनीम जी, कोई रास्ता निकालिये। यही मौक़ा है। गेहूँ की ख़रीद का अब आख़िरी समय आ गया है। चूक गये तो बहुत बुरा होगा।" जमुना प्रसाद ने चिन्तित हो कहा।

"हाँ, सोचता तो मैं भी हूँ यही। घन्टे भर पहले कई दलाल आये थे। लेकिन सब घबराये हुये थे। जब से माधोपूर की पंचायत ने एलान किया है कि कोई रुपयों की लालच में अनाज न बेचे, अपने खाने पीने भर को रख ले, तब से किसानों ने अनाज बेचना बहुत कम कर दिया है। दलाल इधर उधर दौड़ते हैं, लेकिन नाउम्मेद हो वापस चले आते हैं।"

"पंचायत वालों ने नाकों दम लगा रखा है। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आता। विनय को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उस ढोंगी नरोत्तमप्रसाद को अपने साथ ले उसी ने यह पंचायत बनाई है। उसी ने किसानों को बहकाया है। और यह रात को पहरा क्या पड़ने लगा जैसे इन्हीं का राज हो गया। सरकार बहादुर की हुकूमत ही उठ गई ! देखते नहीं, अपनी नेतागिरी जमाने के कैसे ढंग निकाले हैं इन सभों ने ?"

"जो भी हो, अनाज का मिलना मुश्किल हो रहा है। उसका कोई उपाय निकालिये नहीं तो आगे मुनाफ़े की कुछ भी उम्मेद नहीं

है। मेरा दिमाग़ तो काम नहीं कर रहा है। पहरे वहरे की वजह से कितना घाटा लग रहा है! आख़िर यह तमाशा कब तक चलेगा ?"

"बँधी बधाई रक़म हाथ से निकली जा रही है। कम्बख़्तों ने सभा में क़सम क्या खाई कि शराब का व्यौपार ही बिगड़ा जा रहा है। लेकिन बच्चू लोग कब तक निभायेंगे यह झूठी-सच्ची क़सम? नीच नीच ही होते हैं। पंच के डर के मारे क़सम खाली, अब निभा लें तो जानूँ? हाँ, ससुरों को हमारी दोहरी आमदनी मारनी थी सो मार लें, लेकिन कब तक? जब तक जमुनाप्रसाद का बस चलेगा, उसकी आमदनी में कोई बेंड़ा नहीं लगा सकता। पंचायत वाले चले हैं शराब बन्द करने, जुआ रोकने! देखता हूँ मैं, ये लोग क्या क्या करते हैं?" अँकड़ते हुये जमुना प्रसाद ने कहा।

"पंचायत वालों से लड़ना झगड़ना ठीक न होगा। इन्हीं किसानों कंत्रीगढ़ों और मल्लाहों से सारी आमदनी होती है। ये लोग अपनी पंचायत से डरते हैं, उसके खेलाफ़ नहीं जा सकते। पंचायत के ख़िलाफ इन्हें उभारना अभी ठीक न होगा। आग में घी डालने से आग बढ़ेगी, बुझेगी नहीं। चौधरी रामदीन को मिला लिया जाय और उसी के ज़रिये पंचायत पर अपना असर जमाया जाय तो काम ठीक हो सकता है।" मुनीम जी ने तरकीब बताई।

"रामदीन को तोड़ लेना आप आसान काम समझते हैं मुनीमजी? सब टूट जाँय रामदीन नहीं टूट सकता। उसका लड़का मदन बड़ा तेज़ है। देखते नहीं तिग्गी टोपी लगाए नेता बना फिरता है। जब तक वह पंचायत में है और स्वयं सेवकों का अगुआ बना हुआ है, रामदीन को अपनी ओर मिला लेने का सपना पूरा नहीं हो सकता। मेरा ख़्याल है कि मतई को बुलाना चाहिये। मतई समझदार आदमी है, हमारी बात उसकी समझ में जल्दी आ जायेगी। आप क्या कहते हैं?' मुनीम जी की ओर देख जमुनाप्रसाद ने कहा।

"मतई तो और भी ज़हर का बुझा हुआ है। उसकी भतीजी के ब्याह की बातचीत चल रही है रामदीन के लड़के मदन से। रामदीन

चौधरी है और मतई पंचायत के मुखियों में से एक है। मतई रामदीन का साथ नहीं छोड़ सकता। कम से कम मुझे तो कोई उम्मेद नहीं है।"

"अच्छा एक तरीका मेरी समझ में आरहा है। मतई के पास रुपये पैसे की कमी तो है ही ! इस मँहगी में वह दोनों भाई और भी परेशान हो गये हैं। शादी में तीन चार सौ रुपयों का इन्तज़ाम करना होगा उन्हें। मतई को बुलवा के कहो कि हम रुपये उसे अवश्य दे देंगे लेकिन पंचायत में उसे हमारा आदमी बनकर रहना होगा और हम जो कहें उसे करना होगा, अगर एक बार वह हाँ कह देगा तो अपनी बात पूरी ज़रूर करेगा, चाहे सारा गाँव ही उसके खिलाफ़ हो जाय।" जमुना प्रसाद ने ऐसे कहा गोया उन्हें अपने तरीके की सफलता पर पूरा विश्वास था।

"मुझे तो नहीं लगता कि रुपयों के लालच में मतई ऐसा करने को तैयार हो जायगा। मतई अपनी बात का धनी है। वह पंचों के साथ हो गया तो हो गया। अब वह उनका साथ नहीं छोड़ेगा चाहे जो हो जाय। गाँव भर में अपनी बदनामी कराने और सबको अपना दुश्मन बनाने से अच्छा वह समझेगा कि उसकी भतीजी की शादी टल जाय। लालाजी, मैं मतई को एक नहीं कई मामलों में परख चुका हूँ। भगवान से डरता है, कभी हमारी बातों में वह नहीं फँसेगा।" मुनीम जी ने जमुना प्रसाद के इस दाँव को भी कच्चा साबित कर दिया।

"आप ही बताइये, फिर किया क्या जाय ? क्या चुप बैठा अपना सर्वनाश देखा करूँ ? पंचायत न हुई हमारा सारा कारोबार बन्द करने का कारण बन गई।" जमुना प्रसाद खीझ कर बोले।

"इस मौके पर नत्थू काम आ सकता है। दो चार रुपयों का खर्च है, नत्थू को ठीक किया जाय। वह जाकर मतई से बातें करे। अगर मतई न तैयार हो तो कन्हई ज़रूर तैयार हो जायेगा। उसकी अपनी लड़की का मामला है। घर में भूँजी भाँग नहीं है। दबसट में फँसा है।" मुनीम जी ने ठीक रास्ता बताया।

जमुना प्रसाद को कुछ राहत मिली। वह अब तक टहल टहल कर

बातें कर रहा था। चार दिन पहरा पड़ा तो जुये के अखाड़े में कुत्ते लोटने लगे। लोगों ने पंचायत में क़सम क्या खाई कि कच्ची शराब का बिकना ही बन्द हो गया। इक्के दुक्के चोरी छिपे पी भी लेते हैं तो क्या हुआ ? पीपे का पीपा भरा हुआ है। जहाँ पचास साठ बोतलों की रोज़ निकासी होती थी वहाँ अब दस पाँच की नौबत आ गई थी। चार ही दिन में पंचायत ने गाँव की ज़िन्दगी में कायापलट कर दिया था। लड़ाई झगड़ों की कमी से घरवालियों की ज़िन्दगी भी कुछ अच्छी हो चली थी। पीने वाले खीझते ज़रूर थे। पर खीझें वे पंचों पर, पंचायत पर। घरनियों का क्या क़सूर ? हाँ, जमुनाप्रसाद के दिल में आग लगी हुई थी। उसको दुख था, मन में ग़ुस्सा भी था, उसकी आमदनी मारी जा रही थी।

अपनी गद्दी पर बैठते हुये जमुना प्रसाद ने कहा, "तरकीब तो आपने ठीक बताई मुनीम जी, लेकिन लग जाय तब जानिये। मतई से न मिल पहले नत्थू कन्हई से मिले। कन्हई अगर तैयार हो गया तो मतई का क्या है। भाई का साथ थोड़े ही छोड़ेगा।"

जमुना प्रसाद सिर नीचा किये बहियाँ उलटने लगा। मुनीम जी ने चश्मा ठीक किया। उसकी बाईं कमानी टूट गई थी। काले डोरे से कान में लटका हुआ चश्मा अटका रहता था। मुनीम जी ने नाक के आख़िरी हिस्से पर चश्मा फिट किया और बही में मुड़िया अक्षरों में सटासट लिखने लगे। मुनीम जी की क़लम ऐसे चल रही थी जैसे बरसात में केंचुये चलते हैं अपने पीछे टेढ़ी मेढ़ी लकीर छोड़ते हुये। थोड़ी देर में मुनीम जी ने गर्दन उठा, लाला जी की ओर देखकर कहा, "सूद बियाज का क्या होगा ? नत्थू अभी आयेगा। सिखा पढ़ा कर उसे भेजा जायेगा। बता तो दीजिये उससे क्या कहना होगा।"

"आना रुपया और क्या ? इससे कम में क्या दिया जायेगा ? जगह जायदाद तो उसके पास कुछ है नहीं। किस बिरते पर उसका भरोसा किया जाय। मजबूरी है वरना वहाँ रुपया फँसाना ठीक थोड़े ही है। इन हरामख़ोरों का क्या ? दावा करो, डिग्री कराओ, कुर्क़ी ले आओ।

इतना ख़र्च करने पर मिलेगा क्या कुछ बर्तन भाँड़े, वह भी टूटे फूटे ! इससे कम में रुपया फँसाना ठीक न होगा। चार सौ माँगे तो छः सौ लिखना। समझे !" जमुना प्रसाद ने मुनीम जी को बताया।

"अच्छी बात है। नत्थू को भी कुछ देना होगा। वह भी एक ही छँटा बदमाश है। जब तक कुछ पूजो नहीं हाँथ पैर नहीं, डोलाता।" मुनीम जी ने याद दिलाई।

"हाँ, यह ठीक कहा। वह भी साला महा कपटी है। सामने सरकार सरकार कहता है, पीछे गला काटने को तैयार रहता है। दे देना उसे भी दस पाँच नज़राने में से।"

"हूँ, अच्छा" कह मुनीम जी फिर लिखने लगे।

घड़ी भर बाद नत्थू सुर्ती मलता हुआ उधर आ निकला। चमरौधा पैरों में चरमरा रहा था। काला था जैसे भून। अधपकी मोछ और लाल आँखें जैसे रात भर जगा हो। लम्बी सी लाठी बग़ल में दबाये हुये सीढ़ी पर चढ़ा। निचले ओंठ और दाँतों के बीच सुर्ती दबा झुक कर लाला जी को सलाम किया और भीतर आ गया। जूते उतार आगे बढ़ा तो जमुना प्रसाद बोले,

"यह लीजिये, मुनीम जी नत्थू आ गये। अभी याद किया अभी सामने हाज़िर। भई नत्थू, तुम सौ बरस जियोगे। बड़ी ज़रूरत थी तुम्हारी, ख़ूब आये।" विह्वल हो जमुना प्रसाद ने कहा।

"अरे सरकार, हम तो खिदमतगार हैं। जब सरकार का हुकुम हो, जहाँ हुकुम हो, हाजिर हैं। जहाँ सरकार का पसीना चुवै, वहाँ खून गिराने को नत्थू तैयार है। क्या हुकुम है सरकार !"

"आज कल बड़ी मुसीबत है नत्थू ! जब से यह पंचायत बनी है हमारा बड़ा नुकसान हो रहा है। ये गाँव वाले बड़े बदमाश हो गये हैं। छोटे बड़े का लिहाज़ ही नहीं रह गया है जैसे। जो मन आता है करते हैं। कुछ रास्ता बताओ। मैं तो परेशान हो गया हूँ।" जमुना प्रसाद ने विश्वास की आँखों से नत्थू की ओर देखा।

"यह मदन साला, रामदीन का छोकरा ही सब कुछ चौपट कर

रहा है। गाँव के लौंडों को बिगाड़ रखा है। अमन चैन से कटती थी तो यह बला आगई पंचायत की सिर पर। हुकुम हो तो सरकार मदन मतई सभों को पीट पाट दुरुस्त कर दूँ।" सीना फुला, गर्व से, नत्थू बोला।

"नहीं भाई, मार पीट करने से क्या फ़ायदा। सब हमारी प्रजा हैं। हमसे आज दूर हैं, कल नज़दीक आवेंगे ही। जायेंगे कहाँ? लेकिन कितनी बुरी बात है! इतना एहसान किया इन लोगों के साथ, हमेशा इनके आड़े आया और आज ये ही लोग हमारी दुश्मनी करते हैं। कहते हैं जो हमारा साथ देगा, उसका हुक्का पानी नाऊ हज्जाम सब बन्द कर देंगे। तुम्हीं बताओ नत्थू, यह भी कोई भलकरम है। जब कभी रुपये-पैसे, दरी गलैचे की जरूरत पड़ी मैं इनके काम आया। ब्याह शादी में दरवाज़े की शोभा बढ़ाने ख़ुद गया। बीमारी-आरामी में किसी तरह की मदद से नाहीं नहीं की। और अब हमारी ही जड़ खोदने चले हैं ये लोग।"

"सरकार एहसान क्या है क्या जानें ये नीच कमीने लोग? जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करते हैं। सरकार चाहें तो अभी १०६ में इन ससुरों की चालान हो जाय और सब सेखी भूल जाय। लेकिन आप तो दयावान हैं, सीधे का मुँह कुत्ते चाटते हैं। आप ने भिलाई की, एहसान किया इनके साथ, अब उसका बदला यह मिल रहा है। कलजुग आ गया है सरकार, कलजुग!" जमुना प्रसाद को प्रसन्न करने के लिये नत्थू बोला और सुर्ती थूकने बाहर जा, एक मिनट में गला साफ़ कर वापस आ, कहने लगा, "एक और तरकीब है। यह जो ढोंगी मतई है उसकी भतीजी भी खूब माल है इस समय। किसी से कहा जाय जरा छेड़छाड़ ही कर दे। मतई कन्हई बिगड़ेंगे ज़रूर। मार पीट हो जायेगी, बस जरा हवालात की हवा खा आवें। दूसरे ही दिन जमानत के लिये हाँथ पाँव जोड़ेंगे, मदद मागेंगे। सारी हेकड़ी भूल जायेंगी। एक पैर पर खड़े होंगे, थूक के चाटेंगे।" नत्थू ने सुझाव पेश किया।

लेकिन मुनीम जी को यह प्रस्ताव ठीक न जँचा। अभी तक बैठे बैठे चुपचाप सुनते रहे। अब चश्मा ठीक कर बोले, "नत्थू, बात तो ठीक ही कहते हो तुम। लेकिन पुलिस के चक्कर में पड़ना हम ठीक नहीं समझते। क्या हो कौन जाने! कहीं लेने के देने न पड़ जायँ! मेरी राय तो कुछ और ही है।"

"बताइये आप ही फिर क्या किया जाय? बुजुर्ग हैं, जो कहेंगे उचित ही कहेंगे।" मुनीम जी की ओर देखते हुये नत्थू ने कहा।

मुनीम जी ने कलम रख दिया। लिखी हुई पंक्तियों पर पीतल की छेदों वाली डब्बी से बालू डाल सुखाया। बालू फिर डब्बी में डाल दिया और इतमीनान से बोले, "नत्थू, रास्ता तो है एक, लेकिन तुम्हीं चाहो तो दाँव चले। तुम्हें इनाम इकराम सरकार देंगे ही। तरीका आसान है, कामियाबी ज़रूर मिलेगी, लेकिन कर गुज़रो तो।"

"हुजूर करूँगा क्यों नहीं, जिसके जरिये अपनी रोटी चलती है, उसके काम न आऊँगा तो नमक हरामी करूँगा। आप हुकुम भी तो करें।" नत्थू ने कहा।

"कन्हई की लड़की की शादी होने वाली है यह तो तुम जानते ही हो? कन्हई मतई मान मरजाद वाले हैं, लेकिन पैसा इनके पास बिल्कुल नहीं है। ये लोग उधार बाढ़ी की कोशिश करते होंगे। इनको समझाओ कि ये लाला जी से ही परनोट लिख कर रुपिया लें। आसानी से, बिना दौड़ धूप किये रुपया मिल जायेगा। मगर एक शर्त है। वह यह कि पञ्चायत में वे लाला जी के आदमी बन कर रहें। लाला जी जो चाहें वही वह करें। अगर ऐसा हो गया तो शराब की बिक्री भी न बन्द होगी, न जुआ ही रुकेगा। लाला जी की इतनी सारी आमदनी मारी जा रही है, वह न मारी जायेगी और तुम लोगों का कारोबार भी चलता रहेगा। मतई के ऊपर मुझे एतबार नहीं। वह बात का धनी है। पंचायत वालों का साथ अब वह शायद ही छोड़ सके। लेकिन कन्हई की अपनी लड़की का मामला है। किसी भी हालत में वह शादी के लिये रुपये जुटायेगा। कन्हई राज़ी हो गया तो मतई को अपने

बस में करना आसान हो जायेगा। किसी तरह तुम कन्हई को राज़ी कर लो। इधर उधर की सारी बातें समझा कर उससे कहना। मान जाय तो अच्छा ही है।"

"हुजूर, कोसिस तो मैं करूँगा, लेकिन ये दोनों भैया आपस में मेल जोल बहुत रखते हैं। मतई की बात कन्हई टाल नहीं सकता और मतई को तोड़ना बड़ा मुश्किल है। आपका हुकुम है तो मैं जाल फैलाऊँगा। चिड़िया फँस गई तो बात बनी ही है। लेकिन काम कठिन मालूम पड़ता हैं।"

नत्थू के उत्साह में कमी न होने पावे इसके लिये फिर मुनीम जी ने दोहराया, "लाला जी इनाम बख्शीश में पीछे थोड़े ही हटेंगे।"

"सो बात तो मैं जानता हूँ। यह भी कोई कहने की चीज है। सरकार का कोई पहिला काम थोड़े ही करने जा रहा हूँ। सोचता हूँ मेहनत बहुत करनी पड़ेगी, बड़ा उतार-चढ़ाव दिखाना पड़ेगा।" नत्थू ने जमुनाप्रसाद की ओर देखा।

"आसान काम तो सभी कर सकते हैं। कठिन मौक़े पर ही तो तुम्हारे जैसों की याद आती है। नत्थू, दस पाँच जो भी कहोगे, मुझे इन्कार न होगा।" जमुना प्रसाद ने स्पष्ट बात कही।

"दस पाँच रुपये के तो सरकार पान खाकर थूक देते हैं। इस काम में आपको कुछ और खर्च करना चाहिये। गुलाम का भी पेट भरे तो मन में हौसला पैदा हो।" नत्थू ने मोल तोल शुरू किया।

"क्या कहते हो बोलो?" मुनीम जी सँभालने के लिए बोले।

"क्या कहूँ, पचास भी न मिले तो क्या हुआ? इतना बड़ा काम करूँगा सरकार और पचास रुपये भी न मिलेंगे? सरकार ख़ुद ही सोचें, इसी तरह तो बाल बच्चों की रोटी चलती है। आप ही बताइये...।"

"भाई बहुत ज़्यादा कह रहे तो तुम। इतने ज़रा से काम के लिये इतने रुपये! नत्थू तुम्हीं सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा? ज़रा ज़रा से काम के लिये इतना ज़्यादा रुपया माँगोगे तो हमारा दिवाला पिट जायेगा।" जमुना प्रसाद ने नत्थू की ओर देखकर कहा।

"तो फिर सरकार मुझे माफी दी जाय। धरम बेचूँ तो भी कौड़ी के दाम, ऐसा मूरख मैं नहीं। गुनाह करूँ और लज्जत भी न मिले तो किस काम का?" नत्थू ने बेरुखी से कहा और चलने की मुद्रा बनाई।

"अरे भाई बैठो भी तो" घबराकर जमुना प्रसाद बोले—"यही तो तुम्हरे अन्दर बुरी आदत है। ज़बान से बात निकली तो उसी से चिपक गये। जाओ बीस रुपये ले लेना। अब तो ख़ुश हो।"

"सरकार, मुझे एक पाई न दें। आप ही का दिया तो खाता हूँ। हमेशा मेहनत मजदूरी मिलती रही, अबकी बार न सही। लेकिन रैट न बिगाड़ूंगा।" नत्थू अडिग था।

मुनीम जी को यह तरीक़ा अच्छा न लगा। बीच बिचाव की नीयत से बोले, "नत्थू हमेशा ज़िद करना अच्छी बात नहीं। ज़रा से काम के लिये लाला जी बीस रुपये दे रहे हैं, अब और क्या चाहिए! काम न करना हो तो दूसरी बात है। तुम कोई नये आदमी तो हो नहीं न यह आख़िरी काम ही है। फिर मौक़ा आये तो ले-लेना जीभर!"

नत्थू अब सहमा और मुनीम जी पर सारी बात छोड़ उठता हुआ बोला, "अब जाता हूँ सरकार, ताबेदार को इन्कार नहीं। जैसा ठीक समझें करें। अपनी रोटी के लिए कौन गोर नहीं करता। जो कुछ खता हो माफ करें। जल्दी ही खबर दूंगा।"

"हाँ, ज़रूर जल्दी ही ख़बर देना, दिल लगा रहेगा। अच्छा जाओ" जमुना प्रसाद ने कहा। नत्थू बाहर चला गया तो मुनीम जी की ओर देख फिर जमुना प्रसाद ने कहा, "देखा मुनीम जी, साला कितना धूर्त है।" सिर हिला, धीरे से हूँ कह, मुनीम जी बही पर अक्षर गोड़ने लगे।

उधर नत्थू, कन्हई के घर की ओर बढ़ा। रास्ते में मतई से भेंट हो गई। 'जय राम जी की' कह नत्थू ने अभिवादन किया, "कहो भगत जी, सब कुशल तो है?"

"हाँ, भैया सब पंचों की किरपा है, कहाँ जा रहे हो।" कृतज्ञता

प्रकट की मतई ने !

"जमाना बड़ा खराब लगा है भगत, कोई किसी की इज्जत, आबरु का ध्यान नहीं रखता। छबिया के ब्याह का क्या हुआ ? मदन है तो अच्छा लड़का।" नत्थू ने कड़े से चर्चा चलाया।

"लड़का तो अच्छा है भैया, लेकिन बड़ी कंगाली हैं। समझ में नहीं आता क्या किया जाय। उधार बाढ़ी का भी जुगाड़ नहीं लगता। भगवान ही बेड़ा पार करें।" मतई उदास हो बोला।

"नहीं, ऐसी उदासी की क्या बात है ? कन्या का ब्याह भी कहीं रुका है ! यह तो यग्ग है यग्ग। इसमें तो दुस्मन भी मदद करते हैं। हमारे लिये खिजमत हो तो बताओ।"

"तुम कोई बाहर तो थोड़े ही हो नत्थू भैया। चार सौ रुपयों का मामला हैं। कहाँ जाऊँ ? किसके सामने हाँथ फैलाऊँ ? बिरादरी में तो कोई दिखाई नहीं पड़ता।"

"जमुना प्रसाद से क्यों नहीं कहते ? है तो बड़ा मक्खी चूस, लेकिन सायत मान ही जाय।" नत्थू ने दाँव फेंका।

"न भैया, उस नीच के पास मैं न जाऊँगा। वह गाँव का दुस्मन है। किसी की इज्जत आबरू जाय उससे क्या मतलब ! उसे तो रुपये सीधा करने से काम है। उस पापी के सामने घिघियाने के पहिले मर जाना अच्छा समझता हूँ। कोई और दरवाजा बताओ।" मतई न चाहते हुये भी जमुना प्रसाद के नाम पर खरी खोटी सुना ही गया।

"मतई भैया, अपना स्वारथ हो तो कुत्ते की भी दुम सहलाई जाती है। जमुना प्रसाद चाहे जैसा हो, तुम्हें अपना काम निकालना है। काम निकालो और फटकार कर चले आओ। उसके भले बुरे से तुम्हें क्या लेना देना है ? तुम तो खुद बुद्धिमान हो। भले काम के लिए बुरे से बुरे आदमी के पास भी जाना पड़ता है। कन्या के ब्याह से बढ़कर पुन्य वाला काम और क्या हो सकता है ? ऐसे काम के लिए अगर जमुना प्रसाद के पास जाना भी पड़े तो तुम्हें जरूर जाना चाहिए।" नत्थू ने फिर ज़ोर दिया।

"नत्थू भाई, मैं पंचायत के पंचों में से एक हूँ। पंचायत ने तय किया है कि जमुना प्रसाद से कोई भी गाँव का रहनेवाला अपना किसी किस्म का सरोकार न रखे। तुम्हीं बताओ, मैं कैसे जमुना प्रसाद के पास जा सकता हूँ? दुनियाँ में क्या मुँह दिखाऊँगा? पंच मुझे क्या कहेंगे, गाँव वाले क्या कहेंगे? अपने स्वारथ के लिये गाँव वालों के खेलाफ़ जाऊँ? नहीं, यह नहीं हो सकता।"

मतई की बातों में दृढ़ता देख नत्थू ने चोट किया, "ठीक कहते हो भगत! अपनी बेटी होती तो भी शायद तुम यही कहते, क्यों? भाई की लड़की है, इसलिये लम्बी-चौड़ी बघार लो।" बिच्छू के डंक सा मारता हुआ नत्थू आगे बढ़ गया। मतई को चोट लगी। जैसे वह चौंक गया। कन्हई तो ऐसा कभी न सोचेगा, इसका मतई को दृढ़ विश्वास था। लेकिन गाँव वाले कितनी उधेड़ बुन करते रहते हैं इसका उसे अन्दाज़ न था। नत्थू की तरह क्या गाँव के और लोग भी इसी तरह न सोचते होंगे! मतई मर्माहत सा अपने घर की ओर चला।

रास्ते में मतई की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। कन्हई ने सारा भार मतई के ऊपर छोड़ दिया था। खुद कुछ न करता, कुछ न बोलता। जो कुछ हो, 'भैया जानें' बस यही एक जवाब था उसके पास। छबिया की माँ ने उसे कई बार उकसाया, लेकिन बारबार वह यही कहता, 'भैया के आगे मैं क्या बोलूँ? वह जो करेंगे ठीक करेंगे।' कन्हई अपने भाई के प्रति अचल आस्था रखता था। मतई को इसका पूरा पता था। फिर भी आज नत्थू ने ऐसी बात कह दी। गाँव वाले भी ऐसा ही सोचते होंगे। सभी ऐसा सोचेंगे तो कन्हई पर भी असर पड़ेगा। कन्हई के मन में मैल आया तब क्या होगा? मतई का सुस्थिर मन चंचल हो उठा। उसकी गंभीरता और शान्ति भीतर ही भीतर खोखली होने लगी। रुपये कहाँ से आयेंगे? वह किसके दरवाजे जाय? कौन उसकी मदद करेगा इस मौके पर? मतई सोचता सोचता अपने दरवाज़े पर जा पहुँचा।

छबिया को आवाज़ दे, एक लोटा पानी के लिये कह, मतई चार-

पाई पर लेट गया। थोड़ी देर में कन्हई भी आया और सिर नीचा कर चौखट पर बैठ गया। मतई उदास था कुछ न बोला। उसका दिल बैठा जा रहा था। कन्हई ने मौन तोड़ते हुये कहा, "भैया, नथुआ मिला था, जाने क्या उलटी सीधी बक रहा था। मैंने तो उसे भाग जाने के लिये कह दिया। लड़ाना चाहता था आपस में। ऐसा दुष्ट है......।"

"क्या कह रहा था नत्थू" कन्हई की ओर करवट लेते हुये मतई ने कहा।

कन्हई तैश में था। बोला, "वह कह रहा था ससुरा, अपनी लड़की हो तो ईमान धरम का पता लग जाय। तुम्हें ढोंगी, स्वारथी और जाने क्या कह रहा था। मैं तो मार बैठता, फिर कुछ सोच समझ कर रुक गया। मुझे तो इसमें कुछ चाल नजर आती है। जमुना प्रसाद ने उसे सायत हम दोनों में भेद कराने के लिये भेजा हो। मैं उस पापी से रुपये लेने के पच्छ में नहीं हूँ। भैया, वह रुपये देने को तैयार क्यों है? इसी लिये न कि हम पंचों से विमुख हो जांय और उसकी गाने लगें।"

"जमुना प्रसाद ने कुछ कहलवाया था क्या?"

"हाँ, नत्थू कह रहा था कि अगर हम दोनों भाई पंचों का साथ छोड़ उसकी ओर मिल जाँय तो वह हमें चार सौ रुपये, एक आने रुपये सूद पर दे देगा। चार सौ के छः सौ लिखने पड़ेंगे। मैंने साफ इन्कार कर दिया। नत्थू गुस्सा हो गया। जाते जाते कह गया, 'गाँव वालों की नीयत का ठिकाना नहीं, जवान लड़की है। भला चाहो तो रुपये लेकर ब्याह कर डालो, मुक्ति पाओ, नहीं तो मुँह में कालिख लगेगी। अभी जिस पंच की दुहाई देते हो वही पंच उस वखत तुम्हारे मुँह पर थूकेंगे और जाति बाहर किये जाओगे। हुक्का पानी सब बन्द होगा।' भैया जी में आया कि साले के मुँह में चाँटा रसीद कर दूँ, लेकिन रुक गया।"

"मारा क्यों नहीं ससुरे को?"

"यही, कुछ सोच विचार में पड़ गया। तुमसे भी तो नहीं पूछा

था।' पूछ चुका होता तो……।"

"इसमें पूछने की क्या बात थी ? देते साले को दो कन्टाप। आँखों से चिनगारी निकलने लगती मरदूद की। भाई भाई में विरोध कराने चला था। मैं सब समझता हूँ। वही पाजी जमुना प्रसाद ने कुछ चटाया होगा, बस चल दिया जाल बिछाने। पाप ही की कमाई खाता है न ? भगवान सजा भी नहीं देते ऐसे पतित को !" मतई पूर्ण आवेश में बोल रहा था। अपने छोटे भाई पर उसे अब फिर पूरा विश्वास हो गया था। क्षणिक मानसिक अस्थिरता दूर हो चुकी थी। मन का क्रोध जिसकी नींव पहले पड़ चुकी थी अब उबाल खा उठा। जमुनाप्रसाद के प्रति उसके दिल में वितृष्णा, घृणा और विद्वेष की हिलोरें उठने लगीं। उसने कहा—

"शाम को मैं पंडित जी के पास जाऊँगा। परबन्ध तो कुछ न कुछ करना ही होगा।"

"पंडित जी बेचारे कहाँ से देंगे ? उनके पास धरा ही क्या है ?"

"नहीं, पंडित जी से माँगना थोड़े ही है। जरा जमुना प्रसाद की हरकतों का पता उन्हें लग जायगा। रुपये के लिये भी राय लूँगा। देखें क्या कहते हैं।"

"अच्छा है, पण्डित जी से मिल लो। भैया एक बात और सोच लेना चाहिये। यह नत्थू साला कुछ न कुछ कर के ही मानेगा। मैंने अपने को रोका बहुत, लेकिन गुस्सा न रुका तो जमुना प्रसाद को बहुत सी गालियाँ सुना दीं। वह बदला जरूर लेगा।"

"क्या बदला लेगा ? वह कर ही क्या सकता है ?" मतई ने आवेश में फिर पूछा।

"भैया क्या बतावें, लड़की का मामला है……"

"कुछ नहीं, बको मत कन्हई। हमारी छबी को कौन नहीं जानता ? उसके जैसी सती साधवी लड़की इस गाँव में और कौन है ? उसके ऊपर उँगली उठाने वाले की उँगली टूट जायेगी, आँखें फुट जायेंगी, सरीर सड़ जायेगा। सन्तान नहीं बचेगी। भगवान सब देखता है।

उसके ऊपर भरोसा रखो। उसने हमें हाँथ पैर दिया है। किस दिन काम आयेंगे हमारे हाँथ पैर ? किस दिन काम आयेंगे पंच ? किस दिन काम आयेगा खुद वह जवान मदन ? क्या रामदीन चौधरी सब बातें नहीं समझते ? तुम घबराते क्यों हो ?" मतई क्रोध के आवेश में उठ बैठा था। उसकी आवाज़ तेज़ हो गई थी। स्वर में कम्पन था। "जाओ, हाँथ पैर धोओ, भोजन करो, भगवान सब की रक्षा करते हैं। मेरे इन सुफ़ेद बालों पर दाग नहीं लगेगा। मेरी लाज, मेरी छबिया की लाज गोवरधन गिरधारी के हाथों में है" कहते कहते मतई रो पड़ा।

कन्हई उठा और चुपके से सिर नीचा किये घर के भीतर चला गया। मतई थोड़ी देर चारपाई पर पड़ा रहा। सोचता था, 'क्या छबिया का विवाह निर्विघ्न हो जायेगा ? बर-बरीक्षा भी न हो पाया और आफ़तें आने लगीं। भगवान ही मालिक हैं, वही पार लगावेंगे।' वह ध्यान मग्न हो इसी उधेड़ बुन में पड़ा हुआ था कि संतोष ने पुकारा, "कहो भाई मतई, क्या हाल है ?"

"आओ भैया आओ, इतनी धूप में कैसे तकलीफ़ की ?"

"इधर कई दिनों से आने की सोच रहा था, मगर मौका नहीं मिल पा रहा था। सोचा आज चला ही चलूँ।"

"बड़ा अच्छा किया भैया। पानी बानी तो पियोगे ? अरी ओ छबिया, अरे देख संतोष भैया आये हैं। कुछ रस पानी का परबन्ध कर जल्दी। आ तो बेटी।" घर के भीतर आवाज़ देते हुये मतई बोला।

"काहे तकलीफ कर रहे हो ? बस ऐसे ही जरा सा एक गिलास पानी मँगा दो। रस वस की क्या ज़रूरत है ?"

"अरे वाह, अहो भाग जो तुम जैसे सज्जन दरवाजे पर आयें। किसकी किसमत में बदा है तुम जैसे देवता का दर्शन ? तबियत तो ठीक है न भैया ? कुछ हुकुम हमारे लिये ?" कृतज्ञता की मूर्ति मतई बोला।

"नहीं, कोई खास बात नहीं। क्या हाल है पञ्चायत का ? सब कुछ ठीक ठीक चल रहा है ? जमुनाप्रसाद का क्या रवैया है ? सुना अब

भी नहीं मानता, बहुत पाजीपन कर रहा है ?"

"भैया उसका कुछ न पूछो। जब से पञ्चायत ने तय किया कि उसके साथ कोई सम्बन्ध न रखे, वह बौखला गया है। उधर शराब, जुआ सब रुका हुआ है। उसकी आमदनी मारी जा रही है। आज ही नत्थू को भेजा था कि या तो हम दोनों भाइयों में लड़ाई हो जाय या हम दोनों रुपये की लालच में पञ्चायत को धोखा दे उसकी ओर जा मिलें। ये रईस हमारी गरीबी और बेबसी को भी अपने स्वारथ के लिये इस्तेमाल करना चाहते हैं। कितने नीच होते हैं ये अमीर लोग !"

"जमुनाप्रसाद को जब तक कुचल न दिया जायेगा वह मान नहीं सकता।" दाँत पीसते हुये संतोष बोला, "मैं क्या करूँ ? मैं तो चाहता हूँ कि उसके हाँथ पैर तोड़ कर उसे हमेशा के लिये बेकार कर दिया जाय। लेकिन विनय के मारे हमारी कुछ चलने नहीं पाती। पिछली सभा के समय ही मैं चाहता था कि कुछ जवानों को लेकर चढ़ जाऊँ ससुरे की कोठी पर, लेकिन विनय ने रोक दिया। लेकिन अब चुप बैठा नहीं जा सकता। जमुनाप्रसाद अपनी साजिशों से बाज नहीं आ रहा है। वह हमारे बीच तोड़ फोड़ कराने में लगा हुआ है। अगर पञ्चों में मतभेद हुआ तो सारा किया कराया मिट्टी में मिल जायगा।"

"भैया, ठीक कह रहे हो तुम। लेकिन हम लोगों के पास और साधन ही क्या है ? मार पीट करेंगे तो पुलिस हमीं लोगों को बाँध देगी। न्याय अन्याय वहाँ कौन देखता है ? रुपये की मार सब से ज्यादा असर करती है। हम गरीबों के पास क्या धरा है। और फिर पञ्चायत की ताकत के आगे एक जमुना प्रसाद क्या दसों को झुकना पड़ेगा। जरा कुछ दिन और चलने दो इसी तरह। हाँथ न जोड़े, माफ़ी न माँगे तो कहना।" विश्वास से मतई ने कहा।

संतोष ने देखा मतई ऐसे कुछ सुनने को तैयार नहीं है तो वह बात कह बैठा जिसे छिपाने की कोशिश वह अब तक कर रहा था, "मतई, अब कहना ही पड़ेगा। अभी मदन मिला था सड़क पर। उससे नत्थू से झगड़ा हो गया। मदन ने उसे दे मारा और खूब ठोकाई की। वह

रपट के लिये गया है। मदन बहुत गुस्सा हो रहा था और फिर उसे घेर कर पीटने को सोच रहा था। मैं उसे ठंढा कर आया हूँ।"

"क्या बात है बाबू, यह मारपीट क्यों हो गई।"

"कुछ नहीं, मदन किसी की बहू बेटी की शिकायत बर्दाश्त नहीं कर सकता। अन्ट शन्ट बोला होगा नत्थू और मदन ने धौल जमा दी होगी। लेकिन यह बात है ख़तरनाक। आज उसने यह किया, कल किसी और की बारी आयेगी। जमुना प्रसाद के रुपयों पर मौज उड़ाने वाले इन गुन्डों का कौन ठिकाना? इसका कुछ इन्तज़ाम होना चाहिये और फ़ौरन। मैं तो यही कहूँगा, एक बार जमुना प्रसाद को धुन दो अच्छी तरह फिर म्याऊँ म्याऊँ न करने लगे तो कहना। इन रईसों के पास रुपये चाहे जितने हों; हिम्मत नहीं होती। और फिर मार के आगे भूत भागता है, उस टुच्चे जमुना प्रसाद की क्या हस्ती है।"

"संतोष भैया, आप जवान आदमी हैं। इतना जोस आपको सोभा देता है। लेकिन यह काम नीति विरुद्ध है। जमुनाप्रसाद को पीट देने से हमारा नुकसान ज्यादा होगा, फायदा कम। उसको और उसके साथ उसके दोस्त पुलिस वालों को मौका मिल जायेगा कि वे हमारे पञ्चों को गिरफ्तार कर सकें, मुकदमा चला सकें। पञ्चों के गिरफ्तार हो जाने के बाद पञ्चायत टूट जायेगी। हमारी सक्ती बिखर जायेगी। किया कराया सब मिट्टी में मिल जायेगा। इसी लिये उस दिन भी मैंने आप से कहा था कि गुस्से में आ मार पीट करना बेठीक बात है और आज भी यही कहता हूँ। आप बुद्धिमान, पढ़े लिखे, नौ जवान हैं। आप ही सोचिये, अपनी बेटी के ब्याह में विघ्न पैदा करने वाले को मैं यों ही छोड़ देता। मदन ने नत्थू को मार दिया यह बहुत बुरा हुआ। नत्थू एक हराम-जादा आदमी है। अब उसे बहाना मिल गया है। गाँव भर में गाता फिरेगा। जिस चीज का चर्चा भी न होना चाहिये उसे वह घर घर सुनायेगा और हम लोगों को बदनाम करेगा। पुलिस में रपट होगी और दुनियाँ भर की परेसानी उठानी पड़ेगी। जरा सा गुस्सा रोक लेते तो ये सब बातें थोड़े ही होने पातीं। इसी लिये मैं कहता हूँ,

अपने ऊपर रोक लगाकर ही हमें सब काम करना चाहिए। किसी की दो बात सुन लेना उतनी बड़ी बेइज्जती नहीं है जितनी बड़ी बेइज्जती अपनी बात को पूरा न कर सकने में। हमने पंचायत खोली है और गाँव को सक्तीवान और एक बनाने का एलान किया है। अगर हम यह न कर सके तो सचमुच हमारी बेइज्जती होगी। अगर हमारा एका टूट गया और गाँव वाले बिखर गये तो जमुना प्रसाद, नत्थू वगैरह की बन आयेगी। उस समय हम लोगों की क्या हालत होगी, जरा सोचिये तो। मेरी प्रार्थना है कि आप सोच विचार कर राय दें। जवानों में जोस ज्यादा होता है होस कम। बूढ़ों में होस ज्यादा होता है जोस कम। होस और जोस दोनों की बराबर जरूरत होती है, तभी काम पूरा होता है। क्यों भैया, मैं गलत कह रहा हूँ तो बताना।" मतई ने फिर संतोष की ओर देखा, उसकी आँखों से अनुभव और वात्सल्य की किरणें फूट रही थीं।

संतोष को कहना पड़ा, "मतई, तुम ठीक कहते हो। मैं फिर गौर करूँगा।"

इतने में छबिया ठंढा शर्बत ले आई। शर्बत का गिलास हाथ में ले, आगे बढ़ाता हुआ मतई फिर बोला, "यह लो भैया, गरीब आदमी हूँ। आप की क्या और सेवा कर सकता हूँ? हम गरीबों के पास दिल है, सौक है, लेकिन समरथ नहीं है। आप ऐसे देवता हमारे घर पर आते हैं तो किरतरथ हो जाता हूँ।"

शर्बत का गिलास अपने हाथों में लेते हुये संतोष ने कहा, "कितने महान हो तुम मतई, गाँव वालों की भलाई और संगठन के लिये तुम अपना सर्वस्व छोड़ने के लिए तैयार हो गये। सब कुछ बर्दाश्त करने के लिये तैयार हो गये। कितनी बड़ी बात है यह? कितने बड़े हो तुम, इसका तुम्हें पता भी तो नहीं है।"

"अरे, ना भैया, ऐसी बात न कहो, हम गवाँर, मुरख किस जोग हैं।" मतई ने कृतज्ञता प्रकाशन किया।

कन्हई खाना खा बाहर आया। संतोष को देख उसने पूछा,

"तमाखू पियोगे भैया, ले आऊँ ?"

"हाँ, हाँ, ज़रूर !" संतोष ने मुस्कराते हुये कहा ।

चिलम ज़ोर से खींची तो एक दो ठुसकीं आईं । आँखों में ज़रा-सा पानी आगया । पानी पोछते पोछते संतोष ने कन्हई से पूछा; "कहो भाई, छबिया के ब्याह में बाधा तो पड़ने लगी, अब क्या होगा ?"

"होगा क्या भैया ? आप लोग तो हैं ही । पंच परमेस्वर होता है । पंच हमारे साथ हैं, तो हमें किस साले का डर ?"

"प्रबन्ध हो गया बाकी सब चीज़ों का ?"

"अभी क्या हुआ ? रुपये ही नहीं हैं । कोसिस कर रहा हूँ । अब आप लोगों की मदद चाहिये । चार भाई हाँथ लगा देंगे तो बेड़ा पार हो जायगा ।"

"ज़रूर ज़रूर ! हमारे लायक़ जो सेवा हो बताना । सब तरह तैयार हैं । संकोच मत करना ।"

"संकोच काहे का भैया ! आप कोई ग़ैर थोड़े ही हैं । जो कुछ अरजी-बिनती करनी होगी आप ही से तो करूँगा । दूसरा कौन है अपना ?" कन्हई ने बिनीत हो संतोष की ओर देखा ।

"रामदीन चौधरी से क्यों न बातें की जाँय ? उनसे कहा जाय कि कम खर्च में सारा काम हो जाय तो क्या हर्ज है ?" संतोष ने मतई की ओर देखा ।

"नहीं भैया, उसने न कहो । पहिला ब्याह पड़ा है । जनम-जिन्दगी में पहिला अवसर आया है । एक बार तो अरमान निकल जाय जी का । जैसे भी हो छबिया का ब्याह तो धूम धाम से ही होगा । मैं पंडित जी के पास जाऊँगा । कहूँगा जैसे भी हो इन्तजाम करें । हमारी लाज रखें ।"

"मगर पंडित जी के पास क्या धरा है ? वे बेचारे तो खुद ही मोहताज रहते हैं हमेशा । उनके पास जाने से क्या होगा ? और कहीं नहीं सोचा ?"

"गाँव में तो कोई मदद करने वाला दिखाई नहीं देता । ऐसी तबाही!

आगई है कि अच्छे भले कंगाल हो गये हैं। पंडित जी खुद नहीं तो और किसी से कह कर मदद करा देंगे।"

"अच्छी बात है, कोशिश करके देख लो। जो कुछ हो बताना।" कहकर संतोष चलने को हुआ कि उसी समय चौधरी रामदीन छाता लगाये आते दिखाई पड़े। चेहरे पर घबराहट थी। पसीना आ रहा था। मुँह पोंछते हुये उसी ओर बढ़े चले आ रहे थे।

उठकर आगे बढ़ मतई ने चौधरी का स्वागत किया। कन्हई ने हाँथ से छाता ले एक कोने में धर दिया। सब लोग बैठे और कुशल मंगल के बाद ही नत्थू और मदन के झगड़े का चर्चा चल गया।

चौधरी ने कहा, "नत्थू सिकायत करने मेरे पास आया था। बड़ी मुस्किल से रपट न लिखवाने पर राजी हुआ। कह रहा था उसे जमुना प्रसाद की मदद है। अब की बार जो हुआ सो हुआ। अब मदन बोलेगा तो अच्छा न होगा। मैंने उसे इधर उधर की बात समझा कर मना लिया, लेकिन अब सोचना पड़ेगा कि किया क्या जाय! जमुना प्रसाद ने चालें चलना सुरू कर दिया है। गाँव में फुटमत होने में देर न होगी। एक बार फुटमत हो जाने पर फिर सँभलना कठिन काम है।"

मतई ने चिन्तित होकर कहा, "चौधरी की बात सुन लिया संतोष भैया! हम लोगों को फौरन ही कोई न कोई इन्तजाम करना चाहिये। आज शाम को बैठक बुलाकर सारे मामले पर गौर करना चाहिये।"

"अच्छी बात है। मैं तो अब जा रहा हूँ। ज़रा ज़रूरी काम है। मदन से नसीम, विनय, पंडित जी सबको ख़बर करा देना। हम लोगों को पता ही है। शाम को ७ बजे। क्यों?"

"अच्छी बात है।" चौधरी ने कहा और संतोष चल दिया।

मतई ने चौधरी की ओर मुँह कर कहा, "चौधरी, आप तो देख ही रहे हैं यह सब रंग ढंग। दिन अच्छे नहीं नजर आते। छुनिया का भाग्य देखें कैसा है! अब तो आपके आसीस का सहारा है।"

"भगत जी, आप का हाथ जिस काम में पड़े उसमें सब अच्छा ही अच्छा होगा। हमारी ओर से आप निश्चिन्त रहें। मदन आपका

लड़का है। जैसा हुकुम होगा आपका, वैसा ही वह करेगा। मैं जबान हार चुका हूँ। दुनिया इधर की उधर हो जाय, रामदीन की बात अटल है। आप न किसी बात की परवाह करें, न चिन्ता। भगवान का नाम लेकर तैयारी करें। ज्यादा खरच-बरच का हिसाब न बाँधें। गौं से जो कुछ हो जाय वह बहुत है। छबिया हमारी हो चुकी और मदन आपका। बाकी बातें तो दिखावे की हैं। लोक लाज रखना है, जिसमें चार जने कुछ कह न सकें।"

"आपसे यही आसा थी चौधरी! भगवान् के सहारे, आपकी किरपा से, सब कुछ हो जायेगा। यही मैं सोचता कि हमारा क्या? हम गरीब गुरबा आदमी हैं। आपकी सेवा क्या कर पावेंगे? हाँ, अपने भरसक सत्कार की पूरी कोसिस करेंगे। आपने हमारा हाथ पकड़ा है तो आप निभायेंगे भी। मुझे अब कुछ नहीं कहना है। मेरे ऐसे पापी, अधम की बिटिया आपके घर जा स्वर्ग का राज रजेगी। सब आपके दया-धरम का परताप है। और मैं क्या कहूँ।" मतई फिर अपने को रोक न सका। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। कन्हई की ओर देख कर कहा, "चौधरी को जलपान कराओ।"

कन्हई भीतर गया और छबिया के साथ एक लोटा पानी, दही का शर्बत ले फिर बाहर आया। छबिया सिर नीचे किये आई, पानी और शर्बत चौधरी के पैरों के पास रख जाने लगी तो चौधरी ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुये कहा, "अच्छी हो बेटी।" छबिया बिना कुछ कहे, जल्दी से वापस भीतर चली गई।

चौधरी ने मुस्कराते हुये कहा, "कितनी सीलवती बिटिया है! क्यों न हो, आपकी सन्तान जो है!"

मतई ने संकोच से सिर नीचा कर लिया।

५

बिजली के प्रकाश में सफ़ेद बिस्तर पर सोता हुआ विनय कितना सुन्दर लग रहा था। उसकी बड़ी बड़ी बन्द आँखें, चौड़ा माथा, सटे हुये पतले ओठ और चेहरे पर हल्की सी मुस्कान! नसीम को नींद नहीं आई। पलकें बन्द कीं कई बार लेकिन असफल ही रही। वह उठकर कमरे में टहलने लगी। बार बार उसके मन में आता, क्या विनय उसका हो सकेगा, केवल उसका। बुढ़िया की बातें, उसकी मृत्यु और अँगूठी। विनय के प्रति उसका कर्तव्य। राजनीति और उसका अपना भविष्य का जीवन! सबमें सामञ्जस्य लाना था। सबको मिला कर अपना प्रोग्राम बनाना था। निश्चय किया, वह विनय को कभी भी बुढ़िया की बात नहीं बतायेगी। विनय को कितना दुख होगा! नः, वह कभी न बतायेगी कि वह सब कुछ जानती है। अनजान बनी रहना ही ठीक होगा। लेकिन अब वह विनय को न जाने देगी अपने पास से। उस गन्दी गली, गन्दे मकान में उसकी तबीयत ख़राब हो जायेगी, तन्दुरुस्ती पर बुरा असर होगा। काम में भी हर्ज होगा।

नसीम बारबार विनय के सौम्य, शान्त मुख की ओर देखती। कितना आकर्षण था उसमें, कितना स्नेह, कितना प्यार! बेखटके सो रहा है जैसे उसे किसी भी बात की पर्वाह नहीं है, जैसे अपने ही घर में, अपने ही बिस्तर पर सो रहा है। है भी तो उसी का यह सब कुछ, यह घर, यह बिस्तर और मैं! मेरा सब कुछ उसी का है, उसका ही है! वह मेरा है और मैं उसकी! विनय, सच मैं तुम्हारी हूँ और तुम मेरे! लेकिन तुम्हें पता नहीं है। कितने भोले हो, कितने अजान! तो मैं तुम्हें बता दूँ तुम मेरे, बिल्कुल मेरे अपने हो और उसका यह लो सबूत? कहती हुई नसीम ने विनय का माथा चूम लिया। ऊँ, ऊँ, कर विनय ने करवट ले ली! नसीम मूक उसकी ओर देखती रही!

सबेरे उठ कर विनय चलने लगा तो नसीम ने उसे रोका। "अब तुम न जाओ कहीं, मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हें छोड़ कर अब मैं नहीं

रह सकती। मुझे अकेले डर लगता है।"

"तुम ऐसी बातें न करो नसीम! तुम्हारी ज़बान से इस तरह की कमज़ोरी की बातें अच्छी नहीं लगतीं। तुम समझदार पढ़ी लिखी लड़की हो। अपने ऊपर कुछ रोक रखना चाहिये। सोचो, रात तुम्हारी कैसी दशा थी। ऐसी वहशत भी क्या?"

"वहशत या जुनून चाहे जो कहो, अगर तुम कल न आ जाते और मेरे पास न रहते तो जानते हो क्या होता?"

"क्या होता?"

"हार्टफ़ेल हो जाता।"

"हार्टफ़ेल हो जाना, इतना आसान नहीं है।"

"तुम समझते हो मैं यों ही घबरा रही थी? ऐसा नहीं है विनय! लड़कियाँ जितनी मज़बूत होती हैं, लड़के उतना मजबूत नहीं हो सकते। अपने दिल पर क़ाबू रखना हम जानती हैं। लेकिन जब बस नहीं चलता और दिल की कैफियत ऐसी हो जाती है कि उस पर क़ाबू रखना नामुमकिन हो जाता है तब क्या किया जाय? मैं सच कहती हूँ, मेरा हाल बुरा है। चाहो तो तुम मुझे ग़लत समझ सकते हो। लेकिन मैं फिर यही कहती हूँ कि तुम्हारा मेरे पास ही रहना अब ठीक है। बहुत दिनों तक तो रह लिये अकेले। मुझे इस समय तुम्हारी ज़रूरत है। एक दो घंटे के लिये नहीं, चौबीस घंटे के लिये, रात दिन के लिये।"

"तो मैं सारा काम-काज छोड़ कर यहीं तुम्हारे पास बैठा रहा करूँ? क्यों, यही चाहती हो? इसका नतीजा क्या होगा समझती हो? इस समय जब सब तरफ आफ़त है, सभी तरफ़ मुसीबतों के पहाड़ टूट रहे हैं, सारा काम छोड़ कर तुम्हारे पास बैठे रहने का मतलब क्या होगा? इतने दिनों तक जान देकर हमने कितनी यूनियनें बनाईं और उन्हें अपने खून से सींच कर पाला पोसा। उन सब का क्या होगा? शहर में हम लोगों ने अपने लिये जो प्रेस्टिज क़ायम की है उसका क्या होगा? शहर की सियासी ज़िन्दगी में हमारी जो जगह बन गई है

उसका क्या होगा ? आज जनता हमारे ऊपर विश्वास करती है, रहनुमाई की हमसे उम्मीद रखती है, परेशानी और मुसीबतों में हम उसका साथ देंगे, इसका उसे पूरा भरोसा है। महँगी बढ़ती जाती है। तनख़ाह और महँगाई भत्ते की लड़ाइयाँ चल रही हैं। मालिक मुनाफ़ा करने और अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे हुये हैं। मज़दूर पहिले से ही फ़ाक़ा मस्त थे। अब तो उनकी हालत और भी ज़्यादा ख़राब हो गई है। उनके घरों में दो वक़्त चूल्हा जलना मुश्किल हो गया है। ऐसे वक़्त क्या उन्हें छोड़ कर चुप चाप बैठ रहना, अपने व्यक्तिगत सवालों को जनता के सवालों से अधिक महत्व देना ठीक होगा ? नसीम, बचपने की बातें मत करो। सियासत में क़दम रखने के पहिले हमें सोच लेना चाहिये कि हमें फूल के सेज नहीं, काँटों के बिस्तर मिलेंगे। अब हमारा क़दम आगे बढ़ चुका है। बदन पर घाव भी काफ़ी हो चुके हैं। ये घाव बार बार हमें याद दिलाते हैं कि मंज़िल अभी दूर है। थकने, रुकने, झुकने का वक़्त नहीं है। तुम्हें चाहिये कि अपने ऊपर क़ाबू रखो और इस मुसीबत और इम्तहान के वक़्त तुम मेरा साथ दो, मैं तुम्हारा साथ दूँ और इसी तरह सभी साथी एक दूसरे का साथ देते हुये, कंधे से कन्धा लगाये, आगे बढ़ते जायँ। तुम्हारे दिल में क्या है मैं नहीं जानता। लेकिन जवानी की उमंग में इस तरह बह जाती हुई तुम्हें देख कर मुझे अफ़सोस हो रहा है। औरतें कमज़ोर होती हैं, क्योंकि उनके जीवन का आधार कोरी भावुकता होती है। लेकिन तुम्हें मैं इसका प्रतिवाद समझता था। अब तक तुम्हारे किसी काम या व्यवहार से यह पता नहीं चलता था कि तुम भी दूसरी कमज़ोर औरतों जैसी ही हो। अब मुझे पता चला कि शादी के लिये इतनी बुरी तरह तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हुई थी। क्या मैं यह समझूं कि तुमने आज तक हमारे काम में जो कुछ भी हिस्सा लिया है, वह मेरा ध्यान अपने ओर खींचने के लिये, अपनी मनोकामना पूरी करने के लिये ही किया है ? मैं अब भी इन बातों पर यक़ीन नहीं करना चाहता। नसीम, अगर बात ऐसी है तो मुझे बहुत दुख है।"

नसीम चुप थी, विनय की ये अनर्गल बातें उसे खल रही थीं। अपने दिल की बातें वह बताना नहीं चाहती थी, बता नहीं सकती थी। लेकिन बिना बताये भी विनय सब कुछ समझ जायेगा, इसकी उसे उम्मेद थी। विनय की बातों से उसे उलझन हुई और ग़ुस्सा भी आया। फिर भी वह चुप ही रही।

"बोलती क्यों नहीं, कुछ बोलो? यों चुप रहने से क्या होगा? अपने दिल की बातें तो कह डालो।" विनय ने परेशानी से कहा।

"कितने भोले हो तुम विनय! औरतें भी कहीं अपने दिल की बातें कह सकती हैं? इतनी ही ख़ूबी होती उनमें तो क्या बात थी। मैं भी तुम्हारी तरह एक लेक्चर न झाड़ देती। दिल की बात कहना आसान है, उन्हें दिल ही में रख कर घुल घुल कर मरना मुश्किल! हम औरतें इसी की आदी हैं। मर्दों की तरह डङ्का पीटने की आदत हमारी नहीं है। बहरहाल, तुमने अभी जो कुछ कहा, वह फ़िज़ूल है इसमें कोई शक नहीं। मैं क्या चाहती हूँ इसे तुम समझ नहीं सके, शायद जान बूझ कर समझना भी नहीं चाहते थे। समझ कर करते भी क्या? किसी पर कुछ बीते; किसी पर कुछ गुज़रे, तुम्हारा क्या जाता है? घर हो या बाहर, अपने हों या पराये लेक्चर देना चाहिये तुम्हें। देते चलो लेक्चर बड़ी बड़ी आँखें निकाल निकाल कर। लेकिन बताये देती हूँ कि इससे मसले हल नहीं होंगे, ज़्यादा उलझेंगे। अगर चाहते हो कि हमारी दुश्वारियाँ कम हों और हमारा रास्ता साफ़ हो तो सवालों को ग़ौर से सोचो, समझो। उनसे भागो नहीं।"

"क्या मतलब है तुम्हारा, मैं सवालों से भागता हूँ" विनय चिढ़ गया।

"और नहीं क्या? भागना और किसे कहते हैं? मैं पागल नहीं हूँ। दिमाग मेरा ख़राब नहीं हो गया है। मैंने जो कुछ भी तुमसे कहा है सोच समझ कर कहा है। मैं कब कहती हूँ कि तुम मुझसे अभी शादी कर लो, या अपना सारा रियासी काम छोड़ घर में घुस कर बैठ रहो। मैं कहती हूँ कि तुम अलग रहना छोड़ मेरे साथ आ जाओ। यहाँ,

पड़े पड़े तुम्हारी तन्दुरुस्ती ख़राब हो रही है। यहाँ रहोगे तो ठीक से खाना खाओगे, सोओगे। तनदुरुस्ती ख़राब कर के तुम किसी लायक़ भी न रहोगे। मेरा भी इसमें स्वार्थ है। तुम पास रहते हो तो मुझे राहत मिलती है। अकेले मेरा जी घबराता है। यहाँ रहने पर मैं तुम्हारी मदद ही करूँगी। मैं तुम्हारे रास्ते में रोड़ा बनकर आना नहीं चाहती—लेकिन तुम्हारा दिमाग़ तो आसमान में फिरता रहता है। शेव किये कितने दिन हुये? ये गन्दे कपड़े तुम्हारे बदन पर कब से लदे हुए हैं? सिर में तेल कब से नहीं पड़ा? तुम्हारा ख़्याल है कि इस तरह गन्दे और बदहाल रह कर तुम मज़दूरों की बड़ी ख़िदमत कर रहे हो, देश सेवा हो रही है। यह बेवक़ूफ़ी है। आज ही तुम्हें अपना सारा सामान लेकर यहाँ आना होगा। तुम यहीं रहोगे और यहीं रहकर अपना सारा काम, सारी दौड़ धूप करोगे, समझे!" नसीम ने अपने अधिकार का प्रयोग किया।

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।" विनय ने कहा।

"क्यों नहीं हो सकता? ऐसा करने से तुम्हें कौन सी चीज़ रोकती है? खुलकर कहो न अपने दिल की बात!"

"मैं यहाँ रहकर हमेशा, चौबीस घंटा, परेशान होना नहीं चाहता। यह खाओ, वह खाओ, यह पहिनो, वह पहिनो, यह रोग मेरे बस का नहीं है। वहाँ पड़ा रहता हूँ मौज से, जो मिलता है खाता हूँ, थक कर पड़ जाता हूँ। सबेरे चक्की फिर चलने लगती है। यहाँ रहकर जी का जञ्जाल नहीं मोल लेना चाहता।"

"सीधे न मानोगे तो अकबर सामान ले आयेगा। तुम्हें यहीं आकर रहना होगा यह तो तय है, यों भागने से काम नहीं चलेगा। मैंने काफ़ी दिन तक गवारा किया। मैंने कलेजे पर पत्थर रखकर तुम्हें दिनों दिन मुरझाते हुए देखा। मैं अब तक यह सब बर्दाश्त करती रही इसका मुझे दुख है। अब आगे बर्दाश्त करने की ताक़त मुझमें नहीं है। तुम मानो या न मानो, मैं यह ख़ूब समझती हूँ कि तुम्हारे रहन सहन का ढङ्ग बिलकुल ग़लत है। तुमने अपनी बहुत सी बातें मुझसे छिपाई हैं। तुम

मुझे अपना नहीं समझते। जब भी मैंने तुम्हारे पास आने की कोशिश की तुमने मुझे दूर हटाया। मैं अपने भोलेपन में सब कुछ टालती रही। लेकिन अब हद हो चुकी है। अगर मैं अपनी सारी ताक़त लगाकर भी तुम्हें अपने पास न बुला सकी तो मैं समझूँगी कि मैंने अपना फ़र्ज़ पूरा नहीं किया, अपने हकों को इस्तेमाल नहीं किया। तुम हाथ मुंह धो डालो और चाय पियो। तुम्हें अब उस गन्दे घर में जाने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं। चाय पीने के बाद अकबर के साथ जाकर अपना सामान उठवा लाओ। यहाँ रहोगे तो वक़्त पर अच्छा खाना मिलेगा, सोने को मिलेगा आराम से और पढ़ने लिखने में भी सहूलियत रहेगी। मेरी बात मानो विनय, ज़िद न करो।" आजिज़ी से विनय की ओर आँखें उठा नसीम ने कहा।

विनय के लिए कठिन समस्या थी। अब तक वह स्वच्छन्द रहने का आदी था! संयत और परिश्रमी होते हुये भी उसके व्यक्तिगत जीवन में जो अराजकता और अस्तव्यस्तता थी वह उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रही थी। विनय जानता था कि उसका इस तरह रहना सहना ठीक नहीं। लेकिन वह करे भी क्या? आमदनी कुछ थी ही नहीं। ट्यूशनों पर कुछ दिन चलाया, लेकिन काम में हर्ज होने लगा तो ट्यूशन भी छोड़ दिया। अब इधर उधर से काम चलाता था। खाने को दो बार मिल जाय तो बड़ी बात हुई। इसलिये नसीम का प्रस्ताव उसे अनुचित नहीं जान पड़ा। लेकिन उसे एक बात का डर था। नसीम अपनी भावुकता और प्यार में उसे हमेशा आराम करने, खाने पीने के लिए तङ्ग करती रहेगी। उसका जीवन कुछ ऐसा हो गया था कि किसी समय वह निश्चित रूप से कोई काम न कर पाता। आये दिन झगड़े और हड़तालें उसके प्रोग्राम में व्याघात पहुँचाती रहती। शहर के इस कोने से उस कोने तक, कहीं प्रेस, कहीं कारख़ाने वह दिन भर दौड़ता ही रहता। काँग्रेस के नये प्रोग्राम की वजह से उसका काम और भी बढ़ गया था। वार्ड काँग्रेस कमेटियाँ और मोहल्ला कमेटियाँ भी उसका काफ़ी वक़्त ले लेतीं। उधर माधोपूर का मामला

संगीन होता जा रहा था। विनय झगड़ा बढ़ाने के पक्ष में नहीं था। वह संगठन और शक्ति बढ़ाना चाहता था जिससे जनता की माँगें पूरी होती जायँ। संतोष पर उसे भरोसा न था। उसकी उच्छृंखलता काम को बिगाड़ सकती थी, बना नहीं सकती थी। ऐसी अवस्था में नसीम के प्रतिबन्धपूर्ण साये में रहने से उसे घबराहट हो रही थी। इसलिए फिर टालने की नीयत से उसने कहा।

"अच्छी बात है, अगर तुम्हारी यही ज़िद है तो मैं यहाँ आ जाऊँगा। लेकिन अभी जल्दी क्या है? होटल वाले का बिल अदा कर दूँ, चाय वाले के भी रुपये चढ़ गये हैं, मकान का किराया तीन महीने से नहीं दिया। कोई सौ रुपये का इन्तज़ाम करना है। यह सब कर लूँ तो फिर इत्मीनान से तुम्हारे पास चला आऊँगा। हाँ, एक बात से मैं डरता हूँ। वह यह कि तुम मेरे ऊपर ज़रूरत से ज़्यादा हुकूमत न करने लगो। बात यह है कि काम की धुन में शरीर और कपड़ों का ध्यान नहीं रहता। तुम मेरे पीछे पड़ोगी और वक़्त पर खाना खाने और साफ़ सुथरे कपड़ों के लिये हमेशा मुझे टोकोगी। मुझे इन चीज़ों के लिये फ़ुर्सत नहीं। अगर तुम यह समझौता कर लो कि मैं अपना इन्तज़ाम करके महीने पन्द्रह दिन बाद आ जाऊँ और तुम मुझे स्वच्छन्द रहने दोगी, खाने पीने, पहनने, ओढ़ने की झंझट नहीं करोगी तो मुझे यहाँ आकर रहने में कोई एतराज़ नहीं है। बोलो, वायदा करती हो?" विनय ने नसीम की ओर देखा। उसकी आँखों में हल्की सी मुस्कान थी। पराजय और समझौते की सूचक।

"मुझे तुम्हारी एक भी शर्त मंज़ूर नहीं है। मैं इस समय कुछ भी सुनना नहीं चाहती। मेरे पास बुक में रुपये हैं। तुम ले जाकर सब का क़र्ज़ अदा करो, अपना सारा सामान ले कर यहाँ आ जाओ आज ही शाम तक। इससे ज़्यादा वक़्त तुम्हें नहीं मिलेगा। अभी चाय पीओ और अकबर को साथ लेकर सामान लदवा लाओ।" नसीम बोली।

"यह तुम्हारी ज़्यादती है। इतनी जल्दी क्या है?"

"ज़्यादती ही सही। मैं जान बूझ कर ज़्यादती करना चाहती हूँ।

और यह ज़्यादती को तुम्हें बर्दाश्त करनी पड़ेगी। उठो, हाथ मुँह धोओ" कहती हुई नसीम उठ खड़ी हुई। उसने विनय को भी उठाया।

चाय पीते समय नसीम बहुत ख़ुश थी। उसका बोझ हल्का हो चला था। विनय अब उसके सामने था। वह रोज़ उसके साथ ही चाय पियेगी, खाना खायेगी, रहेगी। कितना अच्छा लगेगा। विनय चाय की चुस्कियाँ लेता हुआ सोच रहा था। यह लड़की भी कितनी कमाल की है। जो चाहती है करा लेती है। जैसे जादू का असर हो। कितनी भोली, लेकिन कितनी समझदार है!

विनय ध्यानमग्न चाय की चुस्कियाँ लेता जा रहा था। नसीम सिर उठा कभी उसकी ओर देखती, कभी सासर और प्याले पर बने हुये सुन्दर चित्रों की ओर! सेट बहुत सुन्दर था। रंग पीला, चित्र बैंगनी रंग में बने हुये थे। चित्र सुन्दर ही नहीं अर्थपूर्ण भी थे। उमंग भरी उभरती हुई लहरों के बीच एक नाव जिसमें घबराई सी एक तरुणी बैठी थी, उसके बाल बिखर रहे थे, आँखों और चेहरे से घबराहट झलक रही थी। लेकिन नाविक सधे हाथों से डाँड़े मारता आ रहा था। बिना पाल की यह नाव पार भी लग जायेगी, तरुणी को यही घबराहट थी। घबराहट होना स्वाभाविक था, नाव छोटी, हल्की, हवा बहुत तेज़ और उद्दण्ड लहरें! नाविक परेशान तो था लेकिन हाँथ सधे हुये थे; इसलिये उसके चेहरे से दृढ़ता और संयम भासित हो रहा था।

मौन तोड़ने की नीयत से विनय ने छेड़ा, "कहिये सरकार, चित्रों का अध्ययन हो रहा है?"

"चित्रों का नहीं, चित्रों को मात करने वाले उस आदमी का जो मेरे सामने बैठा ज़बरदस्ती मेरी ओर घूर रहा है।" नसीम ने जवाब दिया।

झेंप से विनय का मुँह लाल हो गया। "क्या समझीं आप?" विनय ने पूछा।

"यही कि तसवीर ज़्यादा जानदार और पुर उम्मीद है।" नसीम ने चोट की।

"सच ?"

"नहीं तो क्या ? देखते नहीं यह घबराई लड़की कितनी परेशान है, और यह मर्द कितनी चुस्ती से डाँड़े मारता जा रहा है ? मर्द हो तो ऐसे ! यह क्या कि लहरों की ओर देखें ही नहीं और देखें भी तो हाँथ पाँव फूलने लगें। मर्द वह है जो लहरों को चुनौती दे, लहरों की चुनौती स्वीकार करे, उनसे जूझ जाय और उनकी छाती चीरता हुआ अपनी नाव उस पार पहुँचा सके।" नसीम ने जमाया।

"क्या यह इशारा मेरी ओर है ?" विनय ने मुस्कराने की कोशिश की।

"जी नहीं, आपकी ओर नहीं। आप इस लायक़ हैं भी ! दुनिया को मार्क्सवाद सिखाइये, मज़दूरों की हड़तालें कराइये, इन्क़लाब की तैयारी कीजिये, स्वराज्य के लिये जान-क़ुर्बान कीजिये, लेकिन अपने उन ज़ाती मसलों की ओर आँख उठा कर भी मत देखिये जिनको नज़रअन्दाज़ कर के आप दुनिया में क़ायम नहीं रह सकते और अगर रेंघते रेंघते क़ायम भी रह गये तो मशीन की तरह सड़कों पर भागते नज़र आइये या चारपाई पर चारो ख़ाना चित्त ! ज़ाती ज़िन्दगी में आप इतने निखट्टू हैं तो समाजी ज़िन्दगी में आप से क्या उम्मेद की जाय ? मैं तो नहीं समझती कि मज़दूरों का हमदर्द और साथी बनने के लिये बैल या मशीन हो जाना ज़रूरी है। जब दिल ही नहीं है तो ग़ैरों के दुखों, परेशानियों का एहसास ही कहाँ हो सकता है ? फिर आप मशीन की तरह नारों को लागू ही कर सकते हैं, लेकिन सच्चे एहसास और हमदर्दी के साथ आप ग़रीबों, मज़लूमों की रहनुमाई नहीं कर सकते !" नसीम इस समय विनय के ऊपर हावी हो जाना चाहती थी।

"तो क्या तुम मुझे मशीन समझती हो ?" विनय ने अर्ध गंभीरता से पूछा।

"मशीन ही नहीं, मशीन से बदतर। मशीन में तो जान नहीं होती; तेल दिये जाओ काम लिये जाओ। लेकिन तुम्हें तो दिल और दिमाग़ दोनों मिले हैं। एहसास करने और सोचने के ज़रिये तुम्हारे पास हैं,

फिर भी अगर तुम इन दोनों को ठीक ठीक इस्तेमाल नहीं कर सकते तो तुम्हें क्या समझा जाय ? काश कि तुम दिल दिमाग़ दोनों से काम लेकर ज़ाती और समाजी ज़िन्दगी में तार जोड़ सकते !" नसीम ने उदास हो कर कहा ।

"चाय ख़त्म हो चुकी है जनाब" अपना प्याला फिर से भरने के लिये आगे बढ़ाते हुये विनय ने कहा, "आप टी टेबुल पर हैं, स्कूल के दर्जे में नहीं—क्या इसकी याद दिला सकता हूँ निहायत अदब से ।" सिगरेट जला, ज़ोर का एक कश खींच, विनय ने नसीम के मुँह पर उड़ा दिया । नसीम की आँखों और मुँह में धुँआ भर गया । खाँसी की एक ठुसकी भी उसे आ गई और विनय कश पर कश खींच, ऊपर की ओर धुँये को फेंक, उसकी लच्छेदार लहरों को देखने लगा ।

"बड़े वैसे हैं, आप । जानते हैं मैं सिगरेट नहीं पीती, फिर यह शरारत क्यों किया ?" आनन्द लेते हुये भी शिकायत के टोन में नसीम बोली ।

"तंग करने में मज़ा आता है ज़रा, और कोई बात नहीं है । ज़रा खाँसो तो," कहते हुये विनय ने नसीम के मुँह पर ज़ोर का दूसरा कश छोड़ा । वह ज़ोर से खाँसने लगी, आँखों में पानी आ गया । चिढ़ कर उसने चायदानी ज़ोर से ट्रे में धर दिया "जाओ मैं नहीं बनाती चाय ।" बिगड़ पड़ी नसीम ।

"इतनी जल्दी नाराज़ हो गई ! रोने लगीं । भई, आँखों के आँसू तो पोंछ लो, वरना चाय चीनी के बर्तन में डाल दोगी । कहा न, औरतों को बात बात में रोने के सिवाय और तो कुछ आता नहीं ।" विनय ने चिढ़ाया ।

"जब आप जानते हैं कि धुँये से मुझे खाँसी आने लगती है तो जान बूझ कर आप शैतानी क्यों करते हैं ? यह बड़ी बुरी बात है ।" गंभीर होने की मुद्रा बना नसीम बोली । उसने साड़ी के छोर से आँखों का पानी पोंछा और चाय बनाने लगी ।

इसी समय 'मैं अन्दर आ सकता हूँ' की आवाज़ आई और सीढ़ी

पर चढ़ने की वजह से हाँफता हुआ संतोष कमरे में दाख़िल होगया।

"जब घुस ही आना था अन्दर तो पूछने की क्या ज़रूरत थी? जानते नहीं यहाँ कुछ प्राइवेट काम हो रहा था!" मज़ाक किया विनय ने।

"जभी आप की आँखें लाल हैं।" संतोष ने नसीम की ओर ध्यान से देखकर कहा।

"देखते हो, इन लड़कियों को रोने के सिवा जैसे और कुछ आता ही नहीं। ज़रा सा चिढ़ा दिया और रोने लगी। इससे अच्छा तो यह कि इनसे कोई ताल्लुक़ ही न रखे।" समर्थन पाने की आशा से विनय ने संतोष की ओर देखा।

"आप चुप भी रहेंगे या नहीं? देखते हैं संतोष बाबू, इन्होंने मेरी आँखों में इतना सा धुआँ छोड़ दिया और फिर ऐसी बातें करते हैं।" रुआँसी हो नसीम ने संतोष से शिकायत की।

"तुम भी बड़े शैतान हो विनय, क्यों छोड़ दिया धुआँ? जाने दो भाई, इन्हें माफ़ कर दो, अभी आँखें ठीक हुई जाती हैं। संतोष ने नसीम को दिलासा दिया। और विनय को संबोधित कर बोला;

"कहो विनय, इतने सबेरे तुम यहाँ कैसे पहुँच गये? तुम तो देर से उठने के आदी हो। मैं तुम्हारे घर से होकर आ रहा हूँ।"

"मैं यहीं रह गया था, वहाँ थोड़ी देर सो के चला आया यहाँ ज़रा नसीम की तबियत ठीक नहीं थी।" विनय ने कहा।

"कल रात को मेरी तबियत ज़रा ख़राब हो गई थी। अकेले में डर लग रहा था। मैंने ही अकबर को भेज इन्हें बुलवा लिया था। मैं अकेले अब रहना नहीं चाहती, मुझे जाने कैसा लगता है। इनसे कह रही थी कि अगर ये भी यहीं रहने लगें तो अच्छा हो। मेरा मन लगेगा और इनकी तन्दुरुस्ती ठीक हो जायेगी। ज़रा ढंग से खाने पहिनने तो लगेंगे।" निहायत सादगी से नसीम सब बातें कह गई, "अरे माफ़ करना, चाय के लिए तुमसे नहीं पूछा" कहती हुई नसीम चाय का प्याला लाने चली गई।

"कहो उस्ताद, यह सब क्या है ? हवा किधर बह रही है। क़दम फूँक कर रखना दोस्त ! औरतों का मामला ज़रा मुश्किल होता है। कहीं लेने के देने न पड़ जाँय !" संतोष के ये कुरुचिपूर्ण शब्द समाप्त भी न होने पाए थे कि नसीम वापस आगई। संतोष सकपका गया। विनय ने घूर कर संतोष की ओर देखा, लेकिन सारा ग़ुस्सा जैसे पी गया। "शाम को मैं अपना सामान यहीं ला रहा हूँ, संतोष" अत्यन्त शान्त भाव से विनय ने कहा।

"जैसी मर्ज़ी तुम्हारी। मगर दुनिया टेढ़ी है ज़रा" संतोष ने फिर ज़हर उगला।

"क्या मतलब ?" नसीम को संतोष की बातों से आश्चर्य हुआ। चाय का प्याला आगे बढ़ाती हुई नसीम ने पूछा, "आपका मतलब कुछ साफ़ नहीं हुआ। आप कहना क्या चाहते हैं ?"

"भई, मतलब, मेरा कुछ नहीं, जो चाहो करो। मुझे क्या लेना देना है इन बातों से। मैं तो तुम दोनों से कुछ दूसरी बातें करने आया था। कहो तो बताऊँ ?"

"हूँ, बोलो" विनय बहुत गंभीर था।

"कल रात को माधोपूर के मसले पर मैं बहुत देर तक सोचता रहा और अब सोच विचार कर एक नतीजे पर पहुँच चुका हूँ। अगर तुम लोगों को मंज़ूर हो तो ठीक, अगर नहीं तो मैं स्वतन्त्र होकर जो चाहूँगा करूँगा।" संतोष के कथन में दृढ़ता थी।

"आपस में बात करने का यह ढंग नहीं है संतोष ! हम जो कुछ भी सोचते हैं जो भी प्रोग्राम बनाते हैं उस पर पहिले अपने साथियों में बैठकर ग़ौर कर लेते हैं। जब सभी साथी किसी नतीजे पर पहुँच जाते हैं, तब आगे कार्रवाई करते हैं। मगर तुम तो जैसे चुनौती देने आए हो। हाँथ में नंगी तलवार लेकर भी कहीं सहूलियत की बात की जाती है ! बताओ भी तो तुम क्या कहना चाहते हो। मुमकिन है हम सभी तुमसे सहमत हो जाँय।" विनय ने घूर कर संतोष की ओर देखा।

"सहमत तो क्या होगे तुम लोग, लेकिन कह देना अपना फ़र्ज़ है।

मैं गाँव के कुछ लोगों को तैयार कर जमुना प्रसाद को पिटवा देना चाहता हूँ। लोग उससे आजिज़ आ ही गये हैं, आसानी से आदमी मिल जायेंगे। एक बार अच्छी ठोकाई हो जाने पर फिर कभी वह मुकाबिले पर नहीं आयेगा। उधर गाँव वालों की भी हिम्मत बढ़ जायेगी, उनका पक्ष मज़बूत हो जाएगा।" संतोष बोला।

"मगर इसका नतीजा क्या होगा? पंडित नरोत्तम प्रसाद पर इसका क्या असर होगा? पुलिस वाले क्या करेंगे? पंचायत के संगठन पर इसका क्या असर होगा? यह सब सोच लिया है तुमने?" विनय ने कहा।

"मुझे इन बातों से कोई मतलब नहीं। जो भी होगा, देखा जायेगा। इस समय तो उस साले को पीटना ही है। बहुत ऊधम मचाये हुये है गाँव में आज कल!"

"इतने ग़ैर ज़िम्मेदार और ग़लत काम में मैं तुम्हारा साथ न दूँगा। पंचायत में अगर तुमने यह प्रस्ताव रखा तो मैं ज़ोरों से तुम्हारा विरोध करूँगा और प्रस्ताव पास नहीं होने दूँगा। मुझे तुमसे यही कहना है कि इस तरह की बातें छोड़ो और ज़रा बुद्धि से काम लो।"

"सुनो विनय, मैं तुम्हारा लेक्चर सुनने नहीं आया था। सिर्फ़ एक साथी के नाते बताने आया था।' संतोष ने चिढ़कर कहा।

"इतना ग़ुस्सा होने की क्या ज़रूरत है संतोष बाबू! आप ख़ुद ही ग़ौर करें कि आपके इस प्रोग्राम का क्या असर होगा? जमुना प्रसाद पर आपका ग़ुस्सा बिल्कुल जायज़ है। लेकिन यह सियासत है। सियासत को ज़ाती ग़ुस्सा उतारने का बहाना या ज़रिया तो नहीं बनाया जा सकता। बाज़ वक़्त ज़हर का घूँट पीकर भी हमें चुप रहना पड़ता है। आप कोई भी प्रोग्राम रखें, पहिले उसे आपस में तय कीजिये, पंचायत में मंज़ूर कराइये, तब उसे अमल में लाने की कोशिश कीजिये। मेरी निगाह में तो यही ठीक रास्ता है। आपके दिमाग़ में एक फ़ितूर आये और उसके नतीजे में गाँव वालों पर मुसीबत आ जाये तो क्या फ़ायदा हुआ? आप ठंडे दिल से विचार कीजिये कि आप का सोचना

सही है या नहीं। जमुना प्रसाद को पीट देने से क्या होगा ? गाँव के कुछ नौजवान पकड़कर धाँद दिये जायेंगे और पंचायत के काम में धक्का पहुँचेगा। इससे ज़्यादा तो इसका नतीजा मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।" नसीम ने समझाते हुये संतोष की ओर देखकर कहा।

"अच्छा, तो तुम दोनों को मेरा प्रोग्राम नामन्ज़ूर है! और मैं जाता हूँ। अच्छा हो कि तुम लोग मेरा विरोध न करो, चुप रह जाओ।"

"चुप कैसे रह जाँय ? हमारे सारे किए कराए पर तुम पानी फेरने की कोशिश करो और हम चुप रह जाँय, यह नहीं हो सकता। हम तुम्हारा खुल्लमखुल्ला विरोध करेंगे और तुम्हारे प्रोग्राम को असम्भव बना देंगे।" विनय ने दृढ़ता से कहा।

"ख़ैर देखा जायेगा। राजनीति में दोस्त दुश्मन किसी की परवाह नहीं की जाती। रास्ते का रोड़ा हटाना भी ज़रूरी हो जाता है।" कहता हुआ संतोष उठा और बाहर जाने लगा।

"अरे रुको भी तो, इतनी जल्दी क्या है ?" नसीम ने चाहा कि कि संतोष को रोक उसे ठंढा करने की कोशिश करे।

"मेरा अब यहाँ क्या है ? मैं नहीं रुक सकता, तुम दोनों यहीं रहो, मौज करो, मैं जाता हूँ" कह संतोष सीढ़ी के नीचे उतर गया।

संतोष की बातों से नसीम को बड़ी परेशानी हुई। न जाने क्या कर बैठे यह जाकर गाँव में। लेकिन विनय को परेशानी कम थी, ग़ुस्सा ज़्यादा था। गाँव के नौजवानों पर संतोष का कितना प्रभाव है, इसका विनय को पता था। संतोष के कहने पर, पंचायत की रज़ामन्दी के बग़ैर, गाँव के नौजवान जमुना प्रसाद पर हाँथ छोड़ने के लिये तैयार हो जायँगे, इसकी उम्मेद विनय को न थी। इसलिये इस ओर ध्यान नहीं था उसका। वह संतोष की उन जली कटी बातों के बारे में सोच रहा था, जो उसने उसके और नसीम के सहजीवन को लक्ष्य करके कहे थे। मामला कितना तूल खींच सकता है और संतोष किस प्रकार तिल का ताड़ बना सकता है, इसका अन्दाज़ विनय को था। इसीलिये वह परेशान था। सिगरेट जलाकर विनय चुपचाप कमरे में

टहलने लगा।

थोड़ी देर योंही घूमते रहने के बाद विनय ने नसीम से बहुत गम्भीर होकर कहा, "नसीम, तुमसे कुछ ज़रूरी बातें करनी है। ग़ौर से सुनो। अपना आगे का रुख़ तय करने के लिए मैंने काफ़ी सोच विचार किया है। संतोष आतंकवादी मिजाज़ का आदमी है। कहता है कि उसने मार्क्सवाद पढ़ा है। यह भी ज़ाहिर करने की कोशिश करता है कि उसे मज़दूरों, किसानों और जनता में काम करने का काफ़ी अनुभव है। लेकिन वह कितना बड़ा मूर्ख है इस का शायद तुम्हें पता नहीं। इधर कई महीनों से मैं ग़ौर कर रहा हूँ और यह देख रहा हूँ कि उसका रुझान आतङ्कवाद की ओर होता जा रहा है। शायद आतङ्कवादियों के कुछ असर में भी वह आगया है। हमारे ये नौजवान आवेश और ग़ुस्से में हिंसा कार्य कर डालते हैं। नतीजा इन के कामों का हमेशा ख़राब होता है। यों राजनीतिक कामों में हिंसा अहिंसा का अधिक भेद नहीं किया जा सकता, लेकिन हर वह काम हमारे लिये हानिकर है जिसमें हम जनता, काँग्रेस और दूसरे राजनैतिक दलों का सहयोग न ले सकें। संतोष को समझाने की कोशिश मैंने की। लेकिन वह जैसे दावाना हो रहा है। बिजली घर वाली हड़ताल में मारपीट होते होते बची। अगर गोली चल जाती तो सब मामला चौपट हो जाता। बड़ी मुश्किल से परिस्थिति पर काबू पा सका मैं। उसी दिन से संतोष पर मुझे शक होने लगा था। अब वह माधोपुर में भी काम बिगाड़ना चाहता है। पञ्चायत कमेटी में उसे रखना ग़लत हुआ। अपनी पोज़ीशन से फ़ायदा उठाने की कोशिश वह ज़रूर करेगा। यह बड़ी ख़तरनाक बात है। हमें आपस में ही लड़ते देख गाँव वालों पर बुरा असर पड़ेगा। जमुनाप्रसाद हथकण्डे दिखा रहा है। मदन से उसके आदमी नत्थू से झगड़ा हो चुका है। अगर संतोष ने कुछ भी ऐसा काम किया तो पं० नरोत्तम प्रसाद और दूसरे काँग्रेस वालों की सहानुभूति हमारे साथ न रहेगी और जमुना प्रसाद इससे फ़ायदा ज़रूर उठायेगा। फिर पुलिस वालों की बन आयेगी और हमारा संगठन टूट जायेगा। मैं पंडित जी के पास

जाऊँगा और पहिले ही उन्हें सब कुछ बता दूँगा, जिससे वे संतोष को बुला कर बातें करलें और उसे समझा दें। अगर तब भी वह न माना तो उसे पञ्चायत से अलग करना पड़ेगा। इसका असर उसके ऊपर ज़्यादा बुरा पड़ेगा, लेकिन मजबूरी है। दूसरा कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। एक बात और! संतोष, नीच प्रवृत्तियों का इन्सान है। उसकी बातों को तुमने ग़ौर से नहीं सुना। वह हमारे तुम्हारे ऊपर भी कीचड़ उछालने से बाज़ न आयेगा। ऐसे आदमियों का ठिकाना ही क्या! संतोष से बातचीत करते समय अधिक सजग रहने की ज़रूरत है। शायद तुम मेरा मतलब समझ गई हो। मैं संतोष के साथियों पर भी निगाह रखूंगा। मैं अभी उससे बिल्कुल निराश नहीं हो गया हूँ। लेकिन अगर वह अपना रवैया नहीं बदल सका और अपने व्यवहार और कार्य शैली में परिवर्तन न ला सका तो मुझे कड़ाई करनी पड़ेगी। या तो उसे पार्टी की बात माननी पड़ेगी या पार्टी उससे अपना कोई भी ताल्लुक़ न रखेगी। अभी तो वह उम्मेदवार ही है। अच्छा है जो कुछ इधर या उधर फ़ैसला होना हो हो जाय। ऐसे आदमियों को पार्टी में लेना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। जानती हो पार्टी मेम्बरी के लिये वह कब से कोशिश कर रहा है! अगर हमारे साथी होशियार न होते तो वह कब का पार्टी सदस्य हो चुका होता। तब कितनी कठिनाई पड़ती!"

नसीम चुपचाप विनय की बातें सुनती रही। संतोष किधर बहता जा रहा है, इस पर उसने ग़ौर नहीं किया था। आज विनय के ध्यान दिलाने पर उसकी भी आँखें खुलीं। संतोष के रिमार्कों पर भी उसने ग़ौर नहीं किया था। मामूली मज़ाक ही समझती थी। लेकिन अब परिस्थिति साफ़ होने लगी। संतोष को मामूली हँसोड़ और मज़ाक़िया नौजवान समझती थी नसीम। लेकिन अब उसे पता चला कि उसके मज़ाक़ों के पीछे कोई और ही चीज़ छिपी थी।

"अब क्या किया जाय?" नसीम ने घबरा कर पूछा।

"कुछ नहीं, घबराने की कोई बात नहीं। संतोष के ठीक हो जाने

का अभी भी समय है। देखना है कि उसके कौन से नये साथी पैदा हो गये हैं। उनके पंजे से संतोष को निकाल लिया जाय तो वह अब भी सुधर सकता है। अगर न सुधरा तो ख़ुद पछतायेगा। हम व्यक्तियों के लिये सिद्धान्तों का बलिदान नहीं कर सकते। व्यक्तियों की ख़ुशी-नाख़ुशी के लिये आन्दोलनों को चौपट नहीं कर सकते, जनता के हितों का ख़ून नहीं कर सकते। अगर कल मैं कोई ग़लत काम करने पर आमादा होता हूँ तो मुझे भी दूध की मक्खी की तरह निकाल कर बाहर फेंक दिया जायेगा। राजनीति दहकता शोला है, जिसमें खरे खोटे की पहिचान नित ही होती रहती है। अच्छा, अब मैं जाता हूँ, तुम अकबर से सामान मँगवा लेना। किताबें और काग़ज़ों को वह न छुये। उन्हें मैं ख़ुद ले आऊँगा। लौटते समय लोगों का हिसाब भी साफ़ कर दूँगा और किताबें भी लेता आऊँगा।"

"कहाँ जाओगे, पंडित जी के पास?"

"हाँ, वहाँ भी जाऊँगा लेकिन पहिले दूसरे साथियों से राय करलूँ। मामला संगीन है। ज़िला कमेटी को भी इस पर ग़ौर करना पड़ेगा। शाम को पञ्चायत में मामला पेश होगा। अगर संतोष ने पेश न किया तो मैं ख़ुद इस मसले को उठाऊँगा। इसे अब तय कर डालना ही ठीक होगा। अच्छा मैं जाता हूँ।"

"खाना खाने आओगे?"

"देखा जायेगा। अगर मैं न भी आया तो अकेली ही तुम पञ्चायत में पहुँच जाना।"

"अच्छी बात है। वक़्त मिले तो आ जाना। मालूम हो जाय कि तुम लोगों ने क्या तय किया तो उसी के मुताबिक़ पञ्चायत में भी ग़ौर किया जायेगा।"

"अच्छा कोशिश करूँगा आ जाने की। तुम पंडित जी से पहिले ही मिल लेने की कोशिश करना जिससे बैठक में आसानी से सब बातें तय हो सकें।"

× × ×

छबिया को मदन की कारगुज़ारी का पता चला तो वह फूली न समाई। 'उसका मदन उसके लिये नत्थू को पीट भी सकता है। कितना बहादुर है! आव देखा न ताव, बस चढ़ ही बैठा उसके ऊपर। नत्थू को भी पता चला होगा कि पड़ा था पाला किसी मर्द से।' कन्हई जब मदन की बहादुरी का गुणगान कर रहा था, उस समय वह अपने को समेट न पाती थी। छाती गर्व से फूल गई और आँखों में स्नेह के आँसू आ गये। वह कोठरी में जा गदगद् हो मदन की बातें सोचने लगी। लेटे लेटे उसे लगा कि वह एक नाव पर बैठी है और नाव धीरे धीरे मन्द गति से लहरों में से होती आगे बढ़ती जा रही है। उसे लगा कि जैसे उसका शरीर हलका हो गया है और उसमें उड़ने की क्षमता आ गई है। जैसे वह वृक्षों के ऊपर, घरों के ऊपर, सारे गाँव के ऊपर, उड़ती मँडराती चली जा रही है। जैसे किसी तरु की शीतल छाया में बैठा मदन बाँहें पसार उसे बुला रहा है। और वह चक्कर देती, मँडराती, धीरे धीरे नीचे उतर मदन के अंक में समा जाती है। मदन उसे समेटे, अच्छी तरह चिपकाये, उसकी आँखों में आँखें गड़ाये, मुस्करा रहा है। उसका शरीर सिहर उठा, रोमांच हो आया और वह फटी फटी आँखों से शून्य की ओर ताकने लगी। लड़ी टूटी नहीं, करवट के बाद फिर ध्यान आया, उसका मदन उसे अपने अंक में कस के दबाये हुये है। और वह उससे चिपटती जा रही है, जैसे उसकी उभरी, चौड़ी छाती में छिप जाना चाहती हो, खो जाना चाहती हो। उसे लगा कि आम के बाग़ में वह आम बीनने गई है। रात की ठंढी चाँदनी में, अमराई की परछाई में जैसे उसने पीछे से आँखें बन्द करलो। वह डर गई, घबरा गई। मदन हँस पड़ा खिलखिला कर और वह भी। आँखें चार हो गईं। उसने देखा वह सखियों के साथ झूला झूल रही है। पेंगें मारी जा रही हैं। बादल घेरे हुये हैं। हवा तेज़ चल रही है। सखियाँ गाती जा रही हैं और पेंगें मारती जा रही हैं। सब के साथ उसकी भी साड़ी उड़ती जा रही है। और, मदन सामने किसी पेड़ की डाली पर बैठा मुसकरा रहा है। लाज से सिर नीचा कर वह साड़ी सँभालने

लगती है। छबिया सोचती गई, सोचती गई, ध्यान मग्न हो, आनन्द विभोर हो। ध्यान तब टूटा जब कन्हई की आवाज़ आँगन में सुनी, "विनय बाबू आये हैं और साथ में मदन भी। जल-सरबत का परबन्ध करो।"

कन्हई शर्बत ले वापस चला गया और छबिया की माँ ड्योढ़ी के दरवाज़े की ओट में खड़ी हो कान रोप कर बातें सुनने लगी। लेकिन छबिया की चञ्चलता बढ़ती गई। वह आँगन में इधर से उधर किसी न किसी काम के बहाने घूमती फिरी। फिर इस आशंका से कि माँ समझ न जाय वह कोठरी में वापस चली गई। वहाँ से भी बाहर की बातें ध्यान से सुनने पर साफ़ साफ़ सुनाई पड़ जाती थीं। झरोखे से आवाज़ आ जाती थी। छबिया ने कान लगा कर सुनना शुरू किया, उसका कलेजा धड़क रहा था। बाहर मदन कह रहा था, "चाचा आप बड़े हैं, जो हुकुम है सिर माथे पर है, लेकिन नत्थू भी कितना बदमाश है यह भी तो देखिये। जैसी बातें उसने कहीं उसकी सजा और हो ही क्या सकती थी। मैं कितना बरदाश्त करता आखिर। मैं मना कर रहा था, लेकिन वह बोलता ही चला गया। गुस्सा न रुका तो दो चार धौल जमा दिये।"

"अगर वह पुलिस में रपट कर देता तो" मतई ने मदन की ओर देख कर कहा।

"तो क्या होता? थाने में बन्द हो जाते" मदन के उत्तर में अल्हड़पन था।

"लेकिन भैया, सोचो। इसमें मानपरतिष्ठा का भी तो सवाल है। हम किसी बात से घबराते नहीं। लेकिन इज्जत आबरू बचाने के लिये सिर झुका लेने में कोई हरज नहीं। डाँट डपट कर छोड़ देते उसे।" मतई ने समझाया।

"चाचा, नथुआ डाँट डपट से मानने वाला आदमी नहीं है। लात के देवता बात से नहीं मानते। ऐसे आदमी की दवा घूँसा लात ही है।" मदन ने फिर दोहराया।

सर्वथा उचित है। फिर भी मैं यही कहना चाहूँगा कि नत्थू के उभारने से तैश में नहीं आना चाहिए था। जब ये लोग जानते हैं कि सारी शरारत की जड़ जमुना प्रसाद है तो उससे मुठभेड़ की तैयारी करनी चाहिये। जमुना प्रसाद को तभी हराया जा सकता है जब सारा गाँव एक होकर उसका मुकाबिला करे। पंचायत के कामों से उसकी आमदनी को धक्का लगा है। वह तिलमिला उठा है। खीझ और गुस्से में वह किसी भी हद तक आगे जा सकता है और हमें नुक़सान पहुँचा सकता है। उसने तुम लोगों के पास नत्थू को जान बूझ कर भेजा था और .... "

"यह ठीक है। नत्थू चाहता था कि हम जमुना प्रसाद से छुनिया के ब्याह के लिये क़र्ज़ ले लें कर्ज़ देने को वह क्यों तैयार है? इसलिए कि हम उसके एहसान के दबाव में आकर पंचायत का साथ छोड़ दें। जमुना प्रसाद ने नत्थू के जरिये यही कहलाया था।" मतई ने बताया।

"यही तो मैं कह रहा था। उसकी चाल थी कि तुम कर्ज़ लेकर उसके अन्दर में आ जाओ। यह चाल न चले तो छुनिया को बदनाम किया जाय जिससे घबराकर तुम उसकी शरण में चले आओ, यह भी न हो तो कम से कम तुम दोनों भाइयों में झगड़ा ही हो जाय। मैं सब समझता हूँ। इस जमुना प्रसाद से मेरा काम पड़ चुका है। वह मुझे भूला न होगा। सच कहता हूँ कभी कभी तो ऐसा हो जाता है जी में कि उसी से बदला लेने में जुट जाऊँ, लेकिन सारे गाँव की भलाई, पञ्चायत की भलाई का ध्यान आते ही सँभल जाता हूँ और अपने को रोक ले जाता हूँ। मदन भाई, तुम नाराज़ मत होना। तुम्हारी ही तरह हम सब लोगों का जी जला हुआ है और हम सबके दिलों में आग लगी हुई है। लेकिन नीति यही कहती है कि समय और स्थान देखकर ही हमें क़दम उठाना चाहिए। पंचायत के सामने बहुत बड़े बड़े काम हैं। पहरा और कड़ा कर देना है। गल्ले कपड़ों के लिये फ़ौरन ही इन्तज़ाम करना है। यह सब काम तभी पूरा होगा जब तुम हम ठंढे दिल और ठंढे दिमाग़ से सोचेंगे। हमारे अगले क़दम सही और मज़बूत होने चाहिये। तुम

पञ्चायत पर, अपने गाँव के भाइयों पर विश्वास रखो। अगर जमुना-प्रसाद के पास धन है और कुछ गुण्डे उसकी मदद के लिये हैं तो तुम्हारी तरफ़ सारा गाँव है। तुमको घबड़ाना नहीं चाहिये। रही छबिया की शादी की बात। उसकी फ़िक्र करने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। मतई चौधरी, मैं रुपयों का प्रबन्ध करूँगा। तुम अभी से निश्चिन्त होकर शादी की तैयारी करो और जल्दी से जल्दी छबिया का ब्याह कर डालो।

"भैया, भगवान तुम्हारा भला करे, और मैं क्या कह सकता हूँ। कन्या से उरिन हो जाऊँ तो अपना भाग्य समझूँ," रुद्ध कण्ठ से मतई ने कहा, "तुम धर्मात्मा, दयावान हो। विश्वास रखो पाई पाई अदा कर दूँगा। आज तुमने डूबते को सहारा दे दिया। इसका फल भगवान तुम्हें देंगे। जिस तरह तुमने मेरी लाज रखी, मेरी छबी की लाज रखी उसी तरह भगवान तुम्हें भी सहाय लगेंगे। जिन्दगी में तुम्हें कभी कोई भी दुख न होगा।"

आँखों की कोरों से आँसू के बूँद पोछते हुये विनय ने कहा। "तुम्हारा आशीर्वाद मेरे लिये क़ीमती थाती है। कन्हई भाई, सचमुच तुम ऐसा भाई पाकर धन्य हो। आओ मदन, गाँव की इज्ज़त आबरू बचाने, अन्नवस्त्र का प्रबन्ध करने और गाँव की जितनी भी छबियाँ हैं सब की रक्षा के लिये हम आज मतई चाचा के सामने प्रतिज्ञा करें। जब तक गाँव में पंञ्चायत है और गाँव में स्वयंसेवकों का जत्था है तब तक हमारी ओर कोई आँख उठा कर नहीं देख सकता" भर्राई हुई आवाज़ में विनय ने कहा। उसने मदन का हाँथ अपने हाँथों में ले लिया।

"भगवान तुम्हारी परतिज्ञा पूरी करें" ऊपर आसमान की ओर दोनों हाँथ उठा मतई ने कहा, "जैसे तुम हम सब की लाज बचा रहे हो, भगवान तुम्हारी लाज बचावे, जैसे तुम हमें उरिन कर रहे हो, वैसे भगवान तुम्हें उरिन करे।"

मदन चुपचाप विनय से सटा बैठा था, कन्हई ज़मीन में आँखें

गड़ाये ध्यान-मग्न था, मतई विनय की ओर स्नेह भरी आँखों से देख रहा था जैसे अपना सारा प्रेम, सारी श्रद्धा उँडेले दे रहा हो, और भीतर छबिया की माँ आनन्द गद्गद हो आँसू ढार रही थी। छबिया के मन में क्या क्या हो रहा था कोई नहीं जानता। कुछ मिनट अपनी कोठरी में पड़ी रही। फिर उठ कर आँगन में अपनी माँ के पास खड़ी हो गई। माँ ने उसे अंक में भर लिया, प्यार किया। अपने आँचल में उसका मुँह छिपा, कस के उसे दबा, उसका पीठ थपथपाने लगी।

बाहर विनय उठके चलने लगा तो मदन भी उसके साथ हो लिया। मतई और कन्हई भी विनय को पहुँचाने चले। चारों चुपचाप चले जा रहे थे। विनय मदन के कन्धे पर हाँथ धरे बीच में चल रहा था। बाईं तरफ़ कन्हई और दाहिनी तरफ़ मतई थे। छबिया की माँ ने झाँक कर देखा। उसे विनय और मदन सगे भाई जैसे लगे। दोनों कैसे चले जा रहे हैं साथ साथ! और छबिया, वह एक टक इस जोड़ी को देखती रही। धीरे धीरे धुँधली और फिर ओझल होती इस जोड़ी को देख उसका कलेजा मुँह को आ रहा था, सकरुण आनन्द से विह्वल हो कर। लेकिन मदन को क्या पता था कि उसको याद करने वाला, उसके लिये तड़प तड़प कर रह जाने वाला, कोई कोमल, भावुक हृदय भी है जो उसी को याद करता है, जो उससे मिल कर, एकाकार हो जाने के लिये उन्मद, उद्विग्न और उत्पीड़ित है!

६

पं० नरोत्तम प्रसाद की उदासी और झुँझलाहट का कारण संतोष की वह बात थी जो उसने नसीम के बारे में कही थी। नसीम के लिये उनके हृदय में जो कुछ धारणा थी उसे संतोष की बातों से बहुत ठेस पहुँची थी। बार बार समझाने और मना करने पर भी जब वह बकता ही गया तो कड़े शब्दों में डाँटना पड़ा था। विनय के इन्तज़ार में बैठे वे इसी उधेड़बुन में पड़े थे। पञ्चायत की एकता ही उसकी शक्ति थी। संतोष कुछ शरारत करेगा इसकी आशंका उन्हें थी। इसलिए सोचा कि शहर काँग्रेस कमेटी की बैठक समाप्त हो जाने पर वे स्वयं विनय के मकान पर जायेंगे और विचार विनिमय कर संतोष के प्रति अपना रुख अन्तिम रूप से निश्चित करेंगे।

शाम को काँग्रेस कमेटी की बैठक हुई और शहर में स्वयंसेवक दलों के कामों की रिपोर्ट पढ़ी गई। कुल मिलाकर साढ़े चार सौ स्वयं सेवक रात को पहरा देते थे। यदाकदा पुलिस अथवा सिविक गार्ड वालों से गरमा गर्मी भी हो जाया करती थी। अधिकारी वर्ग इस नई बात को अच्छी नज़र से नहीं देखता था। समान हुकूमत की स्थापना सी मालूम पड़ती हुई काँग्रेस तथा अन्य पार्टियों द्वारा परिचालित यह स्वरक्षा व्यवस्था उनकी आँखों में खटकती थी। लेकिन स्वयंसेवकों को यह आदेश था कि वे किसी भी नियम को न तोड़ें, बल्कि लोगों को इस बात के लिये तैयार करें कि वे नागरिक नियमों का पालन करें, उसकी आदत डालें। नतीजा यह हुआ कि जनता आराम से निडर हो सुख की नींद सोने लगी। सारे शहर का इन्तज़ाम सुव्यवस्थित रूप से चलने लगा।

मज़दूरों की बस्तियों की भी रिपोर्ट आई थी। वहाँ भी पहरे का काम चौकस था। शराब ताड़ी पीकर झूमते, गालियाँ बकते, लड़ते, बदहवास लोगों की संख्या दिनों दिन घटती जा रही थी। ज़्यादातर जवान मज़दूर ही रात को पहरा देते। पहरा देते समय तरह तरह के

गाने गाते, ढोल बजाते और अपना समय हँस बोल कर काट देते। पहरे की वजह से आपसी सहयोग और नाता मज़बूत हो गया था। लगता था कि लोग आपस में इतना अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर चुके हैं कि अगर काम पड़े तो वे एक दूसरे की मदद निश्चय रूप से करेंगे और सारी बस्ती की विपत्ति सब मिलकर अपने ऊपर उठाने को तैयार होंगे।

हिन्दू मुसलमानों का भी सम्बन्ध अच्छा हो चला था। साथ साथ रहने, पहरा देने, हँसी मज़ाक, बात-चीत करने से मेल जोल की भावना बढ़ गई थी। इसका असर सारे शहर पर अच्छा पड़ा था। राजनैतिक रूप से इसका महत्व भी था। कमेटी ने यह नोट किया कि आत्म-रक्षा के इस संगठित प्रयत्न से हमारी राजनैतिक एकता और समझौते का भी मार्ग प्रशस्त हो रहा है। आपसी सम्बन्धों की जड़ें मज़बूत हो रही हैं और सारे शहर से कटुता, द्वेष आदि की भावनायें खतम होती जा रही हैं। इसलिये हमें अधिक शक्ति लगाकर इस काम को आगे बढ़ाना चाहिये जिससे भय और आतङ्क का भाव न फैल सके और सारे शहर के सभी वर्गों और समुदायों में एकता और सहयोग की भावना बढ़ती जाय। इसके बाद कमेटी की बैठक समाप्त हुई।

बैठक से उठकर पंडित जी छड़ी घुमाते धीरे धीरे नसीम के मकान की ओर चले। रास्ते में वे माधोपूर की बातें सोचते जा रहे थे। जमुना-प्रसाद और नत्थू आदि की करनी, छबिया और मदन का ब्याह, मतई, कन्हईऔर रामदीन की परेशानी और संतोष का इस परिस्थिति से, फायदा उठाकर गैरज़िम्मेदारी की बातें करना। उन्हें लग रहा था कि माधोपूर की अवस्था बिगड़ती ही जायेगी। कुसमय में आपस का मतभेद भया-नक से भयानक फल ला सकता है। संतोष का पंचायत के मुखियों के पास जाना और उन्हें बार बार उभारने की कोशिश करना ठीक नहीं है। मतई की समझदारी ने परिस्थिति सँभाल ली वरना उस दिन जाने क्या हो जाता! संतोष इतना गैरज़िम्मेदार आदमी है! छिः,नसीम के बारे में भी वह क्या क्या बक रहा था! राजनैतिक क्षेत्र में मतभेद

तो होता ही रहता है। लेकिन राजनैतिक मतभेद व्यक्तिगत झगड़ों में क्यों बदला जाय! व्यक्तिगत झगड़े के माने यह नहीं है कि चरित्र के बारे में भी तरह तरह का गन्दा प्रचार किया जाय। पंडित जी इसी प्रकार सोचते नसीम के मकान के सामने पहुँच गये।

सीढ़ी के ऊपर चढ़कर उन्होंने चुपके से अन्दर झाँका। नसीम टेबुल पर बैठी ध्यानमग्न कोई किताब पढ़ रही थी। पंडित जी बग़ल में पड़ी एक आराम कुर्सी पर जा डटे, लेकिन नसीम को कुछ भी पता न चला। वह पढ़ती ही गई। थोड़ी देर इन्तज़ार करने पर पंडित जी नसीम के पास जा बोले, "कहो नसीम, क्या हो रहा है? क्या पढ़ रही हो इतने ध्यान से?"

"अरे, आप कब आये?" अचकचा कर नसीम बोली।

"अभी थोड़ी देर हुई। मैं ऊपर आकर कमरे में आराम कुर्सी पर बैठ गया और तुम्हें कुछ पता ही नहीं चला! कोई बहुत सुन्दर स्थल था क्या?"

"जी हाँ 'अन्ना करेनिना' पढ़ रही थी। अभी घण्टे भर पहिले ही शुरू किया था। ताल्स्ताय बहुत बड़ा कलाकार था इसमें कोई शक नहीं। मैंने उसकी दूसरी नाविलें भी देखी हैं, क्या कहना है! साइकालोजी की गहराइयों में उतरता है, तो उतरता ही जाता है। देखिये इस जगह उसने कमाल किया है" कहते हुये नसीम ने पंडित जी को वह पंक्तियाँ पढ़ाईं जिनको पढ़कर वह स्वयं इतनी उलझन में फँस गई थी।

पंक्तियाँ पढ़ने के बाद पण्डित जी पूरा पन्ना पढ़ गये। फिर उसके पहिले के एक दो पन्ने भी देख गए। आराम कुर्सी पर आराम से बैठते हुये पंडित जी ने कहा, "भाई, बात तो ऊँचे दर्जे की कही है, लेकिन मेरी समझ में नहीं आई। हम किसी व्यक्ति को क्यों चाहते हैं, इसी-कि उसमें कुछ ऐसी ख़ास बातें हैं जिन्हें हम पसन्द करते हैं। लेकिन यह कहना कि उन्हीं ख़ास बातों के कारण हम उसी व्यक्ति को घृणा भी करने लगते हैं, मेरी समझ में नहीं आता। अपने प्रेमी को वह घृणा करती है, यह स्वयं उसका कहना है। क्यों? इसलिए कि उसका प्रेमी

अत्यन्त सज्जन, शीलवान और रूपवान है, क्योंकि वह उन तमाम गुणों की निधि है जिनके कारण वह प्रेमिका उसकी ओर आकर्षित हुई। ऐसी उलझन की बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं सीधा सादा आदमी हूँ, सीधी बातें जानता और समझता हूँ।"

नसीम हँस पड़ी, "पंडित जी मिठाई तो सभी पसन्द करते हैं। लेकिन अगर ज़रूरत से ज़्यादा मिठाई खाई जाय तो उससे चिढ़ हो जायेगी कि नहीं। आदमियों के स्वभाव में तरह तरह की बातें मिलतीं हैं। या यों कहिये कि आदमी का स्वभाव अच्छे-बुरे, कड़वे-मीठे सब तरह के गुणों का मेल है। जिस चीज़ की ज़्यादती होती है वही खटकने लगती है। यहाँ पर भी कुछ इसी तरह की बात है। ख़ैर, जाने दीजिये इस दिमाग़ी कलाबाज़ी को, बताइये क्या हुक्म है हमारे लिये? आपने कैसे तकलीफ़ की? कोई ख़ास बात तो नहीं?"

"ख़ास बात तो नहीं है कोई, लेकिन संतोष की हरकतें अब तकलीफ़ देने लगी हैं। संतोष ने उस दिन से मेरे पास आना जाना बन्द कर दिया है। उस दिन के बाद आज शाम को शहर काँग्रेस कमेटी में दिखाई पड़ा था। वहाँ भी नमस्ते और एक दो इधर उधर की बातों के सिवाय और कुछ नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद वह चला गया। स्वभाव से छिछला होने के कारण उससे मुझे डर सा हो गया है। कुछ पता है वह मज़दूर-सभा में तो कुछ गड़बड़ नहीं कर रहा है? असल बात यह है कि उसकी दोस्ती कुछ ग़ैरज़िम्मेदार लोगों के साथ हो गई है। इसकी मुझे बड़ी चिन्ता है।" पंडितजी ने दुखी होकर कहा।

"विनय भी इसका चर्चा कर रहे थे। आजकल वह भी दुखी रहते हैं। पिछली बैठक के बाद वह हँस नहीं सके खुल कर। मुझे तो ऐसा लगता है कि संतोष को अब सुधारा नहीं जा सकता। विनय ने कई बार संतोष को समझाने की कोशिश की लेकिन संतोष का दिमाग़ जैसे ख़राब हो गया है। वह बात सुनने के लिये तैयार नहीं है। अभी मज़दूर सभा में तो वह कुछ गड़बड़ी नहीं कर रहे हैं, लेकिन आगे करेंगे इसमें कोई शक नहीं। विनय संतोष के नये साथियों का। चर्चा

भी कर रहे थे। ये साथी कैसे हैं, क्या हैं, यह मैं नहीं जानती लेकिन संतोष के ऊपर उनका पूरा असर है यह बात है सच है। मेरे ऊपर भी तो संतोष बाबू की ख़ास मेहरबानी है आजकल।" नसीम ने सूखी हँसी हँस कर कहा।

पंडित जी का चेहरा उतर गया। नसीम का यह आख़िरी जुमला उन्हें कष्टदायक लगा। एक सभ्य महिला के प्रति कितना सम्मान, कितनी श्रद्धा होनी चाहिये, इसका भी ध्यान संतोष को नहीं था! पंडित जी इसीलिये तो बहुत दुखी थे। नसीम को संतोष की ये बातें कैसी लगती होंगी, इसका भी उन्हें अन्दाज़ था। इसीलिये नसीम के चर्चा करने पर वे हतप्रभ और दुखी हो गये।

"विनय कहाँ है?" बात टालने के लिये पंडित जी ने कहा।

"आते ही होंगे, साढ़े नौ बजे आने के लिये कहा था। वक़्त तो हो गया। बड़ी गर्मी पड़ती है आजकल। लेकिन ये दिन भर उसी तरह धूप और लू में दौड़ते रहते हैं। कहती हूँ कुछ, तो नाराज़ होने लगते हैं। चुप रह जाना पड़ता है। इनकी तन्दुरुस्ती ख़राब होती जा रही है।" नसीम चिन्तित होकर बोली।

"इसमें विनय का क़सूर नहीं। परिस्थिति कितनी गंभीर है इसे सब लोग तो समझते नहीं, लेकिन जो अख़बार पढ़ते हैं, राजनीतिक अवस्था की भयंकरता का जिन्हें कुछ भी पता है वे चैन से बैठ नहीं सकते। विनय कर्मठ और समझदार कार्यकर्ता है। अनुभव और ज्ञान दोनों उसे चैन नहीं लेने देते। इधर संतोष ने जो तमाशा मचा रखा है उसका भी असर उसके स्वास्थ्य पर पड़ता होगा। तुम्हीं सोचो नसीम, आज हमारा देश एक भयंकर ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ा है। कब विस्फोट होगा, कोई नहीं जानता। आँधी, तूफ़ान, प्रलय सब कुछ का प्रकोप होनेवाला है। आँधी आने के पहिले पत्ता भी नहीं खड़कता। भयानक शान्ति का साम्राज्य रहता है। और उसके बाद? उसके बाद हलचल उथल-पुथल, परिवर्तन क्या नहीं होता? आज हम सभी शान्ति क़ायम रखने और पहरा देने का प्रबन्ध कर रहे हैं। लेकिन यह शान्ति मरघट

की शान्ति है। इस शान्ति की रक्षा से अच्छा वह अशान्ति ही है जो हमारे रगों में ख़ून दौड़ा सकती है, जो हमारी सोई मानवता को जगा कर, उसे कुछ करने के लिये उभार सकती है। योरोप के सभी देश अपनी आज़ादी के लिये और अपनी मानमर्यादा के लिये लाखों सैनिकों की बलि चढ़ा रहे हैं और अपना सब कुछ मिटाकर भी अपनी सत्ता की रक्षा करना चाहते हैं। लेकिन हमारा अभागा देश, सदियों से ग़ुलामी की चक्की में पिसनेवाला, भूखा, कंगाल, पतित देश, ओफ़! उसके लाड़ले लाल सोचने और कुछ करने की फ़ुर्सत ही नहीं पाते। ग़ुलामी, पतन और कायरता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि बेबस बुढ़ियों की तरह विदेशी सत्ता को कोसते हैं और जापान का आवाहन नहीं करते तो उसकी विजय की कामना करते ही हैं! मैं मानता हूँ कि हम इस शासन सत्ता और उसकी प्रणाली से ऊब गये हैं, लेकिन उसको दूर करने के लिये ऐसे लोगों का सहारा लेने की बात सोचना जो उनसे अधिकभयानक, क्रूर और लिप्सा के शिकार हैं कहाँ की बुद्धिमानी है! हम कांग्रेस वाले एक क्षण के लिये भी कँधे बदलना नहीं चाहते। काँग्रेस इस साम्राज्यवादी लाश को हमेशा के लिये दफ़ना देना चाहती है और उसके ऊपर शान्ति, समृद्धि और समता के फूल खिलाना चाहती हैं। विनय यह सब बातें समझता है। मेरा मत उससे अक्सर नहीं भी मिलता, लेकिन मैं जानता हूँ कि पागलों की तरह गलियों में जो वह मारा मारा फिरता है उसका मूल कारण क्या है!"

"मैंने भी इस बात की कोशिश की है कि सियासी हालात को समझने में कामियाब हो सकूँ। लेकिन हालात इतनी तेज़ी से बदल रहे हैं कि अक्सर दिमाग़ उन्हें समझ नहीं पाता। पंडित जी, क्या ऐसी हालत में काँग्रेस कोई तहरीक चलायेगी?" नसीम ने पूछा।

"लगता तो ऐसा ही है। शासकों की ओर से तो कुछ उम्मीद है नहीं। वे तो इस बात पर तुले जान पड़ते हैं कि चाहे देश की जो हालत हो काँग्रेस को दबा और कुचल दिया जाय। देखती हो तुम,

कितने नेता अभी से जेलों में सड़ रहे हैं। अगर उन्हें देश की रक्षा का ध्यान सचमुच होता तो वे आज हमारे इन नेताओं को रिहाकर एक ऐसा वातावरण तैयार कर देते जिसमें हम सब मिल कर सर्वदली केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार बना लेते और तब जापान का मुक़ाबिला करने के लिये हम सफलतापूर्वक जनता का आवाहन करते। आज कोरे जापान के मुक़ाबिले के नाम पर जनता को उभारा नहीं जा सकता। शासकवर्ग यह चाहता है कि शासनसूत्र किसी भी तरह हमारे हाथों में न आवे। इससे वह डरता है। जापान के मुक़ाबिले के नाम पर काँग्रेस और देश की दूसरी संस्थायें जनता को संगठित करें यह शासकों को बर्दाश्त नहीं है। वह हमें अधिकार नहीं देना चाहते बल्कि अपने इशारे पर हमें नचाना चाहते हैं। हम इसके लिये तैयार नहीं। आख़िर हम किस मुँह से जनता के सामने जाँय, क्या कहें उससे?"

"पंडित जी, रास्ता तो कोई निकलना ही चाहिये। सरकार की बात तो आपने बताई, लेकिन उसकी चालों को समझने के बाद हम लोगों का फ़र्ज़ हो जाता है कि हम ख़ुद इस मसले का हल ढूँढ़ निकालें। आख़िरकार अपने देश को बचाने और उसे आज़ाद करने की ज़िम्मेदारी हमारी ही है। सरकार जो भी करे, हमें तो अपना फ़र्ज़ पूरा करना ही चाहिये। हमारे नेता और रहनुमा ज़रूर इस पर ग़ौर करेंगे। क्यों पंडित जी?"

"हाँ, ग़ौर तो करेंगे ही। रास्ता उन्हीं को निकालना है, हम तो सिपाही हैं; जो आदेश मिलेगा उसे पूरा करना हमारा फ़र्ज़ है। उसे हम पूरा करेंगे। लेकिन आदेश क्या मिलेगा यह समझ में नहीं आता। गाँधी जी ने 'हिन्दुस्तान छोड़ो' का नारा दिया है। नारा तो बहुत अच्छा है, लेकिन उसका असर क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। शासकों की ओर से विदेशों में, ख़ास तौर से अमेरिका में ज़ोरों का प्रचार शुरू हो गया है। ये लोग तो हमें जापानियों से हमदर्दी रखने वाले अवसरवादी और जाने क्या क्या कह रहे हैं। लेकिन उनके प्रचार से हमारा कुछ बिगड़ नहीं सकता। हमारे आमालनामे इतने साफ़

हैं, हमारा दामन इतना बेदाग़ है कि हमें कोई कुछ कह ही नहीं सकता।" गर्व से पंडित जी ने कहा।

"लेकिन हमें इस बात की भी तो कोशिश करनी चाहिये कि सरकार और ब्रिटेन के एजेन्ट जो कुछ प्रचार कर रहे हैं उसका हम मुँहतोड़ जवाब दें। हमें जापानियों से हमदर्दी रखने वाला बताकर हमारे हुक़ूक़ न देने की उनकी चाल को हमें बेकार कर देनी चाहिये। इस वक़्त अगर कोई ऐसा आन्दोलन चला जिससे कुछ ऊधम मचा तो सरकार को हमारे नेताओं को फिर से जेल में भेजने और जनता को तबाह करने का मौक़ा मिल जायेगा। इसलिये इस समय आन्दोलन चलाना शायद ठीक नहीं होगा। एक बात और यह भी है कि इस मौके से फ़ायदा उठा कर जापानी हमारे देश पर धावा बोल देंगे। तब क्या होगा?

"मैंने विनय से जब कभी इस पर बात चीत की वे परेशान से लगे। सन्तोष को समझाते हुये उन्होंने बारबार यह कहा कि इस समय हमें अपने को मज़बूत करना चाहिए। मज़दूर सभा में भी वे इस वक़्त हड़ताल न कर, अपनी ताक़त बढ़ा, आपसी एके और मेल के भरोसे अपनी माँगें पूरी कराना चाहते हैं। उनका कहना है कि लड़ाई का कैरेक्टर बदल गया है। रूस पर हमला होने से हर आज़ादी पसन्द देश को अपनी आज़ादी और बचाव की लड़ाई के नज़रिये और टेकनीक को बदलना पड़ा है। हमारे देश को भी इस मौक़े पर इन्टरनैशनल हालात को मद्दे नज़र रखकर ही अपनी नीति बनानी पड़ेगी। इसलिये विनय हम लोगों को आज की मौजूदा सियासी हालत पर ग़ौर करने और उसे समझने के लिये ज़ोर दिया करते हैं। पंडित जी, आप भी तो इस बात को नज़र अन्दाज़ नहीं कर सकते कि रूस के लड़ाई में शामिल होने से उसकी पूरी शक्ल बदल गई है।"

"हो सकता है बदल गई हो। लेकिन विनय की बातें जैसा कि मैंने शुरू में ही कहा, समझ में नहीं आतीं। रूस लड़ाई में शामिल होता या न होता, उससे हमारी अवस्था पर क्या असर पड़ता? जब तक हम

ग़ुलाम हैं, हमारे लिए एक ही काम है, आज़ादी के लिए लड़ना। आज़ादी मिलने के बाद हम चुन लेंगे कि किसका साथ हमें देना है किसका नहीं। नाज़ीवाद बुरा है और उसके जन्म से ही काँग्रेस ने उसका विरोध किया है। जब एबीसीनिया पर हमला हुआ, हमने 'अबीसीनिया दिवस' मनाया, जब चीन पर हमला हुआ, हमने डाक्टरी मिशन भेजा, जब स्पेन में बग़ावत हुई हमने प्रजातन्त्रवादियों की सहायता की—यह तो हमारी परम्परा रही है। इसी के अनुसार आज रूस पदाक्रान्त है। हिटलर ने उसके साथ ज़्यादती किया है। इसलिये हमारी सहानुभूति उसके साथ है। रूस ने अगर किसी दूसरे देश पर हमला किया होता और उसकी आज़ादी छीनी होती तो हम उसके भी दुश्मन होते। तो, जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हमारी नीति साफ़ है। हम न जापान की जीत चाहते हैं न जर्मनी की। हम इन दोनों की हार चाहते हैं। लेकिन हम ग़ुलामी की जंज़ीरों में जकड़े रहकर इनको हराने में मित्र राष्ट्रों का साथ नहीं दे सकते।"

"सवाल इतना ही नहीं है। सवाल तो यह है कि कल को अगर जापान हिन्दुस्तान में घुस आया तब आप क्या करेंगे? क्या उस वक्त भी आप हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रहेंगे? या, आप यह सोचते रह जायेंगे कि सरकार तो हमें कुछ करने नहीं देती, नहीं तो हम जनता के बल पर जापान को मार भगाते?" नसीम ने सवाल पूछा पंडित जी से।

"उसके लिये आल इन्डिया काँग्रेस कमेटी का प्रस्ताव मौजूद है। हम अहिंसात्मक असहयोग करेंगे।" नसीम की ओर ध्यान से देख पंडित जी ने कहा।

"इतना ही क्या काफ़ी होगा? आजकल की मशीनों और हथियारों से लैस, ख़ून की प्यासी ये फ़ौजें क्या आपके सत्याग्रह से या असहयोग से घबराकर भाग जायेंगी? यह तो एक तमाशा करना हुआ? हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए सरकार से असहयोग तो किया जा सकता है लेकिन एक हमलावर फ़ौज से असहयोग करने में कुछ भी कामयाबी मिलेगी, ऐसा मैं नहीं समझती।"

"तब क्या हो सकता है ?" पंडित जी ने पूछा ।

"हो यही सकता है कि उनका डटकर मुक़ाबिला किया जाय। हमारी जो फौजें हैं उन्हें देश का बचाव करने वालों का दर्जा दिया जाय। और हर तरह से उनकी मदद की जाय। मेरा मतलब यह नहीं है कि हम सभी चलकर भर्ती हो जाँय। यह तो तभी हो सकता है जबकि हमारी क़ौमी सरकार बन जाय और ऐसा करने के लिए वह हमें दावत दे। लेकिन जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक हमें ऐसी क़ौमी सरकार के क़ायम होने के लिये आन्दोलन करना चाहिए। क्रिप्स और उसके बाद के इन महीनों में हुकूमत की तरफ़ से बार बार इस बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि हिन्दुस्तान में क़ोमी एकता नहीं है, हम अगर कुछ देना भी चाहें तो किसको दें। लेकिन काँग्रेस ने लीग से दोस्ती करने का दरवाज़ा बन्द कर रखा है। लीग अपनी जगह बैठी हुई अपनी पोज़ीशन से फ़ायदा उठाना चाहती है, और सरकार हमारे इसी झगड़े से फ़ायदा उठाकर दुनिया में यह ढिँढोरा पीटती है कि हमें अपने देश के बचाव की भी फ़िक्र नहीं है। हम सिर्फ़ आपस में लड़ते ही रहना जानते हैं। उधर खाने कपड़े की कमी से सारे मुल्क में परेशानी हो रही है। हमारे नेताओं को चाहिए कि वे कोई ऐसा रास्ता निकालें जिससे सभी पार्टियों में एका हो सके और एक क़ौमी सरकार क़ायम हो सके। जब तक यह क़ौमी सरकार सारे मुल्क की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर न लेगी, न हम जापान से लड़ सकेंगे; न अपनी अबतर हालत को दुरुस्त कर सकेंगे और न आज़ादी की ओर एक कदम बढ़ ही सकेंगे ! मेरा ख्याल है कि इस वक़्त सत्याग्रह या और कोई आन्दोलन न चला कर हमें काँग्रेस लीग एका के आन्दोलन में लग जाना चाहिये। आपकी क्या राय है ?" पंडित जी की ओर ध्यान से देखकर नसीम ने पूछा।

"मेरी राय यह है तुम मुझे एक गिलास ठण्डा पानी पिलाओ।" हँसते हुये पंडित जी ने कहा।

"ओह, माफ़ कीजिए। आज मुझे जाने क्या हो गया है। आप कमरे में आकर बैठ भी गये लेकिन मुझे कुछ भी पता नहीं लगा।

इतनी देर से बैठी आपसे बातें कर रही हूँ, लेकिन आप से पानी को भी नहीं पूछा, अभी लाती हूँ" कहती हुई नसीम पानी लाने चली गई।

पंडित जी नसीम के कमरे में नज़र दौड़ाकर उसकी सजावट देखने लगे। सोफ़ा, कुर्सियाँ, मेज़ सभी करीने से लगे हुये थे। दीवारों पर प्राकृतिक दृश्यों सम्बन्धी तसवीरें लटक रही थीं। दीवार के बीच में एक गाँधी जी की तसवीर थी छाया रेखा से बनी। गाँधी जी सुनसान में अँधेरे को चीरते अकेले बढ़े जा रहे थे। उनके ठीक सामने लेनिन का वह चित्र था जिसमें वह किसी मकान के बारजे पर खड़ा ज़ोरों से भाषण दे रहा है। पंडित जी उठकर दोनों चित्रों का अध्ययन करने लगे।

नसीम शर्बत लाई और पण्डित जी ने उसे पी लिया। नसीम उस समय नीले कुर्ते, नीले सलवार और पीले चदरे में बहुत अच्छी लग रही थी। पण्डित जी ने मुस्करा कर पूछा, "तुम चित्रकार तो नहीं हो नसीम ?"

"जी नहीं, किसने कहा आपसे ?" आश्चर्य से नसीम ने पूछा।

"ये दोनों तसवीरें बता रही हैं। तुम्हीं ने बनाई हैं इन्हें ?"

"जी हाँ, यों ही पेन्टिङ्ग और तसवीरों से कुछ शौक़ है मुझे ? कभी कभी जो धुन सवार होती है तो खींच खाँच लिया करती हूँ तसवीरें।" नसीम ने कहा।

"गाने बजाने से भी शौक़ है ?" पंडित जी ने फिर पूछा।

इस समय पण्डित जी कमरे में, टेबुल पर, दीवार के सहारे खड़े तानपूरे को देख रहे थे। पास में तबले की जोड़ी भी थी। नसीम शर्मा गई।

"हाँ, सीखती हूँ। अभी आता नहीं"

"कितने दिनों से सीख रही हो ?"

"दो साल हो गये।"

"दो साल में भी अभी कुछ नहीं आया ? ताज्जुब है ! छिपा रही शायद, क्यों ?"

"जी नहीं, यों रोना गाना किसे नहीं आता, लेकिन मैं अच्छी तरह इस आर्ट पर क़ाबू नहीं पा सकी अभी तक।" नसीम ने बताया।"

"अच्छी बात है। विनय अभी तक नहीं आया? कहाँ रह गया? मुझे देर हो रही है।"

"हाँ, देर तो हो रही है, लेकिन हमारे सवालों का जवाब तो आपने अभी दिया ही नहीं। थोड़ी देर और रुकिये, अभी आते ही होंगे। कुछ खाने का इन्तज़ाम करूँ? हमारे घर का रद्दी खाना तो आपको अच्छा लगेगा नहीं। कुछ फल मँगा लूँ, क्यों बताइये।" नसीम ने आग्रह किया।

"खाना खाने में तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन मैं 'नेचर क्योर' वाला हूँ न, 'फ़ूड फ़ैडिस्ट।' ज़रा मिर्च मसालों से घबराता हूँ। और कोई बात नहीं।" हँसते हुये पंडित जी बोले।

"अच्छी बात है। आपको पपीता खिलाऊँगी। उसके ऊपर एक गिलास लस्सी पी लीजियेगा। ठीक है न?"

"ठीक ही है,तुम्हारा आग्रह टालना आसान काम नहीं।" पंडित जी मान गये।

नसीम ने अन्दर जा, अकबर को फल लाकर लस्सी बनाने को सहेजा। बाहर आकर बैठी ही थी कि विनय सीढ़ियों पर धड़ाधड़ चढ़ता हुआ आ गया। पंडित जी को देख उसे विस्मय हुआ। "कहिये, आप कब आये?" विनय ने पूछा।

"आया तो देर से हूँ, तुम्हारी राह देख रहा था।"

"अरे नसीम, पंडित जी को कुछ खिलाया पिलाया भी। कब से बैठे हुये हैं।"

"आप रहने दीजिये, मेहरबानी कीजिये, इनका मैं इन्तज़ाम कर लूँगी। जाइये, हाथ मुँह धोकर तब आइये। कहीं सड़क पर लोट पोट लगाकर आ रहे हैं क्या?" नसीम ने कहा।

"देखा न पंडित जी, यह हाल है इनका, सवाल कुछ, जवाब कुछ। मैं हाथ धो लूँगा भई, लेकिन पंडित जी को कुछ लस्सी वस्सी पिलाओ,

ज़रा अकबर को भेज कर कोई फल ही मँगालो। जल्दी करो।"

"विनय मुझे तुमसे बातें करनी हैं। मैं उलझन में फँस गया हूँ। तुम हाथ मुँह धो आओ तो कुछ कहूँ। संतोष ने परेशान कर दिया है।"

थोड़ी देर में विनय लौटा तो फिर बातें शुरू हुईं। पंडित जी और विनय सामने सामने बैठे हुये थे। बीच में नसीम थी।

"पंडितजी, मैं ख़ुद आपके पास आने वाला था, इसी सिलसिले में, लेकिन मौक़ा नहीं मिल सका। इधर काम बहुत बढ़ गया है। संतोष और उसके साथियों ने धीरे धीरे गड़बड़ मचाना शुरू कर दिया है। आज ही की बात है। 'भारतीय प्रेस' में मज़दूरों में काफ़ी जोश फैला था। मालिक ने एक मज़दूर को पीट दिया था बुरी तरह। संतोष भी लड़ाई करवाने पर तुला हुआ था। उसने सोचा कि मौक़ा अच्छा है, मज़दूरों में जोश ज़्यादा है, इनको उभार दो तो झगड़ा हो जायेगा। संतोष की नीयत अब यह मालूम पड़ती है कि मज़दूर सभा में कुछ तोड़ फोड़ कर वह अपना अलग गुट बना ले। 'भारतीय प्रेस' में उसकी यही चाल थी। लेकिन वहाँ के मज़दूर नेता काफ़ी अनुभवी थे। मालिक के माफ़ी माँग लेने पर और यह मान लेने पर कि अब जब कभी भी ऐसा मौक़ा आयेगा वे प्रेस युनियन से बातचीत करने के बाद ही कोई कारवाई करेंगे, सभी समझौते पर राज़ी हो गये। इस तरह झगड़ा होते होते बच गया।"

"हाँ, यही मैं कह रहा था नसीम से अभी। अब संतोष का साथ कुछ ग़ैर ज़िम्मेदार नौजवानों का पड़ गया है। ये लोग राजनीति समझते नहीं, केवल भावुकता के सहारे उछल कूद किया करते हैं। मार पीट से कहीं आन्दोलन चला करते हैं? क्या बताऊँ मैं, अफ़सोस होता है। मुझे संतोष का यह काम अच्छा नहीं लगा। राजनीतिक मतभेदों और झगड़ों के अलावा भी हमारी एक ज़िन्दगी होती है। लेकिन जैसे संतोष का सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में क्या सम्बन्ध है, राजनैतिक मतभेद और व्यक्तिगत सम्बन्धों में कैसे डोरी

बाँधी जाती है इसका कुछ ज्ञान ही नहीं है। बड़े दुख की बात है यह। चिन्तित हो पंडित जी ने कहा।

"पंडित जी, मै भी आजकल बहुत परेशान रहता हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनैतिक परिस्थितियों में कितने भयानक परिवर्तन होते, जा रहे हैं जब इसे मैं सोचता हूँ, घबराने लगता हूँ। आज तो हिटलर और तोजो का यह प्रोग्राम मालूम पड़ता है कि दोनों पश्चिम और पूरब में, बीच के देशों को पदाक्रान्त कर, हमारे देश की छाती पर भेंट करेंगे। आज हमारा देश इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि संसार की जनता और संसार के प्रगतिशील लोगों की आँखें उसकी ओर लगी हैं। हम क्या करते हैं इस पर हमारा ही नहीं हमारे साथ ही उस सब जनता का भविष्य भी अटँका है जो हिटलरी बूटों के नीचे कुचली जा रही है अथवा निपनवादियों के कोड़े खा रही है। कलेजा दहल उठता है यह सोचकर कि हम अपनी पराधीनता और परवशता के कारण से ऐसे कठोर समय न अपनी जनता के काम आ सकेंगे, न दूसरे देशोंकी जनता के। मुझे ऐसा लगता है कि आज हमारा इतिहास, हमारी संस्कृति और सभ्यता, हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन, हमारी प्रगतिशीलता, जन्मुक्ति की ओर हमारी निर्बाध प्रयाण यात्रा, हमारा समाज, जन जीवन, सभी खतरे में हैं। पिछले पचीस सालों में हमारी जनता ने, हमारे नौजवान साथियों ने जो कुछ बलिदान किया है लगता है कि वह सब धूल में मिलनेवाला है। आप मुझे कायर मत समझें। मैं डर कर नहीं परिस्थितियों की गंभीरता और भयानकता को ध्यान में रख कर ही यह सब कह रहा हूँ। शासकों की नीति यह है कि इस समय किसी तरह हम उबल जाँय, जोश में आ जाँय और कुछ ऐसी बात कह और कर बैठें जिससे उन्हें खुलकर ताण्डवनृत्य करने का अवसर मिल जाय। वे हमें जनता के बीच देखना नहीं चाहते। हिन्दुस्तान की रक्षा के नाम पर, हिन्दुस्तान के गौरव के नाम पर जनता को संगठित नहीं करने देना चाहते। वे हमें अपने रास्ते से दूर हटाने की तदबीरें सोच रहे हैं। ज़रा सा भी मौका पाने पर वे हमारे ऊपर चील की तरह झपटेंगे और हमें ख़तम करने की कोई भी

कोशिश उठा न रखेंगे। ऐसे मौक़े पर हम क्या करें? क्या किसी नारे अथवा धमकी के नाम पर उन्हें इस तरह झपट पड़ने का मौक़ा दें या संयत होकर, परिस्थिति की भयानकता को समझ कर, आपसी एकता, संगठन और अनुशीलन के सहारे राष्ट्रीय सरकार को उनके हाथों से छीनने की कोशिश करें? कुछ मित्र संघर्ष की बात कर रहे हैं। मैं समझता हूँ इस समय संघर्ष की बात करना ग़लत होगा। संघर्ष के नाम पर हमारे शासक आसानी से हमें कुचल सकते हैं और सारी दुनियाँ में जापानियों का मित्र कहकर हमें बदनाम कर सकते हैं। लेकिन अगर जापान विरोधी संघर्ष को मज़बूत करने, उसे जनप्रिय और सफल बनाने के नाम पर हम राष्ट्रीय सरकार की संयुक्त माँग करें तो हम निश्चय ही सफल होंगे। मैं समझता हूँ कि इस दृष्टि से विचार करने पर शायद आप भी मुझसे सहमत होंगे, क्यों?" विनय ने व्यग्रता से पंडित जी की ओर देखा और सिगरेट जेब से निकाल, उसे जला, कश खींचने लगा।

कुछ देर तक पंडित जी चुपचाप बैठे रहे। उनकी समझ में जैसे नहीं आया कि वे क्या कहें। सोच विचार में लगे रहते थोड़ी देर हो गई तो विनय ने फिर कहा, "पंडित जी, आप कुछ बोलिये। ऐसे शान्त क्यों हो गये?"

"भाई तुम्हारी बात मेरी समझ में तो आती है, लेकिन ऐसा करने के लिये काँग्रेस को अपनी पुरानी परम्पराओं को छोड़ना पड़ेगा। आज तक काँग्रेस युद्ध विरोधी रही है। अब युद्ध की समर्थक वह कैसे बन सकेगी?"

"काँग्रेस युद्ध विरोधी तो कभी भी नहीं रही है। उसने बार बार यह एलान किया है कि अगर मित्रराष्ट्र और ख़ास तौर से ब्रिटेन युद्ध सम्बन्धी अपने मन्तव्यों का एलान कर दे और बता दे कि लड़ाई के बाद हिन्दुस्तान की क्या स्थिति रहेगी तो वह लड़ाई में सक्रिय सहयोग करने के लिये तैयार है। काँग्रेस के प्रस्तावों को ज़रा याद कीजिये।"

"लेकिन ब्रिटेन और मित्रराष्ट्र अपने मन्तव्यों को बतावें तब न!"

"इसके लिए तो उन्हें मजबूर करना पड़ेगा। सरकार को क्या पड़ी है कि वह आपकी भलाई की बातें सोचे ? उससे अधिकार छीनना तो आपको है। हाँ, छीनने की शक्ति आपमें होनी चाहिए। ज़ाहिर है कि वह शक्ति आपमें नहीं आ सकती जब तक कि कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता नहीं हो जाता। इन दोनों में समझौता तब तक नहीं हो सकता जब तक कि आप लीग की माँगों को स्वीकार न कर लें। लीग की माँगें आपको स्वीकार तब तक नहीं होंगी जब तक उनके औचित्य पर आपको विश्वास न हो जाय। इसके लिए आपको अपनी चिन्ताधारा, अपनी परम्परा, अपना दृष्टिकोण सब कुछ बदलना पड़ेगा। लेकिन कॉंग्रेस वालों के लिये ये बातें नई नहीं हैं। कॉंग्रेस ने परिस्थिति के अनुकूल हमेशा अपने में परिवर्तन किया है। उसकी शक्ति, विशालता और महत्व का यही मूल स्रोत है। हमें नये दृष्टि कोणों और नई विचार धाराओं से घबराकर भागना नहीं है। उनका सामना करना है, उन्हें अपनाना है और उन पर हावी हो जाना है। जब तक हम ऐसा नहीं करते हमारा भविष्य ख़तरे में ही रहेगा। लेकिन मुझे विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता और गौरव के नाम पर, उसकी रक्षा के नाम पर हम इतनी ही नहीं इससे बड़ी बड़ी क़ुर्बानियाँ भी कर सकते हैं।"

नसीम कभी पंडित नरोत्तम प्रसाद की ओर देखती, कभी विनय की ओर। पंडित जी चिन्तित थे। ध्यान से विनय की बातें सुनते जाते थे, जैसे उन्हें विनय का बोलना अच्छा लग रहा हो, लेकिन टीका-टिप्पणी, उत्तर-प्रत्युत्तर कुछ भी नहीं देते थे। विनय भी चिन्ता से परेशान था। उसकी हालत ऐसी थी जैसे कि वह सामने का रास्ता साफ़ देख रहा हो और उस पर दौड़ पड़ने के लिये उतावला हो रहा हो लेकिन साथियों में वैसा उत्साह न देख चिन्तित हो रहा हो, खीझ रहा हो। उसकी चिन्ता और व्यग्रता स्पष्ट थी। लेकिन अपनी परेशानियों पर पर्दा डालकर वह पंडित जी को परिस्थिति समझाने की कोशिश करता जा रहा था।

लस्सी आई और पंडित जी, विनय, नसीम तीनों ने पपीते के

क़तरे खाकर लस्सी पिये। घड़ी देखी, ग्यारह बजने को आये थे। पंडित जी ने चलना चाहा तो विनय ने 'फिर कब बातें होंगी' पूछते हुये संतोष का चर्चा छेड़ दिया। उसने कहा, "पंडित जी, आप ही सोचिए, यह समय इधर उधर झगड़े करने का है या अपनी सारी शक्ति बटोर कर अपने को मज़बूत करने का। मैं यह साफ़ देख रहा हूँ कि यह समय मज़दूरों को इसलिए उभाड़ने का नहीं है कि वे आना दो आना रोज़ मज़दूरी बढ़ाने या महँगाई भत्ते के लिए हड़तालें करते फिरें। यही समय है जब उन्हें केवल श्रेणी हितों की बात छोड़कर सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता और शक्ति-संचय में सक्रिय सहयोग देना है। आज देश का कोई भी वर्ग अपने स्वार्थों के लिए अकेले लड़कर कुछ नहीं कर सकता। आज सभी को चाहिए कि अपने को सम्पूर्ण राष्ट्र को एक अंग समझें और अपनी इस हैसियत को समझकर अपना प्रोग्राम बनावें। जो ऐसा नहीं करता वह राष्ट्रीय संकट और उसकी भीषणता को नहीं समझता और वह अपने संकुचित हितों के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों की अवहेलना करता है।"

पंडित जी ने कहा, "विनय, संतोष चाहे जो करे, उसकी मर्ज़ी, लेकिन मुझे ऐसी आशा न थी कि वह इस प्रकार पथ भ्रष्ट हो जायेगा। उसको यह बीमारी अभी हुई है हाल में।"

"बीमारी तो पुरानी है पंडित जी, लेकिन खुली अब अच्छी तरह। ख़ैर, अभी से सही। हमें अब धोखा न होगा। उसके और हमारे बीच जो गहरी खाई बन गई है वह पट नहीं सकती। मैं कह रहा था न कि इस समय हमें राष्ट्र की शक्ति बटोरना चाहिये, वह उसी शक्ति को छिन्न भिन्न करने पर तुला हुआ है। मुझसे शाम को भेंट हुई थी। आखें नीची कर बच निकलना चाहता था। मैं ने ही उसे रोका और बातचीत की। इधर उधर की बातें कर जान बचा कर भाग गया। मुझे पता लगा है कि ये लोग एक गिरोह तैयार कर रहे हैं जो मौक़ा पाते ही ऊधम मचाना शुरू कर देगा। जापानी हमला होने वाला है। इस समय ऊधम मचाओ तो सरकार डर कर स्वराज दे देगी। यह है

इस गिरोह का ख़्याल । बचपने की भी एक सीमा होती है ! बन्दर घुड़की से कहीं स्वराज्य मिलता है ! लेकिन कौन समझाये इन्हें !"

"अच्छी बात है, अब चलता हूँ । आना फिर कभी, और भी बातें होंगी ।"

"जल्दी ही आऊँगा पण्डित जी । काँग्रेस आगे क्या रुख़ अख़्तियार करती है इस पर हमारे देश का भविष्य निर्भर करता है । अगर काँग्रेस ने उतावली में आकर संघर्ष का मार्ग चुना तो बेड़ा ग़र्क़ समझिये । अगर काँग्रेस लीग एकता के आधार पर ज़िम्मेदार केन्द्रीय सरकार की माँग की गई तब तो बाज़ी मार लेंगे हम । देखिये क्या होता है !" सीढ़ी से नीचे उतरते उतरते विनय ने कहा ।

नीचे उतर कर एक रिक्शे पर बैठ पंडित जी चले गये । नसीम और विनय ऊपर आये और अकबर से खाना लाने को कह विनय ने नसीम की ओर देखा ।

"क्यों, क्या बात है !" नसीम ने पूछा ।

"भई एक ग़लती हो गई मुझ से । मतई कन्हई को बहुत परेशान देख मैं अपने को रोक न सका और उनसे एक बात का वायदा कर लिया ।

"बुरा न मानो तो कहूँ । तुमसे पहिले सलाह कर लेनी चाहिये थी मुझे, लेकिन उस वक़्त अपने को रोक सकना भी मुश्किल काम था ।"

"आख़िर बताओगे, क्या हुआ !"

"मैंने वायदा कर लिया कि मैं चार सौ रुपयों का इन्तज़ाम कर दूँगा । उनसे फ़ौरन शादी की तैयारी करने को भी कह दिया । अब फ़िक्र हो गई है कि ये रुपये कहाँ से आयेंगे । कुछ समझ में नहीं आता ।"

"वायदा तो सोच विचार कर करना चाहिये था । पास बुक तो तुमने देखा ही है । रुपयों का इन्तज़ाम ज़रूरी है । दस पाँच का इन्तज़ाम करना होना तो और बात थी ।"

अकबर खाना रख गया और खाना खाते खाते बातें चलती रहीं।

"कैसी बनी है सालन? ठंढी तो हो गई है। अकबर गोश्त अच्छा बनाता है। लेकिन मसाला से तुम परहेज़ करते हो?"

"क्या करूँ भाई? पेट ख़राब रहता है। क़ाबिज़ चीज़ें खाने से डरता हूँ। मसालों से पेट में जलन पैदा हो जाती है। जेल से यह बीमारी ही तो मिली है सौगात की शक्ल में मुझे।" सूखी हँसी कर विनय ने कहा।

"रुपयों का क्या होगा?" नसीम ने याद दिलाई।

विनय चुप हो गया। उदास, चुपचाप खाना खाता रहा। उसकी चुप्पी कुछ समय तक तो नसीम बर्दाश्त करती रही। जब देर होने लगी तो उसने फिर छेड़ा।

"विनय, उदास क्यों हो गये?"

"नहीं उदास नहीं, यों ही सोच रहा था कि क्या करूँ। कोई दिखाई नहीं देता जिससे इतनी जल्दी में इतनी बड़ी रक़म माँगी जा सके।"

"ख़ैर, घबराओ नहीं, हो जायेगा इन्तज़ाम।"

"कैसे?"

"मेरे पास और तो कुछ है नहीं, चूड़ियाँ हैं सोने की, दो तीन अँगूठियां हैं और जंज़ीरों वाला हार। इतने में तो चार सौ रुपये मिल जायेंगे? चाहो बेच डालो, चाहो उन्हें रख कर उधार ले लो। छबिया का ब्याह अच्छी तरह से हो जाय तो मैं समझूँ कि मेरे ये गहने किसी काम आ गये।"

विनय स्तब्ध रह गया। जो कुछ भी गहने नसीम के पास थे उन सब को वह देने को तैयार हो गई। एक सेकेण्ड सोचने के लिये भी नहीं रुकी। विनय को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। नसीम की सहृदयता का उसे काफ़ी अनुभव था। लेकिन वह सोचा करता था कि यह सहृदयता नसीम की कमज़ोरी है। नसीम सब किसी की मदद के लिये इतनी आसानी से इतनी बड़ी क़ुर्बानी कर सकती है

यह देख वह सम्भित रह गया।

नसीम समझ गई विनय के मन की बात। मुस्कराती हुई बोली, "क्यों हज़रत, यह क्या हो गया आपको? यह चुप्पी कैसी?"

"कुछ नहीं, कोई ख़ास बात नहीं" विनय ने टालना चाहा।

"आख़िर कुछ तो।"

"नहीं भाई, नहीं। मुझे कुछ नहीं कहना है। नसीम, मुझे अपने ऊपर दया आती है, पछतावा हो रहा है।"

"क्यों, क्या क़सूर किया तुमने?"

"मैं तुम्हारे इतने नज़दीक रहते हुये भी तुम्हें जान न पाया इसका मुझे दुख है। औरतों के ख़िलाफ़ मेरे दिल में जो धारणायें हैं, उन्होंने मुझे अन्धा बना दिया था। सच कहता हूँ नसीम, मुझे यह आशा नहीं थी कि तुम इतनी जल्दी अपने गहने देने को तैयार हो जाओगी।"

"क्यों?"

"मैंने सुना था कि औरतों को सब से प्यारे अपने गहने होते हैं।"

"यह ठीक है, लेकिन गहनों से भी ज़्यादा प्यारी चीज़ एक और होती है यह शायद तुम्हें नहीं मालूम था।"

"वह क्या?"

"अपने शौहर का भरोसा। अगर मर्द अपनी औरतों पर यक़ीन करें, भरोसा करें, तो औरतें अपनी जान देने को तैयार हो जायें। गहने क्या हैं, दिखावे की चीजें। दूसरों पर अपनी अमीरी या ख़ूबसूरती का रोआब जमाने का ज़रिया। औरत का गहना उसका मर्द है, समझे?" कहती हुई जूठे हाँथ ही एक हल्की सी चपत विनय के गालों पर लगा दी।

विनय सकपका गया। उसके रोयें भरा उठे। उठा और हाँथ धोने चला गया। लौटा तो देखा नसीम बैठी मुस्करा रही है।

"नसीम, तुम इतनी अच्छी क्यों लग रही हो?" विनय ने अपना स्नेह जताया।

"तुम्हारी आँखें ख़ता कर रही हैं।"

"नहीं नसीम, तुम अच्छी लग रही हो।" विनय मंत्र मुग्ध सा नसीम की ओर देखता रह गया। लज्जा से नसीम का मुँह लाल हो गया। उसकी आँखें नीची हो गईं। कानों के टाप्स की चमकीली छाया उसके गालों पर पड़ रही थी। मोम की मूरत सी नसीम मौन बैठी थी, स्थिर, अडोल। और विनय, जैसे उस सौन्दर्य सुधा को, उस रूपराशि को आत्मघात कर लेना चाहता था।

"नावेल पढ़ी आज तुमने?" कुछ देर बाद बातें बदलने के लिये विनय ने पूछा, "कहाँ तक पढ़ गईं?"

"कुछ नहीं, अस्सी पन्नों ही ख़त्म किया है अभी तक।"

"कुछ अच्छा लगा?"

"कुछ क्या सभी कुछ अच्छा लगा। मुझे यह बात बहुत अच्छी लगी 'वह बहुत सीधा, शरीफ़ और खूबसूरत है, इसी लिये तो मैं उससे नफ़रत करती हूँ' क्या कहना है!"

"सच!"

"हाँ, बहुत सीधा, शरीफ़ और ख़ूबसूरत होना अच्छी बातें नहीं हैं। मैं तुमसे भी नफ़रत करना चाहती हूँ, लेकिन क्या करूँ, बस नहीं चलता। चाहती हूँ नफ़रत करना, करने लगती हूँ मुहब्बत। कमाल है भई!"

"क्यों धुआँ छोड़ूं?" सिगरेट जलाते हुये विनय ने कहा, "रोओगी तो नहीं?"

"नहीं रोऊँगी, छोड़ो" कहती हुई नसीम ने विनय से सिगरेट झपट कर एक कश खींच लिया। खाँसियों के मारे आफ़त हो गई बेचारी की!

"कहो, कैसी रही?"

"बहुत अच्छी रही, चलो, हाँ नहीं तो" कहते हुये नसीम को कई ठुसकियाँ आ गईं। नसीम अपनी आँखों का पानी पोछने लगी और विनय खड़ा खड़ा कमरे की छत से अपने धुँये की लड़ी मिलाता रहा। थोड़ी देर में दोनों अपने अपने बिस्तर में सोने चले गये।

७

"मैं एक बात कहने आया था नसीम।"

नसीम चौंक पड़ी। पीछे मुड़कर देखा संतोष खड़ा था अत्यन्त, गंभीर मुद्रा में।

"कहो भाई, आओ, कैसे चले?" उसने पूछा। "आओ बैठो, इतने दिनों के बाद आए तो।"

"मैं आज आख़िरी बार आया हूँ। बस एक बार तुम्हें देख लेने की लालसा थी। विनय मुझसे घृणा करता है। लेकिन तुम्हारा दिल ऐसा नहीं है, यह मैं जानता हूँ। कहना यह था कि आज हमारा तुम्हारा रास्ता एक नहीं है। सियासत में इस तरह के मतभेद हो ही जाया करते हैं। लेकिन हमारे ज़ाती ताल्लुक़ात अच्छे रहें तो क्या बुराई है? मैं तुम्हें विश्वास दिलाने आया था कि मेरे दिल में तुम्हारे लिये वही जगह है। सच तो यह है कि मैं चाहता था कि तुम मेरे दिल की रानी बनी रहो, लेकिन शायद यह मेरी क़िस्मत में लिखा न था।"

नसीम की समझ में कुछ न आया। वह चुप चाप खड़ी संतोष को देखती रह गई और वह कहता गया, "विनय ने मुझे तुम्हारे दिल से निकाल फेंकने की कोशिश की। शायद इसमें वह कामियाब भी रहा बहुत हद तक। लेकिन तुम ख़ुद अगर चाहो तो अब भी मेरी उम्मेदें और मेरे अरमान ज़िन्दा रह सकते हैं। नसीम मैं तुमसे मोहब्बत करता हूँ।"

"हूँ, मोहब्बत करते हो या उसका ढिंढोरा पीटते हो? मोहब्बत कह कह कर नहीं किया जाता। तुम्हारी हरकतें ऐसी हैं जिन्हें मैं कभी पसन्द नहीं कर सकती। मुझे तुमने बहुत तकलीफ़ दी है। विनय को बदनाम कर अपना ग़ुस्सा निकालने की कोशिश में तुमने मुझे कहीं का नहीं रखा। सियासी हलकों में हर आदमी के दिल में तुमने मेरे लिये बदग़ुमानी पैदा कर दी है। शर्म नहीं मालूम पड़ती तुम्हें, किसी भी लड़की के कैरेक्टर पर कीचड़ के उछालने के पहिले यह तो सोच

लेना चाहिये कि इससे उसका क्या हश्र होगा ? संतोष, मैं तुम्हें नफ़रत करने लगी हूँ, तुम्हारी सूरत से मुझे नफ़रत है। तुम चले जाओ यहाँ से।" दृढ़ता और आवेश से नसीम ने कहा।

"हाँ, चला जाऊँगा नसीम, विनय का जादू तुम्हारे सिर पर चढ़ कर बोल रहा है। शराफ़त का व्यवहार भी तुम्हें भूल गया है। अच्छी बात है, अब तुम मेरी सूरत न देखोगी। मैं शायद बहुत दिनों ज़िन्दा न रहूँगा। इस तरह तिलतिल कर मरने से अच्छा समझता हूँ कि मैं वीरों की मौत मरूँ। वह ज़माना आगया है जब हमारी देश भक्ति की परख होगी। राजनैतिक परिस्थितियाँ ऐसा पलटा खा रही हैं कि बहुत जल्दी हम जेलों में और फाँसी के तख़्तों पर दिखाई देंगे। उनकी ओर से चुनौतियाँ आ रही हैं। हमें भी खुल कर खेलना है। कितना अच्छा होगा वह समय जब संतोष फाँसी के तख़्ते पर और विनय तुम्हारे पास दिखाई देगा। मैं आगे वाले ज़माने को साफ़ देख रहा हूँ। और इसी लिए सोचा कि तुमसे मिलकर एक बार अपनी बात कह दूँ। उम्मेद है तुम बुरा न मानोगी।" संतोष बहुत गंभीर था। उसने ध्यान से नसीम की ओर देखा और कमरे में सिर नीचा किये टहलने लगा।

नसीम की परेशानी बढ़ती जा रही थी। आज संतोष की बातें बिल्कुल नपी तुली, गंभीर और अर्थपूर्ण थीं। नसीम का यह अनुभव बिल्कुल नया था। उसका सिर घूमने लगा। कुछ समझ न सकी क्या कहे, क्या करे। 'क्या संतोष सच कह रहा है! क्या ऐसा ही होने वाला है आगे के दिनों में' नसीम सोचती रही।

"क्या सोच रही हो नसीम, मेरी बातें फ़िज़ूल मालूम पड़ती हैं! सोचती हो मैं यों ही बकवास कर रहा हूँ। मैं कैसे तुम्हें यक़ीन दिलाऊँ कि मेरा दिल घबरा रहा है! कमज़ोरी से नहीं। मैं कमज़ोर दिल का आदमी नहीं हूँ। तुम्हें पता है कि विनय का मेरा साथ छूट गया है और अब मैं सच्चे देश सेवकों, सर हथेली पर लेकर चलने वाले जवानों का साथी हो चुका हूँ। हमारा क्या प्रोग्राम होगा, हम क्या करेंगे यह मैं तुम्हें नहीं बता सकता। लेकिन भयानक और कठिन की

घड़ियाँ आरही हैं। मैं उनका सामना करने को तैयार रहता हूँ। मुझे तुम्हारी मदद मिल जाती तो अच्छा था। सियासत में तुम मेरा विरोध करो, लेकिन अपने दिल के एक छोटे से कोने में अगर थोड़ी सी जगह मेरे लिए भी रख सको तो रखो। बड़ा सहारा मिल जायेगा। हम अपनी तैयारियों में व्यस्त हैं और बार बार तुम्हारे पास आने का मौक़ा मुझे न मिलेगा। अगर मुझे यह विश्वास हो जाय कि इतनी छोटी सी मेरी प्रार्थना तुम्हें मंज़ूर है तो मैं सुख से, शान्ति से अपने काम में लगा रहूँगा। बोलो, कुछ कहो।"

नसीम ने इतनी देर में निश्चय कर लिया था। संभलकर बोली, "संतोष, तुम अपनी तरह से दुरुस्त कह रहे हो। लेकिन मुझे अफ़सोस है कि मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर सकती। जब तक तुम हम लोगों के साथ काम करते थे, बात दूसरी थी। हम तुम्हारी सभी बातें बर्दाश्त करते थे। लेकिन इस वख्त जब कि खुल्लमखुल्ला तुम हम लोगों से दुश्मनी कर रहे हो और हम लोगों के ख़्याल में देश की क़िस्मत के साथ खेल कर रहे हो हमारी किसी भी तरह की हमदर्दी तुम्हारे साथ नहीं हो सकती। अपने रास्ते पर चलने की तुम्हें पूरी आज़ादी है। मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहती, रोक सकती भी नहीं। रही आपसी नाते और मोहब्बत की बात। मोहब्बत कहने से नहीं होती, करने से होती। विनय से दुश्मनी करके तुम मेरे दिल में जगह पाने की उम्मेद छोड़ दो। विनय मेरा गुरु है, साथी है, रहबर है। तुम आज उसे अपना दुश्मन, ग़द्दार सब कुछ समझते हो। एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं?"

"तो मैं जाऊँ?"

"हाँ, जाओ, अब मेरे पास कभी मत आना। मुझसे किसी तरह की उम्मेद मत रखना। समझ लो कि पहिले वाली तुम्हारी नसीम अब नहीं रही। उसकी हस्ती मिट चुकी है। आज की नसीम के दिल में अब तुम्हारे लिये बिल्कुल कोई जगह नहीं है।"

"अच्छा, जाता हूँ। लेकिन इतना कहे जाता हूँ, तुम्हें यह शोभा

नहीं देता। हम हमेशा से यह मानते रहे हैं कि औरतों का दिल मुलायम होता है। लाख कोशिश करने पर भी वह पत्थर की तरह कड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारी बातों से यह पता चलता है कि अब तुम्हारा दिल पत्थर का हो गया है। उसकी सहज स्वाभाविक कोमलता ख़त्म हो गयी है। यह अच्छा नहीं है। ख़ैर, अब न आऊँगा तुम्हारे पास। अगर भूले भटके मेरी याद आ ही जाय तो मुझे भूल जाने की कोशिश करना। नमस्ते!" संतोष उठा और सिर नीचा किए धीरे धीरे सीढ़ी के नीचे उतर गया।

नसीम का मुँह उतर गया था। गला सूख गया था। आँखों में आँसू नहीं था। बहुत देर तक चुप चाप जाने क्या सोचती रही! फिर कमरे में टहलने लगी। बारजे पर आ वह बाहर की ओर ग़ौर से देखने लगी। संतोष बहुत दूर जा चुका था। इसलिये दिखाई न दिया। उसकी परेशानी बढ़ती गई। 'क्या उसने इस प्रकार दो टूक और कठोर बातें कहकर अच्छा किया? संतोष का दिल नहीं दुखाना चाहिये था। संतोष आज हमसे अलग है, वह दूसरे लोगों के साथ है तो क्या हुआ? मुझे ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिये था। साफ़ बातें कहने के और भी तो ढंग होते हैं। अपनी इन्हीं बातों को मैं समझाकर ज़्यादा मुलामियत से कह सकती थी। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। शायद विनय को मेरा यह ढंग पसन्द नहीं आयेगा। क्या हो गया था मुझे उस वक़्त!' नसीम आराम कुर्सी पर पड़ी बहुत देर तक यही सोचती रही। 'संतोष आख़िर क्यों आया मेरे पास? उसे मुझसे कुछ उम्मेद थी। वह अब भी सोचता था कि मेरे दिल में उसके लिये जगह बाक़ी है। मेरे दिल में उसके लिये जगह कभी भी नहीं थी। मेरी बातों और व्यवहार से उसे ग़लतफ़हमी हो गई तो मैं क्या करूँ? मैंने उसे अपने साथ मिल कर सियासी काम करने वाला एक साथी के सेवाय और कभी कुछ नहीं समझा। लेकिन वह समझता था कि मैं उसे प्यार करती हूँ। उसकी यही कमज़ोरी उसे आज इस हालत में भी यहाँ खींच लाई। जब मैं इतना जानती हूँ तो मुझे ढंग से पेश आना

चाहिये था उसके साथ। उहँ, कुछ समझ में नहीं आता! आदमी अपनी कमज़ोरियों का .ग़ुलाम होता है न" नसीम सोचती गई।

आराम कुर्सी पर पड़े पड़े उसे नींद सी आने लगी। ऊँघ ही रही थी कि मदन ने आवाज़ दी। वह चौंक उठी।

"कहिये, इस समय सो रही हैं?" भीतर आ, मुस्कराते हुये मदन ने पूछा।

"ज़रा यों ही ऊँघ रही थी, बैठी बैठी। रात को देर तक जग गई। एक किताब पढ़ रही थी। इसलिये नींद पूरी नहीं हो पाई। तुम्हारा क्या हालचाल है? अच्छे तो हो?"

"जी हाँ, सब ठीक है। आपको नवेद देने आया था। परसों बारात में चलना होगा।" पुलक और हलके कम्पन के साथ मदन ने कहा।

"अच्छा परसों है तुम्हारी शादी! ज़रूर हाज़िर होऊँगी। लेकिन मुझे तो घर वालों के साथ होना चाहिये। तुम्हारी तरफ़ से कैसे जा सकती हूँ मैं?" मुस्कराती हुई नसीम ने कहा।

"लेकिन बुलाने तो पहिले मैं आया। जो पहिले बुलावे उसके यहाँ पहिले जाना चाहिये। हक़ तो मेरा ही है पहिला।"

"हक़ जमाना शुरू हो गया?" नसीम ने मज़ाक किया।

"अपना हक़ कभी कोई छोड़ता है? अपने मौक़े पर कभी कोई नहीं चूकता। समझीं आप? मैं पहिले बुलाने आया इसलिये मेरा हक़ पहिला है। वैसे जैसी आपकी मर्ज़ी" कहते हुये मदन ने सिर नीचा कर लिया। वह प्रसन्न था। शायद कुछ झेंप भी रहा था। दूसरे किसी को निमन्त्रण देने वह .ख़ुद थोड़े ही जाता। नसीम और विनय तो साथ में काम करने वाले साथी थे। उनसे क्या भेद, क्या दुराव छिपाव? इसीलिये .ख़ुद बुलाने चला आया था। लेकिन लाज तो लगती ही है। चाहे अपना निकटतम साथी ही क्यों न हो। शादी की बात करने में मज़ा भी आता है, शर्म भी मालूम पड़ती है।

"कुछ झेंप रहे हो क्या मदन? सिर ऊपर करो, ज़रा तुम्हें देखूँ

कैसे लग रहे हो'', नसीम ने बात आगे बढ़ाई, "आज तुम्हारे चेहरे पर अजब रौनक़ है। शादी के मौक़े पर ऐसा हो ही जाया करता है, क्यों ?"

"आप भी यह रौनक़ चाहती हैं ? लेकिन आपके चेहरे पर तो चौबीस घन्टे रौनक़ रहती है। विनय भैया कहाँ हैं ?" मदन का मज़ाक़ गहरा, फबता हुआ और चिपकने वाला था।

नसीम को झेंपना पड़ा। अपनी सादगी और सिधाई में मदन पते की बात कह गया। मज़ाक में जिस सचाई का पुट था उससे नसीम का रोम रोम पुलक उठा, शरीर सिहर उठा इस छोर से उस छोर तक। क्षण भर के लिये तन्मय हो अपने वैवाहिक जीवन के आनन्द को सोचने लगी। कब उसकी शादी होगी ? अभी वह विनय को साथी और प्रेमी के रूप में देखती थी। जल्दी ही वह उसे पति के रूप में देखना चाहती थी, जिससे उसके चरणों में वह अपना रूप, यौवन, जीवन सब कुछ अर्पित कर सके। छबिया कितनी भाग्यवान है ! परसों ही वह अपने अरमानों, अपनी ख़्वाहिशों की मूरत मदन को हमेशा के लिये अपना बना लेगी। परसों ही छबिया वह चीज़ पा जायेगी जिसके लिये उसका दिल इस वख़्त बाँसों उछलता होगा। छबिया और मदन कितनी अच्छी जोड़ी है ! देहात की रहने वाली यह सीधी सादी लड़की क्या जानती है कि उसको, हमेशा साथ रहने वाला, हमेशा निभानेवाला, एक ऐसा साथी मिल रहा है जो सबका प्यारा है, जिसकी सब इज़्ज़त और क़द्र करते हैं, जो गाँव वालों की आँखों की पुतली है ! छबिया तू सचमुच भाग्यवान है !'

मदन ने फिर टोका, "कहिये क्या निश्चय किया ? आप चलेंगी न मेरी बारात में ? विनय भैया उधर से हो जायेंगे।"

"विनय चाहे जिधर हो जाँय, मुझे क्या करना है। लेकिन मेरा छबिया की ओर होना ही ठीक है।" नसीम ने दोहराया।

"यह ज़ुलुम हो रहा है। आप भी पच्छपात करती हैं"

"यह लो, विनय आ गये, अब इनसे तय कर लो सब बातें" कहती

हुई नसीम उठी और सीढ़ी की ओर बढ़ी। विनय .खुशी से फूला न समाता, हौले हौले चढ़ा चला रहा था।

"कहो, इतने .खुश नज़र आ रहे हो। बात क्या है?"

"परसों छबिया की शादी है, चलना है शामिल होने, मतई चौधरी ने बुलाया है, अभी रास्ते में मिले थे" कहते कहते विनय कमरे में दाख़िल हो गया। सामने मदन को देखा तो सहम गया।

"तो भैया, उसी ओर जाओगे दोनों जनें, क्यों? यही न्याव है?" मदन चूका नहीं, कह ही बैठा।

"नहीं भाई, मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो संदेशा ही दे रहा था इन्हें।" विनय ने सँभालने की कोशिश की।

"तो मेरा भी सन्देशा सुन लो। आप दोनों को मेरी बारात में सामिल होना होगा, चाहे जो हो जाय!" मदन ने ज़ोर दिया।

"लेकिन" मुस्कराते हुये नसीम ने कहा, "पहिले मतई चौधरी ने इन्हें बुलाया है। इसलिये इन्हें मतई के यहाँ जाकर घराती बनना चाहिये।"

मदन का उत्साह ठंढा पड़ने लगा। हल्की सी उदासी की एक रेखा दौड़ गई उसके मुँह पर। विनय ने बीच बिचाव किया, "क्या बात है नसीम, यह पहिले पीछे बुलाने की क्या बात है?"

"बात कुछ नहीं है। मदन ने कहा कि हमें उनके साथ बाराती बनना चाहिये। जब मैंने छबिया का सवाल उठाया और कहा कि मुझे छबिया के तरफ़ होना चाहिये तो इन्होंने कहा कि जो पहले बुलावे उसका हक पहिला है। इसी बात की याद दिलाई है मैंने मदन को," ज़रा सी गंभीरता का बनावटी पुट देते हुये नसीम ने कहा।

"अच्छा, यह बात है। .खैर, समझौता कर लो। मदन ने पहिले तुम्हें बुलाया है तो तुम मदन की तरफ़ हो जाओ। मतई चौधरी ने पहिले मुझे बुलाया तो मैं छबिया की ओर हो जाऊँ, क्यों ठीक है यह फ़ैसला?" हँसते हुये विनय ने पहिले नसीम फिर मदन की ओर देखा और सिगरेट निकाल, मदन की ओर बढ़ा बोला, 'लो यार, पिओ सिग-

रेट। इन औरतों से जीतना बड़ा मुश्किल काम है।"

सिगरेट जला, खुलकर मुस्कराते हुये मदन ने कहा, "भैया, यहाँ तो सृष्टि उल्टी ही दिखाई देती है। तुम उधर से और ये मेरी ओर से वाह!"

"कलयुग है मदन, कलयुग, आज कल औरतों का ही राज है न, अब ये मर्दों की जगह ले रही हैं।"

"और मर्द! औरतों की जगह, क्यों भैया? तब तो आप और मैं दोनों की ख़ैरियत नहीं है।" मदन ने फबती कसी।

नसीम, विनय, मदन तीनों ज़ोरों से खिल खिला पड़े।

"इन्तज़ाम तो सब ठीक हो चुका है न?" विनय ने मदन से पूछा।

"हाँ, भैया, इन्तज़ाम तो हो चुका है। थोड़ा सा काम रह गया है वह भी आज कल में हो जायेगा।"

"और उधर का? मतई चौधरी कुछ कह रहे थे?" नसीम ने विनय की ओर देखा।

"उधर भी क़रीब क़रीब हो ही गया है। मगर...।"

"मगर क्या?"

"सब कुछ ठीक ठिकाने से हो जाय तभी समझो।"

"क्यों क्या बात है? कुछ अड़चन फिर पड़ी क्या?"

"नहीं अड़चन नहीं, नत्थू ही इधर की उधर लगा रहा है। शायद कुछ बिरादरी वालों को भड़काये कि वे शादी में गड़बड़ी करें। नत्थू उस दिन पिट गया, अब वह खार खाये बैठा है। जमुना प्रसाद ने दरी गलीचे देने से इन्कार कर दिया है और नत्थू की पूरी मदद करने का वायदा किया है।"

"बिरादरी वाले क्या अड़चन डालेंगे?"

"यही, शराब ताड़ी माँगेंगे। वह मतई चाचा देने के नहीं। इसी पर झगड़ा होगा। उन्हें तो कोई न कोई बहाना चाहिये।"

"ऐसे लोगों को बुलाया ही न जाय तो।" नसीम ने पूछा।

"यह नहीं हो सकता। उनकी शादी बारात में हमेशा ये लोग

शामिल होते रहे हैं। अब उनको कैसे न बुलायेंगे ? बुलाना तो पड़ेगा ही उन्हें। हाँ ऐसे ढंग से काम लेना चाहिये कि झगड़ा न होने पाये। मतई को मैंने सहेज तो दिया है। चौधरी राम दीन से कुछ कहना ही नहीं है। दरवाज़े पर पंडित जी रहेंगे ही। होनी तो न चाहिये कुछ गड़बड़ी।" विनय ने कहा।

नसीम ने गंभीर हो मदन की ओर देखा। मदन का चेहरा तमतमा गया था, वह जैसे अपने को रोकने में बड़ी शक्ति लगा रहा था। नसीम ने कहा, "कुछ परेशान हो रहे हो मदन ?"

"नहीं, परेशानी की तो कोई बात नहीं है। एक बार इन खूसटों को जमीन चटा देने का मन होता है। न आयेंगे बारात में, न आवें, चूल्हे भाड़ में जाँय। उनकी चिरौरी कौन करने जा रहा है ? लेकिन आकर पाजीपन करेंगे, बारात और शादी की सोभा बिगाड़ने की कोसिस करेंगे यह सोच कर खून खौलने लगता है। भैया, क्या बताऊँ, तुमसे डरता हूँ, वरना इनकी गुन्डई का मजा चखा देता इन्हें. कुल बुजुरगी और ढोंग का पता लग जाता। बेइमान, ससुरे।"

"जाने भी दो मदन, ऐसे ही काम चलता है दुनिया का। सब्र का फल मीठा होता है। वक़्त आयेगा तो इनसे बदला लिया ही जायेगा। यह मौक़ा चुप ही रहने का है। अब जाओ तुम, काम काज देखो, घबराना नहीं, सब कुछ कुशल पूर्वक हो जायेगा। पंडित जी से मिलते रहना" विनय ने समझाया।

"अच्छी बात है, मैं जाता हूँ।" कह कर मदन उठ कर सीढ़ी की ओर चला, और नसीम तथा विनय खाना खाने की तैयारी करने लगे।

× × ×

आज छबिया की शादी है। बारात आने का समय हो गया है। दूर बाजे की आवाज़ सुनाई दे रही है। मतई और कन्हई दोनों ही बदहवास इधर से उधर दौड़ रहे हैं। मेहमानों और बिरादरी वालों के स्वागत-सत्कार हुका पानी का प्रबन्ध, उठने-बैठने, जलपान करने का इन्तज़ाम, भीतर बाहर बड़ी दौड़ धूप का मौक़ा है। मतई कुछ थका-

थट और हर्षोल्लास से विह्वल हो संभल संभल कर चलते हैं। जवानों की सी ताकत जैसे आ गई है बदन में। सबका झुक कर अभिवादन करना, सब को नम्रता पूर्वक बैठने के लिये कहना, बात बात में भगवान को याद करना, यही काम था मतई चौधरी का। 'आज उनकी ज़िन्दगी में पहिला और अन्यतम अवसर आया था अपने अरमानों को निकालने का, अपनी आशाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं को मूर्त रूप देने का। उनकी छबिया आज ब्याही जायेगी। क्या कहना है आज उनके हर्ष, गर्व और अभिमान का! छोटी सी छबिया, उसे गोद में खेलाया, पाल पोस कर बड़ा किया, जो कुछ बन पड़ा उसके लिये किया और आज कन्यादान कर जनम जनम के लिये उससे उऋण हो जायेंगे। भगवान की लीला अपरम्पार है, उन्हीं की महिमा है कि आज यह शुभ घड़ी आई। अब छबिया घर बार वाली हो जायेगी। अच्छा वर मिला है, गाँव भर में सबसे अच्छा, हृष्ट-पुष्ट, चरित्रवान, बहादुर, बात का धनी, हिम्मत का पूरा, सब की सेवा करने वाला, रोबीला, तन्दुरुस्त कौन सा गुण नहीं है उसमें, कौन सी कमी है उसमें! और घर बार कितना अच्छा मिला, चौधरी रामदीन को आसपास दस पाँच गाँव में कौन नहीं जानता? उनके जैसा आदमी होना मुश्किल है। दूसरों को भी अपना समझते हैं। दूसरों के लिये अपना सब कुछ देने मिटाने के लिये तैयार रहते हैं। परोपकारी हैं, पाप से डरते हैं, भगवान का ध्यान करते हैं। अब छबिया अच्छा वर, अच्छा घर पाकर अपनी जिन्दगी की सुख की घड़ियाँ बितायेगी। क्या किया हम लोगों ने उसके लिये कभी? सेवाय कष्ट के मिला क्या उसे इस घर में? अब मदन और चौधरी के घर में अच्छा खाना मिलेगा, अच्छा वसन मिलेगा। उसका मान-जान होगा, उसके रूप-गुण चाल-ढाल सब की कदर होगी। सभी रीझ जायेंगे उसके ऊपर, लट्टू हो जायेंगे, उसे सुख आराम पहुँचाने के लिये सभी कोशिश करेंगे। अब छबिया का भाग्य खुला है। अब वह अपने अच्छे दिन देखेगी—जिन्दगी का सुख भोगेगी।' इसी प्रकार की बातें सोचते कभी आनन्द

गद्गद्, हर्ष विह्वल हो उठते और कभी गम्भीर हो जाते, कभी पुलक उठते, कभी व्यापक हँसी सी हँसने का मुद्रा बनाते अपने काम में लगे थे मतई चौधरी !

कन्हई की ख़ुशी का ठिकाना न था। मन में जाने कैसे कैसे भाव आते, चले जाते। छबिया अकेली दुलारी लड़की थी, दो भाइयों के बीच। कन्हई बाप थे तो क्या, भैया के आगे वे अपना हक जताना नहीं चाहते थे। कन्यादान भी तो भैया ही करेंगे। जो काम हो भैया से पूछना, भैया का हुकुम लेना, उनके इशारे पर नाचना यही काम था कन्हई का। भीतर बाहर एक किये हुये थे। भीतर जाते तो छबिया की माँ ठुनकियाँ देती, "बड़े खुस हो क्या, आज बेटी का ब्याह है न ? जरा इधर देखो।" तो, "भई, इस बखत तङ्ग न करो, छेड़खानी के लिये समय नहीं है, बड़ा काम है" कह कर कन्हई मुस्करा देते और अपने कामों में लग जाते। बाहर निकलते ही मेहमान, रिश्तेदार काम करने के लिये पूछते हुये जब कहते, "क्या वर ढूँढा है कन्हई, कितना अच्छा लड़का है," तो कन्हई निहाल हो जाते। "सब पञ्चों की दुआ है, भगवान की किरपा है, छबिया का भाग्य है," आदि कहते, कहते वह सब से हिलते-मिलते बातें करते चले जाते।

छबिया की माँ का क्या कहना है। इन्द्रानी सी, पटरानी सी अपने सारे धराऊ गहने, बिछिया से बेसर तक लादे, आँखों में काजल लगाये, माँग में चौड़ी सी लाल लकीर बनाये, इधर से उधर छम छम करती चलती तो आस पास की औरतें कहती, "भगवान की बड़ी कृपा है। आज इसके भाग्य खुल गये।" यथोचित उत्तर देती, इधर उधर काम करती जाती थी। गाँव की देवरानियाँ छेड़ छाड़ भी करतीं, "भौजी, आज तो तुम्हारी जवानी फिर पलट आई है। देखो, बियाह बरात का मौका है, सँभल के रहना, तरह तरह के लोग आते रहते हैं ऐसे मौके पर," तो, "अरे, अपने भैया को सँभालो, वह कमजोर होंगे तो सहजोर लोग बाजी मार ही ले जायेंगे।" कहती, मुस्कराती, हँसती, उतफुल्लवदना, छबिया की माँ अपने को सँभाल न पाती।

और छबिया, अपनी कोठरी में पड़ी दूर से आती हुई बाजों की आवाज़ ध्यान से सुन रही थी। कभी वह चौंक पड़ती, कभी शाँत हो कुछ सोचने लगती, कभी बड़ी ज़ोर की रुलाई आती, कभी अट्टहास करने की इच्छा होती। बाजे की एक एक ताल पर उसके शरीर की माँस पिन्डलियाँ नाचने लगतीं। आवाज़ ज्यों ज्यों नज़दीक आती उसके दिल की धड़कन बढ़ती जाती, दिल उछलने लगता बाँसों! वह अपने को क्या सँभाल पाती, क्या रोक पाती! सखी सहेलियाँ छेड़तीं, "कहो, कैसा लग रहा है? दिल में क्या क्या हो रहा है? आ रहे हैं प्रीतम मौर पहिने, जामा जोड़ा पहिने, शान बान से, धीरे धीरे!" तो छबिया उनके मुँह पर हाथ रख ज़ोरों से दबा उनकी आवाज़ बन्द कर देना चाहती। मन कहता, वह सखियाँ कहे जाँय ऐसी बातें, एक बार, दो बार, सौ बार लेकिन लाज भी तो लगती थी। इसीलिये मना करती, मीठी मीठी डाँट भी सुना देती, "क्या बकती है, पगली तो नहो हो गई है, चुप नहीं रहा जाता।" और सखियाँ गंभीर मुद्रा बना विद्रूप की सी हँसी हँस कहतीं, "अच्छा, अभी तो अकेली हो तब यह हाल है, जब दो हो जाओगी तो मिजाज ही नहीं मिलेंगे" तो वह सहमकर रह जाती और सखियाँ खिल-खिला कर हँस पड़तीं।

नसीम घर के भीतर पहुँची तो हंगामा मच गया। 'यह कौन हैं' की प्रश्नवाचक रेखा सब की आँखों, ओठों पर ज़ाहिर हो रही थी। छबिया की माँ ने सबको बताया, "ये हमारी नेता हैं, काँग्रेसिहा हैं, गाँव की मदद करती हैं, छबिया को असीस देने आई हैं।" अपना सब काम छोड़ औरतें कुछ क्षण तक उसी सौन्दर्य राशि, ज़मीन के के चाँद की ओर देखती रह गईं। केहुनी पर ठोढ़ी को सहारा दिये नई नवेलियाँ, आँखों पर हाँथ का ओट दिए बुढ़ियाँ और कौतूहल वश तितली से फुदकते बच्चे बच्चियाँ सभी की आँखों में नसीम नाच गई। सभी जैसे उस सौंदर्य सुधा को छक कर पी जाना चाहती थीं। मौन दर्शकों की इस टोली में छबिया को न पा नसीम ने आहिस्ता से पूछा, "कहाँ है हमारी छबी?"

सखियाँ नसीम को छबिया की कोठरी में ले गईं। दोनों आमने सामने बैठीं तो सखियाँ देखती ही रह गईं। नसीम आज सिल्क की धानी साड़ी और सफ़ेद फूलो वाली लाल ज़मीन की ब्लाउज पहिने हुये थी। माथे पर लाल टीका था, भौंहों के ठीक बीच। हाँथ में छोटा सा बटुआ, एक रुमाल में बँधा हुआ कुछ और। छबिया के पाँव रँगे हुये थे। बदन पर कितने ही गहने। जैसे वह उनके बोझ से दबी जा रही थी। सिर नीचा किये शर्म से धँसी जा रही थी ज़मीन में। पीली साड़ी और लाल चदरा। आज वाली छबिया पहिले जैसी भोली, भाली, नखल, अस्थिर न थी। आज उसकी आँखों में मद था, वाणी बोझिल थी, हाँथ पाँव की गति में स्थिरता अधिक थी, चंचलता कम। धीरे से नमस्ते किया और पैर के अंगूठे के नाख़न से ज़मीन कुरेदने लगी आँखें नीची करके।

"कहो, छबीरानी, कैसा लग रहा है? यह आवाज़ सुन रही हो?" कहती हुई नसीम ने रुमाल से लाल गुलाब के फूलों वाली माला निकाल उसके गले में डाल दिया।

छबिया कुछ बोल न सकी। जी में आया सवाल के जवाब में 'हाँ' या ऐसा ही कुछ और कह दे। लेकिन ज़बान उभरे तब न, ओंठ खुले तब न।

"क्यों लाज लगती है, अब न बोलोगी मुझसे? हाँ, भई क्यों न हो," चिढ़ाने के लिये नसीम ने कहा।

छबिया के मन में गुदगुदी हो रही थी। कहना चाहती थी, सुनना चाहती थी। लेकिन उससे कुछ भी हो नहीं पा रहा था। सामने नसीम, उधर दूर से नज़दीक आती हुई बाजों की आवाज़। मन में, औरों की धड़कन, ओंठ काँप काँप रह जाते। आँखों में आँसू भरभरा आते, प्रेम के, प्रणय के, स्नेह के, स्मृति के। उसके जीवन का यह सन्धि काल, यह संक्रान्ति बेला उसके हृदय को मथ रही थी। चारों तरफ़ क्या हो रहा है कुछ समझ में नहीं आता था। लेकिन कुछ हो रहा था ज़रूर!

और नसीम छबिया की मनोदशा, उसके भावों और भावनाओं

को ख़ूब समझ रही थी। बाजे की आवाज़ नज़दीक आती जा रही थी। शोर गुल बढ़ता जा रहा था। बच्चे किलकारियाँ मारते तालियाँ पीटते इधर उधर दौड़ रहे थे।

"अच्छा, अब मैं चलती हूँ, बाहर बारात आ पहुँचा चाहती है। उसका स्वागत कर लूँ।" कह नसीम उठने को हुई कि धीरे से हाँथ बढ़ा, उसकी साड़ी का छोर पकड़, रुआसी आवाज़ में छबिया ने कहा, "अभी आप रुक जाइये, मुझे न जाने कैसा लग रहा है।" उसकी आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी।

"यह क्या करती हो, यह रोने का समय है। अरे भाई, यही तो हँसने का वक़्त है! अच्छा, ये ख़ुशी के आँसू हैं।" कहती हुई नसीम कमरे के बाहर हो गई। छबिया अपने घुटनों के बीच अपना मुँह छिपा चुपचाप बैठी रह गई। और बाहर बाजों की आवाज़ बिल्कुल पास सुनाई पड़ने लगी। शहनाई, तुरुही और न जाने क्या क्या!

बारात घर के सामने आगई। घर की औरतें मंगल कलश हाथों में लिये मंगल गान गा रही थीं। उनके बीच में नसीम चुपचाप हाँथ बाँधे खड़ी, अचल, अडिग मूरत सी। दरवाज़े के सामने चौका पूरा हुआ था। मिट्टी का रंगा हुआ घड़ा और पूजन की दूसरी सामग्रियाँ रखी हुई थीं। नसीम कभी नीचे चौके को देखती, कभी उत्फुल्ल उतावले घरातियों को। लेकिन उसका ध्यान बार बार बारात वालों की ओर खिंच जाता। उसकी आँखें मौर पहिने, जामा जोड़ा में ढँके मदन, उसके क़दम से क़दम मिलाकर धीरे धीरे चलने वाला, सफ़ेद खद्दर के कुर्ते धोती टोपी में चलने वाला विनय था। उसके बग़ल में पंडित नरोत्तम प्रसाद थे—शान्त, स्थिर, गम्भीर! रामदीन, लाला राम लाल वग़ैरह मदन के बायें ओर थे। बारात अपनी परम्परागत मंथर गति से चली आरही थी।

नसीम के मन में क्या हो रहा था यह कहा नहीं जा सकता। शायद उसे भी कुछ नहीं मालूम पड़ रहा था। लेकिन उसे यह सब कुछ अच्छा लग रहा था इसमें कोई शक नहीं। विनय मदन के साथ धीरे

धीरे बढ़ता चला आ रहा था जैसे किनारे को चूमने के लिये लहरियाँ आती हैं। नसीम एक टक उनकी ओर देखती रही।

घरातियों ने बारातियों का स्वागत किया और द्वाराचार का काम आरम्भ हुआ। आधा घंटे बाद द्वाराचार समाप्त हुआ। सब लोग ज़मीन में बिछी दरियों और पास में पड़े तख़्तों, चारपाइयों पर जा डटे। आपस में बात चीत शुरू हुई। छबिया और मदन की शादी से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और हिटलर तक कोई भी समस्या या विषय बचा नहीं जिस पर ज्ञानगरिमापूर्ण सम्मतियाँ इन लोगों ने न प्रदान की हों। शादी ब्याह के मौक़ों पर जितनी ज़िम्मेदारी और गंभीरता की आशा की जा सकती है उसी के अनुसार बातें हो रही थीं। मदन तो नौशा था, लोगों से घिरा हुआ। सब की आँखें उसी की ओर गड़ी हुई थीं! आज की महफ़िल उसी के दम से रौनक़ थी।

पंडित जी मदन को लेकर दूर तख़्ते पर पेड़ के नीचे चले। सोचा था कि घंटे दो घंटे बाद शादी की रस्म शुरू हो जाय तो घर लौटेंगे। बात चीत शुरू हुई थी कि संतोष भी आ पहुँचा और उसी तख़्ते पर आ धमका। विनय और पंडित जी की आज़ादी तो बहुत हद तक कम हो गई लेकिन एक तरह से अच्छा ही हुआ। तीनों व्यक्ति एक साथ इकट्ठे तो हुये इतने दिनों बाद।

"आख़िर मदन की शादी हो गई। अब तुम लोग भी अपनी अपनी शादी कर डालो भई," पंडित जी ने मुस्कराते हुये पहिले संतोष फिर विनय की ओर देखा।

"जी हाँ, कर तो लेना चाहिये। कहते आप सर्वथा उचित बात हैं। मेरी राय आप से मिलती है, बिल्कुल, लेकिन कोई लड़की जँचती नहीं।" विनय ने हँस कर कहा।

"मिलती नहीं, या खोजते नहीं!" संतोष ने पूछा।

"यह भी ठीक है। लेकिन खोजने की फ़ुर्सत कहाँ मिलती है? दिन भर दौड़ धूप में लगा रहता हूँ, रात को थक कर सो जाता हूँ।" विनय ने कहा।

"जी हाँ, आप ठीक फ़र्माते हैं। आप को कहाँ फ़ुर्सत है ऐसे कामों के बारे में सोचने के लिए......और ज़रूरत भी क्या है?"

"क्यों? क्या मतलब है तुम्हारा?" पंडित चौंके। संतोष सहम गया।

"तन, मन, धन तो इन्होंने मज़दूरों, किसानों की सेवा पर वार दिया है। अब शादी किसके लिये करें?" टाल दिया संतोष ने।

लेकिन पंडित जी और विनय दोनों संतोष की बातों को समझ गये। बात बढ़ने के पहले ही पंडित जी ने छेड़ दिया, "आज का अख़बार देखा?"

"जी हाँ, देखा तो। वर्धा से तो गरम खबरें आ रही हैं।" संतोष ने कहा, "क्या करने वाले हैं गाँधी जी!"

"वही जो तुम चाहते हो। जिसके लिये तुम्हारे हाँथ पाँव रोके नहीं रुकते।" विनय ने संतोष की ओर देखा, "होगा कुछ युग परिवर्तनकारी क्रान्तिकारी प्रोग्राम!"

"सारी क्रान्ति का ठीका तो तुम ने और तुम्हारी पार्टी ने ले लिया है, क्यों?" संतोष तमतमा उठा।

"इतनी जल्दी नाराज़ हो गये। अभी तो बातें शुरू ही हुई हैं। इब्तदा में ही यह हाल, तब तो भगवान ही बेड़ा पार लगावें।"

"पंडित जी मैं यहाँ नहीं बैठ सकता, विनय ज़हर उगलने से बाज़ नहीं आयेंगे और मुझे से बर्दाश्त नहीं होगा। क्या फ़ायदा मेरे यहाँ रहने से?" संतोष ने क्रोध से विनय की ओर देखा और फिर पंडित जी की ओर।

"मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों ठंढे पानी से अपना सिर धो डालो।" फैसला किया पंडित जी ने।

"वाह, गर्म विनय हों, सिर मैं धोऊँ! इन्हीं को कहिये, अपने दुलारे को।" कह कर संतोष उठने को हुआ। लेकिन पंडित जी ने रोक लिया।

"अच्छी बात है, जाने दो इन बातों को। बताओ, तुम्हें शादी का

यह ढंग पसन्द है या नहीं''

"पसन्द तो यह हो सकता है लेकिन इसके मूल में रहने वाले सौन्दर्य और शील का अवशेष भी बाक़ी नहीं रहा अब। आज का शादी ब्याह का ढँग पुराने ढंग की स्मृति मात्र है। इसलिये इस से चिपटे रहने में कोई बुद्धिमानी तो नहीं मालूम पड़ती।" संतोष ने उत्तर दिया।

पंडित जी ने विनय की ओर देखा तो उसने भी कहा, "मैं संतोष की इस बात से सहमत हूँ। प्राचीनकाल में स्वयंवर की प्रथा थी। लेकिन वर्ण व्यवस्था के चौखटे में चूर होकर भारतीय समाज ज्यों ज्यों विकृत होने लगा त्यों त्यों वह रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों, मिथ्या धारणाओं से अधिक से अधिक चिपकने की कोशिश करने लगा। आज कल की विवाह सम्बन्धी यह प्रथा रूढ़िग्रस्त और अन्यायपूर्ण है। इसलिये इसके स्थान पर प्राचीनकाल के स्वयंवर के परिष्कृत रूप आजके सिविल विवाहों को मैं ज़्यादा अच्छा मानता हूँ। इसलिये कि उसमें पुरुषों की भाँति स्त्रियों को समान अधिकार रहता है। कोई भी वह विवाह प्रथा जिसमें मानवता के आधे अंग को ग़ुलाम, लुञ्जपुञ्ज और परमुखापेक्षी बनाना आवश्यक हो मुझे मान्य नहीं। आप जानते ही हैं मैं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों और स्त्रियों को समान अधिकार देने के पक्ष में हूँ। पुरुष और स्त्री सामाजिक रथ के दो पहिये हैं। एक भी कमज़ोर हुई या टूटी तो इस रथ का चलना दूभर हो जायेगा। रथ में गति तभी तक रहेगी जब तक ये दोनों पहियाँ समान रूप से रथ का बोझ उठाती हुई आगे बढ़ती जायँ।''

"तुम्हारे विचार तो सभी निराले होते हैं विनय, लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि तुम जैसे नौजवान अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को ठुकरा कर भारतीय समाज को कैसे आगे ले जायेंगे यह मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हें सभी पुरानी चीज़ें बुरी क्यों लगती हैं? क्या उनमें कोई भी सार, कोई भी तत्व नहीं दिखाई देता?''

"ऐसी बात नहीं पंडित जी ! आज का समाज अतीत के गौरव का वर्तमान रूप है । हम जो कुछ पहले थे वह आज नहीं है, लेकिन हमें अपने अतीत पर अभिमान है । हमारे पूर्वजों ने अपने ज़माने में अपने समाज को आगे ले चलने की पूरी कोशिश की और उसके लिये नियम बनाये । उन्हीं नियमों के अनुरूप उस समय समाज का नियमन और नियन्त्रण होता रहा । सामाजिक आवश्यकतायें नियमों की जननी हैं । उनमें जो कुछ भी अच्छी बातें हैं हमें ले लेना चाहिये और आज की आवश्यकताओं के अनुकूल उनमें परिवर्तन और परिवर्धन कर उन्हें हमें ग्रहण करना चाहिये । हाँ, इतना ज़रूर कहूँगा कि जिस प्रथा का इस समय हमारे सामने प्रदर्शन हो रहा है उसमें रस बहुत है ।"

इतने में मतई हौले हौले आते दिखाई दिये तो पंडित जी बोले, "कहो, मतई, सब काम धाम ठीक से चल रहा है न !"

"हाँ भैया चल रहा है सब ठीक ही ठीक । थोड़ी देर में सबको भोजन कराके विवाह-कार्य सुरू हो जायेगा ।"

"ऊधम मचाने वाले लोग तो नहीं आये हैं !" संतोष ने पूछा ।

"आये तो हैं ही दो चार, लेकिन सब चुपचाप बैठे हैं । लगता तो नहीं ऐसा कि कुछ गड़बड़ी होगी, लेकिन आगे भगवान जानें ।"

"जमुनाप्रसाद को शरीक होने के लिये बुलाया था ?" विनयने पूछा

"बुलाया तो था । यह तो गाँव में सदा से होता आया है । लेकिन आये नहीं वह ।" मतई ने कहा ।

"हूँ, क्यों आयेगा ? अच्छा भोजन का इन्तज़ाम करो । परोसने वग़ैरह का काम हो तो हम लोग तैयार हैं । चलें ?" विनय ने कहा ।

"नहीं भैया, आप काहे को कस्ट करेंगे ? गाँव के लड़के हैं बहुत से, सब काम ठीक से चल ही रहा है । फिर जरूरत होगी तो ज़रूर अरज करूँगा । अभी आप यहीं बैठें ।"

"अच्छी बात है, जाओ काम देखो ।" पंडित जी ने कहा ।

मतई चला गया । उधर भोजन का इन्तज़ाम हुआ और सभी

लोग पंगत में बैठ गये। तरह तरह की बातें होती रहीं। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। प्रशंसा करने वालों का बहुमत था। लेकिन शिकायत करने वाले भी दो चार थे ही। खाना ख़त्म होने को आया और शराब वग़ैरह का नाम ही नहीं; इस पर एक गुट को बहुत एतराज़ हुआ। किसी ने उपेक्षा समझी, किसी ने बेइज़्ज़ती। तय हुआ कि मतई कन्हई को बुलाकर साफ़ साफ़ कह दिया जाय।

मतई और कन्हई दोनों भाई हाँथ जोड़ कर सामने खड़े हुये।

"भगत, कन्या का ब्याह है, हम कुछ कहना तो नहीं चाहते थे। लेकिन अपने दरवाजे पर बुलाकर इस तरह आबरू उतारना ठीक नहीं यह मैं तुमको बताये देता हूँ। अगर ऐसी ही बात थी तो तुम हम लोगों को बुलाते ही नहीं।" गुट में से एक ने गुस्से का रूपक बना मतई की ओर घूर कर कहा।

"क्या कसूर हुआ भैया, कौन सी खता हुई?" मतई ने आजिज़ी से पूछा।

"अभी पूछते हो। सरम नहीं मालूम पड़ती। कभी ऐसा हुआ है कि गाँव में कि ब्याह शादी का भोजन कराया जाय और सराब दारू का एक बूँद भी न मिले। बड़े सुराजी बने हो तुम। हमें क्या मालूम था कि अपने दरवाजे बुलाकर तुम पानी उतारना चाहते हो।" दूसरे ने आवेश में कहा। आस पास बैठे भोजन करने वालों का ध्यान इस ओर खिंच गया। बहुत से लोग इस बात पर नाराज़ भी हुये। लेकिन चुप हो इन लोगों की बातें वे सुनते रहे। मतई गिड़गिड़ा कर हाथ जोड़े विनती कर रहा था, "पंचो, आप क्षमा करें। हम पंचायत में हैं। वहाँ सराब ताड़ी की मनाही है। हम आपकी सेवा सराब ताड़ी से कैसे कर सकते थे? आप ही सोचें, हमारी ओर देख के सोचें, हमारे मुँह में कालिख लगती कि नहीं?"

मतई ने सबकी ओर दया की भीख सी माँगते हुये देखा।

"हाँ, हाँ, कालिख जरूर लगती और अब क्या हो रहा है? अब कीरत बढ़ रही है। एक ही तो बिटिया ब्याहने को और इतनी कंजूसी!

बहाना बनाया पंचायत का ! बड़े चबड़ हो तुम चौधरी।" तीसरे ने मज़ाक़ उड़ाया।

कन्हई अब तक अपने भाई के पास चुपचाप खड़ा था, उसका पारा चढ़ता जा रहा था। लेकिन भैया मौजूद थे इसलिये बोल नहीं रहा था कुछ। चुपचाप पत्थर की मूर्ति सा खड़ा तमाशा देख रहा था। ख़बर और लोगों को भी लग गई। मदन को पता चला तो उसका माथा ठनका। लेकिन वह नौशा था। कैसे बोले कुछ ! सोचकर उसने रामदीन को बुलाया। "बापू, देखो वहाँ कुछ गड़बड़ होने वाला है, जल्दी जाओ।" मदन ने रामदीन को भेजा।

रामदीन लम्बे डग भरते हुये वहाँ पहुँचा तो देखा एक बाराती उठकर खड़ा हो गया था और बकता जा रहा था, "ढोंगी, चला है बड़ा पंचायत वाला बनने। ऐसा ही था तो पंडित जी को अकेले बुला कर जेवाँ देता और आसिर्वाद लेकर किस्सा खतम कर देता। हम लोगों की क्या जरूरत थी। हूँ !"

रामदीन ने आगे बढ़कर कहा, "भाइयो, आपको मैंने बुलाया है। आप जो कुछ कहना चाहते हों मुझे कहिये। इसमें मतई भगत का कोई कसूर नहीं है। मतई भगत ताड़ी सराब नहीं दे सकते यह सारा गाँव जानता है। आने के पहले यह आपको सोच लेना चाहिये था। उनकी कन्या का ब्याह है। उनका पानी आप क्यों उतारना चाहते हैं ?"

"अच्छा, समधी समधी एक हो गये और हम लोग बन गये बेगाने। क्यों नवेद दिया तुमने, क्यों बुलाया तुमने हमको यहाँ ? हम यह बेइज्जती बर्दास्त नहीं कर सकते, चलो भाइयों, उठो। रामदीन चौधरी को भी मालूम हो जाय कि पंचों की बेइज्जती करने के क्या माने होते हैं।" कहते हुये वह आदमी पंगत छोड़कर उठ आया। उसके साथ साथ पाँच सात आदमी और उठ आये। पंगत में खलबली मच गई। जब तक पंडित जी आवें और समझावें सभी लोग उठ उठ कर इधर उधर आने जाने लगे। चारों ओर हंगामा मच गया।

जो लोग मतई और रामदीन से सहानुभूति रखते थे वह तो चुप रहे लेकिन बिगड़ कर उठ जाने वालों का शोर कम नहीं हो रहा था। पंडित जी, विनय, संतोष सभी सब को शान्त करने में लगे हुये थे। इस शुभ घड़ी में इस तरह का ग़ौग़ा किसी आगामी अशुभ का सूचक सा जान पड़ा। अन्दर भी यह ख़बर पहुँची। औरतों में हाहाकार मच गया। नसीम जो अभी तक छबिया के आस पास मंडरा रही थी फ़ौरन बाहर आ गई और क्या हुआ यह जानने की कोशिश करने लगी।

इसी भीड़भाड़ में दारोगा जी के साथ चार पाँच कान्स्टेबुल को देख लोग और भी सहम गये। क्या बात है! दारोग़ाजी क्यों आये? किसने उनको यहाँ बुलाया? सनसनी फैल गई यहाँ से वहाँ तक।

गंभीर और स्थिर भाव से दारोग़ाजी ने पूछा, "मदन कहाँ है? उसके नाम वारन्ट है।"

"अयँ!" पंडित जी घबरा गये।

"क्यों, क्या बात है? किस चीज़ का वारन्ट है?" विनय ने पूछा।

"मारपीट करने का। हमें ख़बर लगी है कि इस शादी के मसले को लेकर कुछ टन्टा होने वाला है। उसे रोकने के लिये मदन, रामदीन, कन्हई, मतई चारों के लिये वारन्ट लेकर आया हूँ। सिपाहियों, पकड़ लो इनको।"

मदन, रामदीन, मतई, कन्हई चारों पुलिस वालों के बीच में घिर गये।

"लेकिन दारोग़ा जी, यह निहायत बेहूदी बात है। यह मौक़ा इन लोगों को इस तरह से बेइज़्ज़त करने का नहीं है। आपने बहुत बड़ा ज़ुल्म किया है यह।" संतोष आवेश में काँपता हुआ बोला।

"जी हाँ, आप बजा फ़र्माते हैं। गाँव में अमन चैन रखने के लिये ज़िम्मेदारी मेरी है या आपकी?"

"दारोग़ाजी, इस बहस से क्या फ़ायदा। आप बता सकते हैं कि किस दफ़ा में आप इन्हें गिरफ़्तार कर रहे हैं?" विनय ने पूछा।

"१०७ में"

"उसमें ज़मानत तो हो सकती है ?"

"जी हाँ।"

"फिर आप ज़मानत ले लीजिये", विनय ने कहा, "इस वक्त इन लोगों को थाने में ले जाने से बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। १०७ तो ज़मानत वाली दफ़ा ही है।"

"जी हाँ, लेकिन इनकी ज़मानत लेने वाले कौन लोग हैं ?"

एक साथ कई आवाज़ें आईं। बाबू राम लाल ने ज़ोर से आवाज़ दे कर कहा, "दारोगाजी, इन चारों की ज़मानत मैं लेता हूँ। बोलिये कितने की है ज़मानत।"

"पाँच पाँच सौ की दो दो ज़मानतें चारों के लिये हैं।"

"बहुत खूब, अभी आता हूँ" कहकर बा० राम लाल भीड़ को हटाते हुये आगे बढ़े। पंडित जी भी उनके साथ थे। पंडित जी और बा० राम लाल ने ज़मानत के काग़ज़ों पर दस्तख़त किये। मदन, रामदीन, मतई, कन्हई ने भी अपने दस्तख़त और अँगूठा निशान बनाये। दारोग़ाजी काग़ज़ पत्र संभाल चलने को हुये तो मतई ने आगे बढ़ कर कहा, "दारोगाजी, जरा जलपान ही किये जाइये। बूढ़े मतई की बे आबरूई तो हो ही गई, लेकिन अब आप मेरी अरज मान लीजिये। आज मेरे घर में ब्याह है। आरम्भ में ही सुभ हुआ है। आप मेरे मेहमान हैं। अतिथि का स्वागत होना ही चाहिये। अरे कन्हई, दौड़ जा भैया। जल्दी से कुछ ले आ।"

कन्हई की बिल्कुल इच्छा नहीं होती थी कि दारोग़ा जी को वह एक बूँद पानी भी दे। वह ठिठककर मतई की ओर देखता रह गया।

"नहीं भगत, रहने दो। देर हो रही है।" दारोग़ा जी बोले।

"जैसी आपकी मरजी।" कन्हई ने कह दिया।

दारोग़ा जी ने घूरकर कन्हई की ओर देखा और घूमकर सिपाहियों के साथ धीरे धीरे चले गये।

लोगों को दारोग़ा जी के जाने पर कुछ राहत मिली। कोई दारोग़ा जी को गालियाँ दे रहा था, कोई उन दुष्टों को जिन्होंने हगाँमा मचाया

था। मदन उदास हो एक ओर बैठा था। कन्हई रामदीन के साथ बातें कर रहा था। विनय, मतई और बा० रामलाल सोच विचार में लगे थे कि बारात के भीतर एक छोटे से मामले को लेकर इतना तूमार बँध जाय और दारोग़ा जी भी आ जाँय यह असम्भव सा जान पड़ता है। इसके पीछे कोई राज़ है। हो न हो जमुना प्रसाद ने यह बदमाशी की है। नथुआ को उस दिन मदन ने पीट दिया था। उसने आज उसका बदला लिया है। यही चर्चा सभी ओर था। सब लोग धीरे धीरे यही कहने लगे। चारों ओर जमुना प्रसाद और नत्थू के नाम पर थू थू होने लगी।

बारात में धीरे धीरे शान्ति हुई और लोगों का ध्यान उन चन्द लोगों की ओर गया जिन्होंने शोर मचाया था। पता चला कि वे लोग कभी के रफ़ूचक्कर हो गये हैं। अब संदेह और भी दृढ़ हो गया। नत्थू के ही साथ खाने पीने वाले ये लोग जमुना प्रसाद से कुछ पाकर यहाँ बारात की शोभा बिगाड़ने और घराती बराती दोनों की बेइज़्ज़ती करने के लिए आये थे।

भीतर भी सारी ख़बर पहुँच चुकी थी। छबिया की माँ छबिया की क़िस्मत पर धाड़ें मार कर रो रही थी। नसीम ने उसे शान्त कराया। उसका हाँथ मुँह धुलाकर छबिया के पास पहुँची। छबिया बदहवास आँखें बन्द किए पड़ी थी। पहिले का शोर उसने सुना था। दारोग़ा जी के आने गिरफ़्तारी की भी ख़बर उसे लगी। पुलिस के बीच घिरे अपने बाबा, चाचा, ससुर और मदन को उसने देखा था खटिया के सहारे ऊपर वाली खिड़की में से। उसके बाद उसे होश न था क्या हुआ।

नसीम ने भीतर आकर छबिया को अपनी गोद में ले लिया। दुलार से मुँह पर हाँथ फेरा, अपने आँचल के कोर से उसके आँसू पोछे और एक गिलास पानी पिला कर उसे शान्त किया।

शान्त होने पर छबिया नसीम से लिपट गई। रोते रोते पूछा, "क्या हुआ उन लोगों का ?"

"कुछ नहीं हुआ। ज़मानत कर ली गई। मामूली सी बातें थी। इसमें क्या घबराना ? तुम शान्त रहो छबी, दारोग़ा जी चले गये। यह सब जमुना प्रसाद की करामात है। देखा जायेगा, यह बदमाश कहाँ तक चलता है। आज इसने हमारी बेइज़्ज़ती की है, कल उसे इसके लिये पछताना और रोना पड़ेगा। तुम ग़म मत करो बहिन।" कहती हुई नसीम ने छबिया का माथा चूम उसे कसके अपने अंक में दबा लिया।

"अब क्या कहते हो ?" क्रोध से पागल हो संतोष ने विनय की ओर देखा।

"शादी का काम कुशल से हो जाने दो।" विनय ने चुपके से कहा।

"अच्छी बात है। लेकिन विनय आज मैं तुम्हारी क़सम खाकर कहता हूँ कि अगर मैंने जमुना प्रसाद और नत्थू से बदला नहीं लिया तो मेरा नाम संतोष नहीं। इस समय मैं ख़ून का घूँट पीकर कह रहा हूँ। लेकिन वह वक़्त बहुत जल्दी या कुछ ही हफ़्तों में आजायगा जब तुम देखोगे कि इन दुष्टों को इस बेइज़्ज़ती की क्या क़ीमत अदा करना पड़ती है।" संतोष काँप रहा था।

विनय उसका हाँथ पकड़ कर उसे अलग ले जा बोला, "करना जो, चाहना कम से कम यहाँ तो चुप रहो। इतनी ज़ोर ज़ोर से बकने से क्या फ़ायदा।"

कन्हई ने इन्हें देखा तो आगे आ बोला, "भैया, पानी तो उतर गया, अब ?"

"पानी कैसे उतर गया ? क्या बातें करते हो कन्हई ? तुमने कोई बुरी बात तो की नहीं थी। तुमको गाँव के लोग कुछ कहेंगे नहीं। सभी जमुना प्रसाद, नत्थू और दारोग़ाजी पर थूक रहे हैं। तुम काहे को परेशान हो रहे हो ? ज़रा दिमाग़ ठंढा करो, समय कुसमय देखो।" विनय ने कन्हई को समझाया, "तुम समझते हो, यह सब हम लोग यों ही बर्दाश्त कर लेंगे ? ऐसा बदला लेंगे कि ये लोग जन्म भर याद करेंगे। लेकिन अभी यह सब कहने की बातें नहीं हैं।"

थोड़ी देर में सारा शोरगुल बन्द हो गया और विवाह की तैयारियाँ

होने लगीं। सब लोग उसमें लगे और मतई, पंडित जी, विनय, संतोष, नसीम के लिये खाना ला कर बोला, "भैया, आप लोगों को बड़ी देरी हो गई। अब आप भी थोड़ा बहुत पेट में डाल लें।"

"अच्छा भगत जी, हम लोग अभी खा लेते हैं, आप काम देखिये यहाँ का।" विनय ने नम्रता से कहा।

"नहीं भैया, आप हमारे देवता, रक्षक, परमात्मा हैं। अपनी धुँधली आँखों से देखना चाहता हूँ अपने भगवान को अपने दरवाजे पर जेंवते हुये", आर्द्र हो मतई ने कहा।

सिर नीचा कर चारों ने खाना खाना शुरू कर दिया।

भीतर विवाह कार्य प्रारम्भ हुआ तो रामदीन, मदन, कन्हई, मतई आदि से बिदा होकर पंडित जी, विनय, नसीम, संतोष सभी साथ ही साथ चले। रास्ते में दारोग़ा जी वाली बात को लेकर फिर बहस छिड़ गई। नसीम आपे से बाहर हो रही थी, उसी ने चर्चा शुरू किया, "पंडित जी, आप चाहे जो कहें, आज के वाक़ये को देखकर मेरा तो दिमाग़ ख़राब हो गया। पंचायत अब चाहे जमुना प्रसाद का सोशल बायकाट करे, चाहे नत्थू का गाँव में रहना हराम कर दे, लेकिन मतई कन्हई की जो बेइज़्ज़ती हुई है उसका नुक़सान पूरा नहीं हो सकता। उस वक़्त तो मुझे ऐसा लग रहा था कि संतोष वाली बात ही सब से ठीक है। अहिंसा, सत्याग्रह वग़ैरह भले आदमियों पर असर डालने के हथियार ज़रूर हैं, लेकिन जो शख़्स इतना कमीना है कि गाँव की लड़की की शादी के मौक़े पर भी ऐसी ज़लील हरकत कर सकता है उसके साथ हमारा सलूक कुछ और ही होना चाहिये।" नसीम ने संतोष की ओर देखा, फिर विनय की ओर।

"यही तो मैं इतने दिनों से चिल्ला रहा हूँ, लेकिन विनय की समझ में आवे तब। मैं तो सीधी बात जानता हूँ, 'शठं शाठ्यं समाचरेत'। गधे को प्यार करके काम नहीं लिया जा सकता। बालू से तेल नहीं निकाला जा सकता। जमुना प्रसाद और उसके गुर्गों से यह उम्मेद करना कि वे कभी भी भलमनसाहत कर सकेंगे, ग़लत है। ऐसा

सोचना अपने आप को धोखा देना है। लेकिन यहाँ किसी की कोई सुने तब तो। पंडित जी अहिंसा के अवतार हैं। चाहे जो हो जाय आप टस से मस होने वाले नहीं हैं। विनय को क्या हो गया है यह मेरी समझ में नहीं आता। बहरहाल, इनसे मुझे बिलकुल कोई आशा नहीं है। मैं अकेले क्या कर सकता हूँ? फिर भी मैं आज की इस घटना के बाद अपने को कितने दिनों रोक सकूँगा यह मैं नहीं कह सकता। मेरा ख़ून खौल रहा है। जब मेरा और जमुना प्रसाद का ख़ून एक हो जायगा तभी मेरा कलेजा ठंढा होगा। अच्छा हुआ कि यह घटना हम लोगों के सामने हुई। अब मुझे कोई दोषी नहीं ठहरा सकता।" संतोष ने दृढ़तापूर्वक, निश्चयात्मक ढंग से, साफ़ साफ़ कहा।

"और पंचायत का क्या होगा?" विनय ने धीरे से पूछा।

"पंचायत गई भाड़ में। ऐसी पंचायत से हम बाज़ आये। आज के बाद मुझसे इस पंचायत से कोई सम्बन्ध नहीं। उससे मेरा स्तीफ़ा समझिये। मैं अपने दम पर गाँव के नौजवानों का संगठन बना लूँगा। पंचायत से मुझे कुछ नहीं लेना देना है, न आप लोगों से। हमारा आप लोगों का रास्ता बिल्कुल भिन्न भिन्न है। हमारा आप लोगों का मेल अब नहीं हो सकता। अब मैं भावुक, ग़ैर ज़िम्मेदार, आतंकवादी हूँ और आप लोग गंभीर, सजग जननायक।" संतोष ने चुभती बातें कहीं।

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। नसीम संतोष की बातें सुन कर जैसे स्वयं अपना गुस्सा भूल गई। किसी भयंकर, अशुभ, भविष्य की अज्ञात सूचना से जैसे उसके शरीर में सिहरन हो उठा। उसका कलेजा धड़क रहा था। उसी ने चर्चा चलाया था। उस समय शायद इस परिणाम की बात उसने नहीं सोची थी। विनय चुप, एकदम चुप रहा। बिल्कुल स्थिर, भावशून्य, मूक! पंडित जी ने भी छेड़छाड़ न की, इस समय चुप ही रह जाना अच्छा समझा। लेकिन वे भी आगामी दिनों की भयानकता का जैसे अनुभव सा कर रहे थे!

मोड़ पर आकर संतोष ने बिदा माँगी और उत्तर की प्रतीक्षा किये बग़ैर साइकिल पर बैठा और उड़ गया।

पंडित जी ने मौन तोड़ा, "शहर के राजनैतिक जीवन में होने वाली गम्भीर घटनाओं के लिए तैयार हो जाओ विनय।"

"मैं तैयार हूं, पंडित जी। रात दिन एक कर दूँगा। एड़ी चोटी का पसीना मिला दूंगा, फिर भी यदि न कामयाब रहा तो मजबूरी है।", विनय बोला।

"ऐसे वाक़यात होते रहे तो किसी का भी दिमाग़ सही रहना मुश्किल हो जायेगा।" नसीम ने कहा।

"इससे हज़ार गुना ज़्यादा भयानक घटनायें होने वाली हैं। यह घटना उसके सामने बहुत छोटी है। वर्धा के फ़ैसलों को पढ़ा? हफ़्ते दो हफ़्ते बाद देखना क्या होता है। अभी उस वख़्त हमारे तुम्हारे बर्दाश्त की ताक़त का इम्तहान होगा। आज जमुनाप्रसाद हमारा इम्तहान ले रहा है। उस वख़्त हुकूमत हमारा इम्तहान लेगी। शायद साथी राष्ट्र सेवी भी हमारा इम्तहान लें। उस समय पता चलेगा कि हमारे भीतर कितनी देशभक्ति, कितनी सूझबूझ, कितना कैरेक्टर है। अभी से दिमाग़ ख़राब होने लगा तो हो चुका। तुम एक छोटे से माधोपूर को लिए फिरती हो। मैं चालीस करोड़ भारतीयों के माधोपूर की बात सोच रहा हूँ। नसीम, बहुत ख़राब दिन आने वाले हैं। आज हमारे और संतोष के बीच गहरी खाई खुद गई है। कल सारे देश के कार्य कर्त्ताओं के भीतर दो दल होगा। एक दूसरे का गला काटने को तैयार होंगे। उस समय हमारी जो कड़ी परीक्षा होगी उसके लिए भी तैयार रहो। अगर राजनीति में टिकना है और अपने विश्वासों में सजग, दृढ़ और मज़बूत रहना है तो अभी से कमर बाँधकर तैयार रहो।" विनय ने एक एक शब्द तौलकर सँभालकर कहा।

नसीम और पंडित जी दोनों विनय की बातें पूरी तौर से समझ नहीं पाये। लेकिन दोनों को यह अन्दाज़ लग गया कि विनय किस ओर इशारा कर रहा है। रात बहुत हो रही थी, इसलिये पंडित जी ने बिदा ली। विनय और नसीम साथ साथ पैदल ही चले।

चाँदनी छिटकी हुई थी। हवा भी गरम न थी। विनय नसीम से

इधर उधर की बातें करता बढ़ा जा रहा था। नसीम ने विनय से संतोष की वह बात भी बताई जो उसने आजिज़ी और विनय से कहा था, यानी मोहब्बत वाली बात! विनय को ज़रा भी विस्मय नहीं हुआ, न आश्चर्य ही। "आ गया होगा कोई झक। उसका क्या है? भावुक दिल मिला है, मचल गया होगा।" हल्के, हल्के मुस्करा कर विनय ने कहा।

"कैसी बात बोलते हो तुम? शराफ़त भी नहीं है उस शख़्स में! सीधे आकर मोहब्बत की बातें करने लगा, और तुम्हें मज़ाक सवार है।" नसीम झुँझला उठी।

"उसकी शराफ़त का ठीकेदार मैं तो नहीं हूँ। उसकी करनी उसके साथ। जवाब भी तो दे दिया था ठीक ठीक तुमने उसको, अब क्या चाहती हो? मैं उससे झगड़ा करूँ?" विनय अब भी गंभीर न हुआ। वह गंभीर होना ही नहीं चाहता था। अभी जो भी घटनायें और बातें हुई थीं उन्होंने विनय का कलेजा मथ डाला था, दिमाग़ परेशान कर दिया था। वह इस समय हँसी मज़ाक़ की बातें कर अपना बोझ हल्का करना चाहता था।

"अच्छी बात है, जाने दो।" नसीम तिलमिला उठी।

"हाँ, यही मैं भी कहता हूँ। दिमाग़ न ख़राब करो। कुछ हँसी ख़ुशी की बातें करो।"

नसीम की समझ में अब आया कि विनय अपना मूड बदलना चाहता है। उसे अपने ग़ुस्से पर ग़ुस्सा आने लगा। वह चुप ही रही।

"कहो नसीम, रात कैसी लग रही है? ऊपर आसमान में मुस्कराते उस चाँद तो तुम देख रही हो?"

"हाँ"

"वह कैसा लगता है? उसी ने इन किरनों का जाल बिछाकर ज़मीन, पेड़, पत्तों पर चाँदी का पर्दा डाल दिया है। इस चाँदनी में हर चीज़ ख़ूबसूरत मालूम पड़ती है। हम तुम भी, क्यों?"

"हाँ"

"नसीम एक बात मानोगी ? आज तुम अपना गाना मुझे सुनाओगी ? पहिली बार तुमसे कह रहा हूँ। मान लोगी मेरी बात ?"

"हाँ"

"तानपूरे के साथ के साथ तुम्हारी ख़ूबसूरती में चार चाँद लग जाते हैं। जिस समय तुम्हारी पतली उँगलियाँ तारों पर नाचने लगेंगी, तुम्हारे मुलायम रसीले गले से तड़पा देने वाली स्वरलहरी फूटेगी, क्या होगा उस समय ?"

नसीम चुपचाप विनय की ओर देखती रही।

"मैं समझता था कि सलवार कुर्ते में ही तुम इतनी अच्छी लगती हो। लेकिन इस साड़ी से तुम्हारी ख़ूबसूरती दोबाला हो गई है। सच नसीम, तुम आज बहुत अच्छी लग रही हो। मुझे लगता है कि आज के पहिले शायद तुम इतनी अच्छी कभी भी नहीं लगीं।"

"शायद आज की तरह तुमने मुझे कभी देखा ही नहीं।" नसीम ने शिकायत के रूप में कहा, "तुम्हें फ़ुर्सत कहाँ मिलती है ? जब आते हो थके हुये, घबड़ाये हुये, खिझे हुये। खाना खाते मुश्किल हो जाती है। दिन हुआ तो फ़ौरन भाग निकले, रात हुई तो ख़र्राटे भरने लगे। आख़िर तुम्हारी इस क़दर बिज़ी ज़िन्दगी में मेरे लिये भी मिनट दो मिनट के लिये कभी मौक़ा निकलेगा ?"

विनय कुछ बोल न सका। 'ठीक तो कहती है नसीम, कभी बेचारी से हँस कर बोला भी नहीं। नसीम के साथ मैंने ज़ुल्म किया है। लेकिन मैं कर ही क्या सकता हूँ ? इन्सान हूँ, थक के चूर हो जाता हूँ। उस वक़्त प्रेम-मोहब्बत की बातें कहाँ सूझती हैं ? मोहब्बत फ़ुर्सत वालों के लिये है, मुझ जैसे बैलों के लिये नहीं।' सोच कर विनय अपने को संतोष दे रहा था।

"बोलो चुप क्यों हो ? तुम मेरे लिये कभी भी वक़्त नहीं निकाल सकोगे ? मैं कब तक इसी तरह इन्तज़ार करती रहूँगी ? मेरे सब्र और बर्दाश्त की भी तो एक हद है। मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती विनय, बस एक मीठा लफ़्ज़ मुहब्बत से भरा हुआ, एक मीठी मुस्कान और

प्यार से 'नसीम'—बस सिर्फ़ इतना चाहती हूँ और कुछ नहीं। तुम अपनी आज़ाद ज़िन्दगी बसर करो। मैं भी तुम्हारा साथ दे रही हूँ, देती रहूँगी। यक़ीन रखो, मेरी वजह से तुम्हारे किसी भी काम में हर्ज न होगा, एक मिनट के लिये भी तुम्हें मैं न रोकूँगी। लेकिन विनय मेरे, मेरी कमज़ोरी का ख़्याल करो। तुम्हारी नसीम एक औरत है, जिसके दिल में नित आँधी और तूफ़ान उठा करते हैं। कमज़ोर औरत कब तक इस तूफ़ान, इस आँधी को दबाये रहे। विनय!" नसीम ने स्नेह और करुणा भरी आँखों से विनय की ओर देखा।

"तुम मुझे माफ़ कर सकती हो नसीम, अपने विनय को!" सर्द आह भर, लज्जित हो विनय ने कहा। विनय की दशा अवसाद और पाश्चात्ताप के कारण जाने कैसी हो रही थी। उसे लगा उसने घोर पाप, घोर अन्याय किया है अपने निकटतम आत्मीय के साथ! इस पाप का प्रतिकार भी हो सकेगा? वह सोचता रहा।

"ऐसा न कहो विनय, मुझे काँटों में न घसीटो। मैं सब बातें समझती हूँ। तुम्हारे काँधे पर बहुत बड़ा भार है। उस बोझ को सब लोग नहीं उठा सकते। तुम उसी में परेशान रहते हो। इसमें तुम्हारा कोई क़सूर नहीं। मैंने अपने फ़ायदे के लिये, अपने सुख के लिये तुम से ये सब बातें कहीं। क्या करूँ? यह दिल ही ऐसा मतलबी है! चाहती तो यह हूँ कि तुम चौबीस घन्टा मेरे सामने बैठे रहो और मैं तुम्हारी पूजा करूँ। लेकिन ऐसा होना नामुमकिन है। ऐसा करके मैं तुम्हारे साथ बहुत बड़ा ज़ुल्म करूँगी। इसीलिये मैं अपने को रोकती हूँ, बहुत रोकती हूँ। लेकिन जब कलेजे में दर्द उठ कर परेशान कर देता है, जब बर्दाश्त के बाहर तकलीफ़ हो जाती है तो एक कमज़ोर औरत की तरह तुमसे रहम की भीख माँगती हूँ।" नसीम और भी सफ़ाई देना चाहती थी। लेकिन उसकी ज़बान रुक गई। वह आगे कुछ बोल न सकी।

विनय के दिल में दर्द हो रहा था। उसने इस पीड़ा का अनुभव आज से पहिले कभी भी नहीं किया था। उसने नसीम को प्यार किया

था। उससे स्नेह रखता था। लेकिन उसके प्रेम से अभिभूत हो कर भावावेश में अपना सब कुछ भूल जाय ऐसा कभी भी नहीं हुआ था। नसीम ने इसके लिये उससे कई बार कहा भी लेकिन उसने कभी उधर ध्यान नहीं दिया। जैसे देखकर भी अनदेखी कर रहा हो। जैसे जान कर भी अनजान बनने का प्रयत्न कर रहा हो। लेकिन आज उसे ऐसा लगा कि उसके ढोंग का यह खोल हटता जा रहा है। उसका स्नेह, उसका प्रेम निरावरण हो, स्पष्ट और उद्दीप्त हो सामने आना चाहता था। उसकी ज़बान खुल कर कहना चाहती थी—'नसीम, प्राणाधिके! लेकिन संकोच कहो या व्रीड़ा, विनय की ज़बान न खुल सकी। उसके ओंठ काँप कर रह गए। उसकी मादक अधमुँदी आँखें, स्थिर, अडोल निसपन्द रह गईं। संज्ञाहीन सा वह नसीम के कन्धों पर हाँथ रखे, चन्द्र तारा खचित नीलाम्बर की ओर एक टक देखता रहा। यह चन्द्र-धौत हरीतिमा, रजत रश्मियों की लहरों में सद्यःस्नात धरा और कलाधर की कला से आच्छादित नभ पटल, अर्ध निद्रित से, विचार-निमग्न से वृक्ष-पौधे, सालस इठलातीं लता-वल्लरियाँ, शीतल बयार, सुनसान, इतना कि अपने हृदय की धड़कन सुन पड़े—और यह युगल जोड़ी—नसीम और विनय, विनय और नसीम—और कुछ नहीं।

विनय ने काँपते हाँथों से नसीम का कन्धा ज़ोरों से दबाया। काँपते ओठों से काँपती आवाज़ निकली "नसीम!"

"विनय!" काँपता प्रत्युत्तर मिला।

दोनों चुप रहे! कुछ क्षणों तक मौन संलाप के बाद विनय ने फिर कहा, "नसीम, तुम मेरी हो!"

"हाँ।"

"और रहोगी भी हमेशा?"

"हाँ।"

"सच?"

"सच।"

—और फिर दोनों चल पड़े—यंत्र चालित से घर की ओर।

८

दिन बीतते रहे। देशव्यापी राजनैतिक सनसनी से कार्यकर्ता और नेताओं के ऊपर विभिन्न प्रतिक्रियायें हो रही थीं। लेकिन अधिकतर लोग दुविधा में पड़े हुए थे। बम्बई में क्या होगा, वहाँ क्या निर्णय होंगे, उसका क्या असर देश पर होगा, अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय परिस्थिति को देखकर कोई आन्दोलन श्रेयस्कर और उचित होगा या नहीं, राजनैतिक गतिरोध तोड़ने और निराशा, अवसाद की अमानिशा को चीर, राष्ट्रीय मोर्चे की गतिशील और सबल प्रभात किरणें दिखाई देंगी या नहीं ? क्या होगा ? सभी ओर, सभी के दिलों में इसी प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे। अधिकाँश विचारक अनिश्चय, संशय और मूढ़ अवस्था में थे। कुहरा घना था। ज्योति की किरणें फूट ही नहीं रही थीं, दिखाई क्या देता ? कुछ लोग प्रसन्न थे। सोचते थे कुछ न करने, हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रहने से यह कहीं अच्छा है कि हम कुछ करें। ऐसी भी शान्ति किस काम की जिसमें मौत का ही दृश्य उपस्थित रहे, जिसमें हमारी क्रान्तिकारी भावनायें सोने और खोने के लिए ही मजबूर रहें ? हमारी भावनायें कुण्ठित न हों, हमारी क्षमतायें धूल में न मिल जायें, हमारी परम्परायें गतिरोध के गह्वर गर्त में ही डूब न जाँय इसलिए हमें यह जुआ खेल जाना चाहिए। ऐसे लोगों को जापानी बम के धड़ाके सुनाई नहीं दे रहे थे। ये लोग जापानी बूटों के नीचे चर चराती हुई हड्डियों की आवाज़ नहीं सुन पा रहे थे। दूसरे कुछ लोग यह सोचकर प्रसन्न थे कि मौक़ा अच्छा है। शासक संकट में फँसे हैं, जापानियों से युद्ध चल ही रहा है। आन्दोलन छेड़ दो। कुछ न कुछ मिल ही जायेगा। अपने बल से नहीं तो जापानियों की मदद से ही सही। दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है। कब्ज़ा बदलने का सुख तो मिलेगा चाहे फिर आगे बहुत दिनों तक दूसरी सड़ी लाश को ही ढोना पड़े। कहा करते थे, आगया अवसर जब अपनी बुद्धिमता का परिचय देना चाहिए, आक्रमणकारी जापानियों का आवाहन करो, स्वागत करो। उनकी सहायता से ही हमें स्वराज्य मिल

सकेगा। ऐसे भी थोड़े से लोग थे जो किसी भी हालत में किसी प्रकार के संघर्ष के विरोधी थे। उनका कहना था, शासक गिद्धों की तरह बैठे हैं। मौक़ा पाते ही झपट लेंगे और हमारे राष्ट्र कर्मी जेलों के भीतर दिखाई देंगे। जापानी आक्रमण के इस संकट पूर्ण अवस्था में देश का नेताविहीन हो जाना घातक होगा। जापानियों को खुला मैदान मिल जायेगा और हमारी शासन सत्ता विरोधिनी भावनाओं को जगाकर, उसके सहारे वे हमारे देश में घुस आयेंगे और हमको अपने बूटों के नीचे कुचल डालेंगे। हमारे देश में भी ग़ुलाम-हृदय, पराजयवादी मनोवृत्ति के लोग एक अच्छी संख्या में हैं। उनकी यह मनोवृत्ति उन्हें जापानी सङ्गीनों के साये में बरबस ला फेकेंगी। फलतः हमारा राष्ट्र, हमारी राष्ट्रीय परम्पराएँ, हमारी संस्कृति, सभ्यता सब कुछ ख़तरे में पड़ जाएगी। राष्ट्र के भाग्य के साथ, उसके भविष्य के साथ जुआ न खेलो।

इन्हीं बौद्धिक और मानसिक उद्वेगों, आवेशों, उतार चढ़ावों, संघर्षों के बीच बम्बई की अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी की बैठक हुई। सारे देश की आँखें उसी ओर लगी हुई थीं। पत्रों में छपे समाचारों से पता चला कि हवा गर्म है, संघर्षात्मक प्रस्ताव एक बहुत बड़े बहुमत से पास हो जायेगा। अख़बारों की कटिंग ले विनय पंडित जी के पास पहुँचा! वे .खुद अपने कमरे में परेशान होकर टहल रहे थे। विनय को देखकर जैसे कुछ राहत मिली।

"आओ विनय, बड़े मौक़े पर आये। तुम्हारी आवश्यकता थी इस समय। अच्छे आये।" पंडित जी ने विनय का स्वागत किया।

"मैं अपनी परेशानी दूर करने और कुछ समझ पाने के प्रयत्न में आया हूँ। कुछ कटिंग भी साथ लेता आया।" कहता हुआ विनय कमरे में दाख़िल हो गया, "अगर प्रस्ताव पास हो गया तो ग़ज़ब हो जायगा।"

"पास तो हो ही जायेगा। उसके पास होने में क्या सन्देह है!"

"अपने शासकों द्वारा प्रकाशित, इलाहाबाद में स्वराजभवन की तलाशी में मिले वर्किङ्ग कमेटी की कार्यवाही के नोटों को तो देखा ही

होगा आपने ? इस समय उसे सारी दुनियाँ में प्रकाशित करने का अर्थ क्या है ? मेरी समझ में यह किसी बड़े प्रोग्राम की भूमिका है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमें बदनाम कर, फ़ासिस्तवादियों के साथ सहानुभूति रखने वाला बताकर, ये लोग हमारे ऊपर आक्रमण करना चाहते हैं । ऐसे समय अगर संघर्षात्मक प्रस्ताव पास हो गया तो उनके प्रचारों की पुष्टि हो जायगी और हम दुनियाँ के सामने कुछ भी कहने लायक़ नहीं रह जायेंगे ।'' विनय ने उदास और परेशान होकर पंडित जी की ओर देखा । माथे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं ।

"लेकिन और कोई रास्ता भी तो नहीं है ! आख़िर किया क्या जाय ?'' पंडित जी ने पूछा ।

"करने को तो बहुत कुछ है । संघर्ष की बात न कर अगर आन्तरिक आपसी समझौते के आधार पर जापानी आक्रमणों के सफल, सबल विरोध के लिए राष्ट्रीय सरकार की मांग की जाय तो शासकों की चालें बेकार हो जायँ और हमारी माँगों को ठुकराना असम्भव हो जाय । लेकिन लगता यह है कि हमारे नेता इस समय इस ओर ध्यान देने के लिए तैयार नहीं हैं । शासकों के उभारने से वे भी उभर गये हैं । शासकों की बन आयेगी इससे और हमारा नुक़सान होगा । आवेश में आकर अगर उन्होंने संघर्ष का एलान कर दिया तो हमारी खिझी हुई जनता कुछ भी कर डालने के लिए उद्यत हो जायेगी । जनता के ऊपर नियन्त्रण रखने वाले हमारे नेता हमारे बीच में नहीं रहेंगे उस समय । राजनैतिक पंक्तियों में अराजकता का साम्राज्य हो जाएगा । जिसके जो मन में आयेगा वह वही करेगा । और फल ? दमनकारियों का बोल बाला और राजनैतिक पंक्तियों का मूलोच्छेदन !'' कहते कहते काँप उठा विनय ।

थोड़ी देर चुप चाप बैठे रहने के बाद वह उठा और महात्मा गाँधी की ओर ध्यान से देखने लगा । बड़बड़ाता हुआ बोला, "आज इस बूढ़े के हाँथ में सारे देश का जीवन है ।'' विनय ने पंडित की ओर मार्मिता से देखकर से देखकर कहा, "जी घबराता है पंडित जी, किसी

अशुभ की आशंका से जैसे मेरा मन डर रहा है। आज शाम और कल तक में अन्तिम फ़ैसला हो जायगा। अगर यह बूढ़ा हमारे बीच न रहा तब क्या होगा? क्रोधोन्मत्त जनता क्या करेगी? ओफ़!"

पंडित जी कुछ न बोले। उनके हृदय में, मस्तिष्क में मन्थन सा हो रहा था। चेहरे पर उदासी और परेशानी की रेखायें अंकित थीं। कभी विनय की ओर देखते जैसे उसके चेहरे में कुछ ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हों। कभी भावुक से होकर गाँधी जी और अन्य नेताओं की तसवीरों को देखते।

"बड़ी दुविधा में जान फँसी है विनय! नेता चाहते हैं शासकों से अधिकार छीनकर जापानियों से भिड़ना। तुम्हारे विश्लेषण से यह पता लगता है कि असर इसका उल्टा होगा। शासकों की दमन नीति के प्रतिक्रिया स्वरूप जनता में जापानियों के पक्ष में भावना बढ़ेगी। संघर्ष का नारा दिया ही जायेगा ऐसा लगता है। ग़ैर ज़िम्मेदार लोग हिंसा-अहिंसा का ध्यान न रख जो जी में आवेगा वही करेंगे। देश की नैया ऐसे भँवर में आ फँसी है कि उसके उबरने का कोई मार्ग ही सुझाई नहीं देता। देखें यह बूढ़ा क्या करता है!"

"अगर सत्याग्रह की तरह का कोई अहिंसात्मक प्रोग्राम चले तो भी कुशल हो। डर यह है कि लोग जनता के ग़ुस्से को इस्तेमाल कर मनमाना प्रोग्राम दे देंगे। शासकों के दमन ग़ैर ज़िम्मेदार नेताओं और जापान भक्तों के उभारने की दो पाटों के बीच हमारे संगठित जन जीवन का कचूमड़ निकलेगा। उच्छृङ्खल नेतृत्व के ग़ैर ज़िम्मेदार कामों से हमारे देश को किन किन मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा इसको सोच कर ही सिर में चक्कर आने लगता है। किया क्या जायेगा? आपने कुछ सोचा!" विनय ने पंडित जी की ओर ध्यान से देखा।

"भई, मेरी समझ में कुछ नहीं आता। मैं सिपाही हूँ। जो आदेश होगा मानूँगा। मेरे बूते के बाहर है कुछ भी सोच या समझ सकना।" पंडित जी ने कहा। आत्म विश्वास और स्वयं विचार कर पाने की कमी उनके चेहरे से झलक रही थी।

"लेकिन किस आदेश को आप मानेंगे ? आदेश काँग्रेस अथवा गाँधी जी के हों तब उनको मानने का कोई अर्थ भी है। लेकिन अगर ग़ैर ज़िम्मेदार हल्कों से कोई आदेश निकला तो क्या उसको भी आँखें मूंद कर मान लेंगे ? मान लीजिये कि यहाँ कुछ धर पकड़ शुरू हुई और आप लोग न रहे तो संतोष और उसके साथियों की बन आयेगी। खुल खेलने का मौक़ा मिल जायेगा उन्हें। तब क्या उनके आदेशों को मानना कांग्रेस कर्मियों के लिये उचित होगा ? आख़िर कुछ अपनी समझ से भी तो काम लेना चाहिये।"

"विनय, अभी हमने काँग्रेस कमेटी में बैठ कर कुछ भी निश्चय नहीं किया है। ऐसी आशंका है कि उस तूफ़ानी ज़माने में हमारा संगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा और हमारे कार्यकर्ता किसी भी केन्द्रीय नेतृत्व के बग़ैर उद्भ्रान्त और विह्वल से रह जायँगे। फिर उनके मन में जो उचित जचेगा उसे वे करेंगे। घबराहट यह है कि क्रोधावेश में अगर वे हिंसात्मक कार्य प्रणाली को अपनाने लगे तो उन पर रोक कौन लगायेगा ? उन्होंने अहिंसा को इतनी अच्छी तरह समझा नहीं है कि हर समय, हर मौक़े पर वह उसका पालन न कर सकें। मानव स्वभाव ही तो है, अगर क्रोध आगया और आगा पीछा कुछ न देख वे किसी ऐसे वैसे काम में जुट गये तो बहुत बुरा होगा। हमारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा। कमेटी की बैठक जल्दी बुलवा कर मैं लोगों से इस पर ग़ौर करने और कोई रास्ता ढूँढ निकालने के लिये अवश्य कहूँगा। हम काँग्रेस वालों का रास्ता यों तो साफ़ है ही। और जो हो, हिंसा के नज़दीक तो हमें जाना नहीं है।"

"अगर कुछ लोगों ने हिंसा किया तो ?" विनय ने फ़ौरन पूछा।

"निश्चय ही हम उनका विरोध करेंगे और उन्हें रास्ते पर लाने का प्रयत्न करेंगे। अहिंसा ही हमारी नीति है और रहेगी। उसे छोड़ने का सवाल उठता ही नहीं, उठ ही नहीं सकता। जब तक गाँधी जी हमारे नेता हैं और काँग्रेस हमारा नेतृत्व कर रही है, हम हिंसा का मार्ग अपना ही नहीं सकते। शान्ति पूर्ण प्रदर्शन, अहिंसात्मक सत्याग्रह

आदि ही हमारे हथियार हमेशा रहे हैं और आगे भी रहेंगे। इस मार्ग से विचलित हम कभी नहीं हो सकते!" पंडित जी के शब्दों में दृढ़ता थी।

"पंडित जी, आप सिद्धान्तों में दृढ़ रहने वाले व्यक्ति हैं। लेकिन साधारण काँग्रेस कर्मी तो इतने मज़बूत नहीं हैं। आपने अभी क्रोधावेश की बात कही है। उन्मत्त व्यक्ति उचित अनुचित का ध्यान नहीं रख सकता। क्रिप्स-प्रस्तावों के बाद से जनता का पारा दिनों दिन चढ़ता ही गया है। वह भी क्रोध से मतवाली हो रही है। अगर काँग्रेस कभी किसी प्रकार रुके भी तो जनता पर किसका अंकुश रहेगा। मैं जानता हूँ कि संघर्षात्मक प्रस्ताव पास करने पर भी गाँधी जी अभी कुछ दिन आन्दोलन को यों ही टाले रहेंगे और प्रस्ताव पर सरकारी और ग़ैर सरकारी दोनों हल्कों में प्रतिक्रिया का अध्ययन करते रहेंगे। लेकिन विक्षुब्ध जनता और प्रतिहिंसात्मक शासक वर्ग में आग तिनके का सा सम्बन्ध है। अगर गाँधी जी गिरफ़्तार हो गये और जनता बिगड़ गई तब क्या होगा? तब तो शायद वह होगा जो इस समय कल्पनातीत है। तब हम लोग क्या जनता के क्रोध के उस बढ़ते हुये दावानल को सँभाल पायेंगे? इस कार्य में हमारा साथ कौन देगा? ऐसा तो नहीं कि हम अकेले ही रह जाँय उस समय? उँह, रह भी जाँय अकेले तो क्या हुआ? पंडित जी, जहाँ तक हम लोगों का सम्बन्ध है हमने तो निश्चय कर लिया है कि हमारा स्थान जनता और शासकों के बीच होगा। जनता को सँभालने और शासकों के आक्रमणों से उसे बचाने में हम अपनी जान की बाज़ी लगा देंगे। आप हमारे अनुशासन और हमारी कर्मठता को जानते ही हैं। हमें उसका भरोसा है। लेकिन इस महान कार्य में हम अपनी कमज़ोरी, संख्या बल की कमी का भी अनुभव करते हैं।"

"तो, क्या तुम लोग आन्दोलन का विरोध करोगे? यह तो बड़ा अनुचित होगा। जब तक आन्दोलन न चले तब तक विचार विनिमय और वाद विवाद का समय रहता है, लेकिन उसके छिड़ जाने पर तो उसका साथ ही देना चाहिये।"

"साथ तो तब दिया जाय जब उसे ठीक समझा जाय। ग़लत समझते हुये भी साथ देने का अर्थ है जान बूझ कर लोगों को ग़लत रास्ते पर ले चलना उन्हें गुमराह करना। यह तो अपने को धोखा देना हुआ।"

"लेकिन साथ न देना तो देश को धोखा देना हुआ। क्या तुम लोग ऐसी ग़द्दारी करोगे?" विस्मय से चकित हो पण्डित जी ने विनय से पूछा, "क्या आन्दोलन छिड़ जाने पर भी शामिल होने न होने का प्रश्न बाक़ी रह जाता है?"

"जान बूझ कर जलती कड़ाही में तो कोई नहीं कूदेगा, पण्डित जी।"

"तो सीधी बात यह है कि तुम लोग आन्दोलन में शामिल न होगे। क्यों?"

"शामिल होना तो दूर रहा हम उसका विरोध करेंगे।" विनय ने ज़ोर देकर कहा।

पण्डित जी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। विनय से ऐसी बातों की आशा वे बिलकुल नहीं करते थे। अन्तरङ्ग, अभिन्न मित्रों की तरह वे हमेशा सभी विषयों और प्रश्नों पर विचार विमर्ष किया करते थे। दोनों के विचारों में, आने वाले आन्दोलन के समय दोनों की कार्य शैली में इतना मौलिक भेद है इसकी लेश मात्र आशंका उन्हें न थी। स्तम्भित से रह गये वे। उनकी मनोदशा बदलने सी लगी। ऐसा लगा कि उनके पैरों के नीचे की ज़मीन बालू की तरह धीरे धीरे खिसकती जा रही है। आत्म विश्वास की मात्रा उलझनों के कारण कम हो ही गई थी। विनय की बातों से वे भौचक्के से रह गये। मुद्रा गंभीर हो गई। माथे पर बल पड़ गये। आँखों के चारों ओर घनी छाया सी मालूम पड़ने लगी।

'विनय हमारा विरोध करेगा। विनय के साथी हमारा विरोध करेंगे! यही विनय जो मेरा अपना है, अभिन्न है! और इसके साथी, जो आज तक हमारे साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर साथ काम करते, मरते

खपते रहे हैं ! कल क्या होगा जो हम और ये दो कैम्पों में नज़र आयेंगे ?' वे सोचते रहे 'इतने दिनों से विनय बातचीत में, विवादों में विरोध करता चला आया है, लेकिन काम में हम लोग सदा साथ रहे। कितने परिश्रम और लगन से ये लोग हमारे हर काम, हर प्रोग्राम में साथ देते रहे हैं ! कितने जीवट के होते हैं ये लोग ! लेकिन, अब ये लोग हमारा विरोध करेंगे। यह सब क्या है ? इसका कारण क्या है ?'' पंडित जी उदास और उतरे मुँह से विनय की ओर देखते रह गये।

मौन तोड़ते हुये विनय ने कहा, "पंडित जी, मज़दूर सभा ने मौलाना आज़ाद के पास आन्दोलन न छेड़ने के लिये तार भी दिया है। हमारे साथी जहाँ कहीं भी देश भर में हैं सभी जगहों से मौलाना साहब से यही प्रार्थना की गई होगी। हमारा रास्ता बिल्कुल साफ़ है। किसी भी हालत में हम......"

"ऊँ, क्या कहा तुमने ?" जैसे सोते से जग कर पंडित जी ने पूछा, "तार क्या ? क्या प्रार्थना किया है मौलाना साहब से ?"

"यही कि यह मौक़ा आन्दोलन छेड़ने का नहीं है। इस समय आन्दोलन की बातें करना शासकों के हाथों में खेलना है। देश के साथ जुआ खेलना है।"

"विनय, अब हद हो गई। या तो मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है, या तुम लोगों का ही सिर फिर गया है। कैसी कैसी बातें कर रहे हो तुम इस समय !"

"बातें तो मैं बिलकुल ठीक कर रहा हूँ, पंडित जी। यही तो इतने दिनों से मैं कहता आ रहा था। जब कभी भी संतोष का चर्चा आया मैंने आपसे यही निवेदन किया कि यह समय संघर्ष का नहीं शक्तिसंचय का है। मेरा यह भी ख़्याल था कि आप मेरी बातें समझ रहे हैं। पर अब ऐसा लग रहा है कि आप मेरा आशय बिल्कुल ही नहीं समझ सके थे। अब तो सारी गाथा दोहराने का समय भी नहीं रहा। बड़ी मुश्किल है।"

"जाने दो विनय, अब समझने समझाने का बिल्कुल अवसर नहीं

है। जो समझ में आवे करो। तुम्हारी देशभक्ति पर मुझे अटल विश्वास है। तुम्हारी समझ और सूझबूझ पर मुझे पूरा भरोसा है। फिर भी न जाने इस समय तुम्हारी ये अन्तिम बातें क्यों इतनी सारहीन, बेतुकी और सच कहूँ तो मूर्खतापूर्ण लग रही हैं! मेरा भी मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा है। सोचा था, तुमसे मिलने पर दिमाग़ साफ़ होगा, हृदय को शान्ति मिलेगी। लेकिन तुमने और भी अधिक उलझन और परेशानी में डाल दिया। ख़ैर, अब तुम जाओ। मैं शान्तिपूर्वक कुछ समय आराम करना चाहता हूँ। कल हो सके तो मिलना।"

"क्या आप रुष्ट हो गये पंडित जी ?" कातरता से विनय ने पूछा।

"नहीं, रुष्ट होने की क्या बात है ? तुम तो अपनी पोज़ीशन काफ़ी दिनों से साफ़ करते चले आ रहे हो। ज़रा, हमीं लोगों को थोड़ा सा सजग हो जाना चाहिये था। अच्छा, जाओ अब।" आग्रहपूर्वक पंडित जी ने कहा।

"जो आज्ञा," अधिक रुकना अनुचित समझ विनय ने कह दिया और अपनी कटिंग्ज़ बटोरने लगा।

"कल आना किसी समय, आओगे न ?" पंडित जी ने फिर आग्रह पूर्वक कहा।

"देखिये, कल की कल है। कौन जाने, कल तक क्या होगा ? अच्छा, नमस्कार।" कहता हुआ विनय कमरे के बाहर हो, साइकिल की पीठ पर जा धमका और साइकिल चल निकली। जब तक वह दिखाई दिया पंडित जी दरवाज़े के सहारे खड़े उसकी ओर देखा किये। इस समय उनके हृदय में कोई भाव न थे। बस यों ही देखते रहे। विनय दूर और दूर और फिर नज़रों से ओझल हो गया।

कुछ देर वह वहीं खड़े रहने के बाद पंडित जी आराम कुर्सी पर लेट गये और घन्टों वहीं पड़े पड़े सोचते रहे। बार बार उन्हें विनय के ये शब्द याद आते "हम आन्दोलन का विरोध करेंगे।" लाख कोशिश के बाद भी जैसे ये शब्द कानों में गूँज उठते, "हम आन्दोलन का विरोध करेंगे।" आँखों को मल, मुँह पर हाँथ फेर, स्वस्थ होने का

प्रयत्न करने पर भी जब विनय के ये शब्द याद आते तो पंडित जी की बेचैनी बढ़ जाती। सोचते, काँग्रेस कमेटी ने कुछ निश्चय नहीं किया है। संतोष क्या करेगा कुछ पता नहीं। विनय कह गया, "हम आन्दोलन का विरोध करेंगे।"—अब क्या होगा?' पंडित जी फिर उठकर कमरे में टहलने लगे। सुराही से पानी निकाल कर पिया। गला ठीक किया और फिर उसी प्रकार टहलने लगे।

थोड़ी देर में मदन सामने घबराया हुआ, जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाता आता दिखाई दिया तो पंडित जी का ध्यान उधर गया। "कहो, तुम क्या ख़बर लाये?" दूर ही से पंडित जी ने पूछा, "कुशल तो है?"

"हाँ, पंडित जी।" मदन ने जल्दी से कह दिया। "एक बात बताने आया हूँ।" आवाज़ धीमी करते हुये डरा हुआ सा मदन बोला, "आज गाँव में चौकसी बहुत है। गोड़इत, पटवारी, चौकीदार सब गये थे जमुना प्रसाद के घर सबेरे ही। दारोग़ा जी भी आये थे। नथुआ और उसके गिरोह के दो चार लोग भी थे। उनको वहाँ से निकलते दादा ने देखा था। तब से दादा के मन में संका हो गई। कुछ सनसनी है ज़रूर। वह सब निकले तो दादा ने राम राम किया। लेकिन किसी ने राम राम का भी जवाब नहीं दिया। दादा ने भेजा कि आप को खबर दे आऊँ।"

"मतई की ओर भी गये थे तुम?"

"जी नहीं, उधर जाने का मौक़ा कहाँ लगा? होसियार रहने की खबर करवादी है। लेकिन होसियार क्या रहेंगे लोग? मामला कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मन डरता है पंडित जी।"

"अरे, कुछ नहीं। डरने की क्या बात है? करते होंगे वह लोग कुछ साँठ गाँठ, करने दो। शान्ति से रहो। कुछ घबराने की बात नहीं है। संतोष आया था वहाँ, आजकल में?"

"हाँ, सुना कल रात को आये थे, लेकिन हमारे पुरवा में नहीं आये। कंघीगढ़ टोला में सुना कुछ लोगों से बहुत रात गये तक बातें करते रहे।"

"क्या बातें कीं, कुछ पता चला ?"

"नहीं !"

"हूँ, अच्छा ।" कह पंडित जी ज़रा सा रुके सोचकर फिर बोले, "काँग्रेस के दफ्तर तक जा सकोगे, धूप तो बहुत है ?"

"हाँ, जाऊँगा क्यों नहीं ? चला जाऊँगा, विनय भैया को भी खबर देना है । उसी ओर से होकर निकल जाऊँगा । कहिये कुछ काम है ?"

"है तो एक ज़रूरी काम । ज़रा मंत्री जी को एक चिट्ठी मेरी दे देना ।"

"अच्छी बात है, लाइये दे दूँगा ।"

पंडित जी ने एक छोटा पुर्ज़ा अंगरेज़ी में लिख कर मदन के हवाले किया और मदन हौले हौले क़दम बढ़ाये बंगले के फाटक के बाहर हो गया । काँग्रेस दफ़्तर के पास संतोष का सामना हुआ तो मदन ने हाँथ उठा दिया । साइकिल रोक कर संतोष उतर पड़ा, "कहो मदन, मज़े में हो । छबिया तो अच्छी है । तुम्हारे ही साथ है न !" कहते हुये वह मदन के पास आ गया ।

"हाँ भैया, सब आपकी दुआ है ।"

"इधर कहाँ चले ?"

"जरा पंडित जी का एक खत देना था मंत्री जी को, सो चला आया ।"

"देखें, क्या है ख़त में," कहते हुये संतोष ने हाँथ आगे बढ़ा दिया ।

एक साँस में सारा खत संतोष पढ़ गया और वापिस करता हुआ बोला, "हूँ, बड़ा बना है गाँधी वादी । देखी जायेगी । अच्छा मैं चलता हूँ । फिर मिलूँगा," कह कर संतोष आगे बढ़ गया ।

मदन ने सोचा कि शायद पंडित जी का ख़त संतोष को देखा कर उसने ठीक नहीं किया । मालूम नहीं पंडित जी ने क्या लिखा था । चिट्ठी वाली बात बतानी ही नहीं चाहिये थी। न चिट्ठी का चर्चा करता न देखाना पड़ता । सोचता सोचता मदन दफ़्तर पहुँच गया ।

मंत्री जी को चिट्ठी दे वह सीधे विनय के घर की ओर चला।

धूप अधिक थी। मदन के पास छाता भी न था, लेकिन उतावली और घबराहट में उसके पाँव विनय के घर की ओर बढ़ते ही जा रहा थे। थोड़ी देर में वह सीढ़ी के ऊपर चढ़ कमरे के पास पहुँच गया।

नसीम और विनय एक दूसरे के सामने गंभीर अवस्था में बैठे थे। नसीम ने जैसे मदन को देखा ही नहीं। विनय ने एक कुर्सी पर बैठने के लिये धीरे से इशारा किया। मदन चुपचाप कुर्सी पर बैठ, बीड़ी सुलगा, धुयें का कश खींचने लगा।

"कहो मदन, इतनी धूप में कैसे चले? सब ख़ैरियत तो है?" विनय ने पूछा।

"हाँ भैया, सब ठीक ठाक है। दादा ने आप के पास भेजा था। आज जमुना प्रसाद के घर सब गोड़इत, चौकीदार, दारोगा जी, नथुआ वग़ैरह आये थे। भीतर कमरे में बैठ कर बातें हुईं। निकले सब बाहर तो गंभीर थे। उड़ती पुड़ती ख़बर है कि कुछ होने वाला है। दादा कहीं और भी सुन आये थे कि धर पकड़ की तैयारी है। इधर गाँव में सनसनी है। मतई चाचा के घर तो मैं नहीं जा सका, मगर ख़बर भेज दिया है। अब क्या करना होगा?" एक साँस में मदन सब कह गया।

नसीम सिर नीचा किये बैठी रही। जैसे उसने कुछ नहीं सुना। ज़मीन की ओर एक टक देखती रह गई। विनय ने ध्यान पूर्वक नसीम की ओर देखा, फिर मदन की ओर और बाद में छत की ओर बड़ी देर तक। बोला नहीं बिलकुल वह। एक सिगरेट जलाई, जैसे ही ख़त्म होने पर वह आई उसने दूसरी लगा ली। कश खींचते खींचते वह उठा और कमरे में टहलने लगा। उसके कुर्ते की बाहें मुड़ी हुई थीं, हाँथ पीछे कमर पर बँधे हुये थे। सिगरेट ओठों के बीच थमा हुआ था। माथे पर बल, भौहों में सिकुड़न और मुखाकृति पर चिन्ता की गहरी रेखायें। आँखें बिलकुल सूखी हुईं, परन्तु चमकतीं। टहलते टहलते विनय तानपूरे वाले मेज़ पर जा बैठा। उसने घूर कर मदन की

ओर देखा। चुप रहा, फिर बोला, "मदन, कुछ सवाल पूछूँ, जवाब दोगे?"

"हाँ भैया, पूछो न, कहो!"

"तुम हमारी बात मानोगे हमेशा?"

"इसमें भी कोई सक है भैया? यह भी कोई पूछने की बात है?"

"नहीं मदन, आज मेरा सवाल मामूली नहीं है। तुमने अभी जो ख़बर दी है, इसका अन्दाज़ मुझे पहिले से था। यह तुम्हारे गाँव का ही हाल नहीं है, बहुत से, हज़ारों गाँवों का यही हाल है। जानते हो, तूफ़ान आने के पहिले कितना सन्नाटा रहता है? आज वही सन्नाटा है। यह सन्नाटा कितना भयानक, कितना डरावना है इसे तुमने कभी नहीं सोचा? आज सोचने का समय आ गया। कल से माधोपूर का नक़्शा बदलने वाला है। कल से शायद माधोपूर में न पंचायत रह जाय, न पंच, तब तुम क्या करोगे? सोचा है कभी तुमने कि तुम्हारी यह बस्ती उजड़ सकती है! तब क्या करोगे? और कभी यह भी सोचा कि तुम अपनी छबिया से अलग हो जाओगे? आज तुम और तुम्हारी छबिया एक हो, एकाकार! कल दोनों का वियोग हो जाय तो तुम सह सकोगे।" विनय कहता गया। मदन कुछ भी न समझा। आज के पहले विनय ने ऐसी अशुभ बातें कभी नहीं की थीं। मुँह उसका खुला का खुला रह गया। आँखें फाड़ फाड़ वह विनय की ओर देखता रह गया और विनय एक ही टोन में, एक ही आवाज़ में कहता रहा, "मदन, ऐसा हो सकता है कि तुम सब कन्हई, मतई चाचा, दादा अलग अलग कर दिये जाओ। यह बर्दाश्त कर सकोगे तुम? बोलो।"

मदन फिर भी न बोला। चुप ही रहा। आँखों के आगे अँधेरा, ज़मीन जैसे पैरों के नीचे थी ही नहीं, जैसे उसके सिर में चक्कर आ रहा था। वह कभी नसीम, कभी विनय की ओर देखता और कभी ज़मीन की ओर आँखें गड़ाये घूरता रह जाता। उसका गला सूखने लगा। ओठ सूखने लगे। कुछ समझ में न आया। यह सब क्यों

होगा ? कब होगा ? छबिया से अलग रहना होगा, बाबा से अलग, चाचा से अलग, सबसे बिछोह, क्यों ? कैसे ? मदन के अनजान हृदय पर विनय की बातें कुरेदने लगीं। भीतर ही भीतर उसका दिल मसोसने लगा। सिर ऊपर उठा उसने नसीम की ओर देख पानी माँगा।

नसीम उठी, भीतर से एक गिलास पानी लाई। मदन ने पानी पिया। विनय चुप यह सब देखता रहा। नसीम ने विनय की ओर देख कर कहा, "खाना खा लो, बहुत देर हो गई है। दो बजने वाले हैं। अभी तुम्हें फिर जाना है बाहर।"

"हाँ भैया, खाना खाओ। इतनी देर क्यों कर देते हो तुम ?" मदन बोला।

"मँगवाओ खाना, जल्दी करो" विनय ने नसीम से कहा और मदन की ओर देख फिर बोला, "तुमने कुछ जवाब नहीं दिया।"

"जवाब क्या देना है भैया ? जो कहोगे करूँगा।"

"अब मेरे कहने का समय नहीं है मदन ! अब ख़ुद से सोचने विचारने का समय आ गया है। कौन जानता है कि कल मैं तुमसे कुछ कहने के लिये रहूँगा भी या नहीं।"

"भैया, मेरी मति भ्रष्ट हो गई है। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। तुम क्या कह रहे हो, तुम क्या चाहते हो, मेरी समझ में नहीं आता। जरा साफ़ साफ़ कहो।"

"तो सुनो साफ़ साफ़, मुझे ऐसा लगता है कि कल तक अगर बम्बई में गाँधी जी वग़ैरह पकड़ गये तो देश में कुहराम मच जायेगा। उसका असर हमारे शहर और हमारे माधोपूर पर भी पड़ेगा। हमारे यहाँ के नेता भी पकड़े जा सकते हैं। माधोपूर में भी धर पकड़ हो सकती है। इस पर अगर लोगों को ग़ुस्सा आ गया और वे कुछ का कुछ कर बैठे तब और भी ज़ुल्म होगा। इससे आग बढ़ेगी। लोग और भी ज़्यादा सताये जायेंगे। लोगों का ग़ुस्सा और भी बढ़ेगा। यह आग बढ़ती ही जायेगी। अभी हम तुम एक जमुना प्रसाद और नत्थू से परेशान हैं। कल चारों ओर जमुना प्रसाद और नत्थू दिखाई देंगे। हमारी बहिन

बेटियों की इज़्ज़त आबरू भी ख़तरे में पड़ सकती है। ऐसे मौक़े पर हमें तुम्हें बहुत सोच समझ कर, अपने ग़ुस्से को रोक कर काम करना होगा। मुमकिन है कि संतोष इस गड़बड़ी में और भी आग लगावे। उसका भी सामना करना होगा। बहुत कठिन समय आ गया है। मर्दानगी इसी में है कि हम इस समय अपने को सँभाल कर लोगों की सहायता करें। तुम ऐसे मौक़े पर क्या करोगे? क्या तुम मेरा साथ दोगे? या, संतोष के साथ हुल्लड़ बाज़ी में शामिल होकर और भी ज़्यादा ऊधम मचाओगे? मैं जानबूझ कर यह सवाल तुमसे कर रहा हूँ।"

"भर सक मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगा। दम रहते साथ दूँगा।" मदन ने इतना ही कहा।

"हर हालत में अपने ग़ुस्से पर रोक थाम कर सकोगे?"

"कोसिस करूँगा भैया।"

नहीं मदन, कोशिश नहीं। काम करते समय आदमी को बहुत सी बातों का ध्यान नहीं रहता। पहिले से सोच विचार लेने पर ऐन मौक़े पर ग़लती नहीं होती। सोच लो, दृढ़ हो लो। इस समय दिल में जो सवाल उठे पूछ लो। बाद में तो काम ही काम है, मशीन की तरह। वह समय सोचने का नहीं काम करने का होगा। मुमकिन है मैं वहाँ न रहूँ। दूसरी जगहों में फँसा रहूँ। तुम गाँव के कप्तान हो। तुम्हें उस समय माधोपूर को सँभालना होगा। सारे गाँव की रक्षा करनी होगी। बोलो क्या कहते हो?"

"मैं क्या बोलूँ भैया? आसीर्वाद दो कि तुम्हारा हुकुम मानता रहूँ। जो कुछ तुमने आज तक पढ़ाया सिखाया है सब मेरे काम आये और मैं गाँव वालों की सच्ची सेवा कर सकूँ।"

नसीम खाना लेकर आई तो मदन चलने को तैयार हुआ।

"नहीं, आज हम लोग सब साथ खायेंगे। अभी न जाओ, थोड़ा बहुत खा लो।" कह कर विनय ने मदन को रोक लिया। साथ में इस तरह खाने का आदी न होते हुये भी मदन विनय की बात टाल न

सका। तीनों साथ ही खाना खाने बैठे। बीच बीच में इधर उधर की बातें होती रहीं।

आज विनय भावुक हो रहा था! उदास हो बोला, "देखें, फिर कब हम सब ऐसे ही साथ बैठ कर खाना खाते हैं!"

"कैसी बातें कह रहे हो विनय! रोज़ खायेंगे इसी तरह। ऐसा क्या होने वाला है जो तुम इतने परेशान हो रहे हो?" नसीम ने विनय को सँभालते हुये कहा। "छबी से कुछ -त कहना, वरना बेकार घबरा जायेगी बेचारी। क्यों मदन?"

"ठीक कहती हो नसीम! घबराने की कोई बात नहीं है। लेकिन मैं जरा कमज़ोर दिल का आदमी हूँ न! अच्छा जाने दो। सुनो, मदन, तुम मतई चाचा के पास जाओ और उन्हें भी मेरी बातें समझा देना। भी ज़रूरी काम है। मैं न रहूँ तो भी वह ही सब कुछ सँभालेंगे।"

"अच्छा, इधर से लौटता हुआ वहाँ होकर तब घर जाऊँगा।"

"हाँ ऐसा ही करना। अच्छा, छबी मज़े में तो है। सुख से हो न तुम लोग!"

"हाँ, भैया। सब कुछ अच्छा है। आप लोगों की किरपा है तो सुख काहे न होगा। वह हमेशा आप लोगों को याद किया करती है।"

"सच!" नसीम ने पूछा।

"हाँ"

"इन्हें ज़्यादा याद करती है कि मुझे?" नसीम ने गंभीर वातावरण को हल्का करने के लिये बात आगे बढ़ाई।

"दोनों को।" मदन ने सँभाल कर जवाब दिया।

"यह कैसे हो सकता है?"

"लेकिन हो तो यही रहा है। दोनों को बराबर याद करती है।"

बातों में शामिल होकर विनय ने कहा, "मुझे ज़्यादा याद करती होगी, क्यों मदन?"

"भैया, अब यह आप जानें। मुझे कोई एतराज तो नहीं है।" मदन मुस्कराया।

"क्यों नसीम, तुम्हें तो कोई एतराज़ नहीं है ?"

"चलो, बस करो, ज़रा सा मौक़ा लगा और फबती कस दी।" नसीम ने दुलरा कर कहा, "यह कौन सा मज़ाक है ?"

"और मदन, तुम्हें कौन ज़्यादा याद आता है!" विनय ने मुस्कराते हुये बोला।

"ये," नसीम की ओर इशारा करते हुये मदन बोला।

नसीम और विनय दोनों को काफ़ी अच्छा जवाब मिल गया। दोनों एक दूसरे को देख खिलखिला पड़े।

शाम ही से आँधी तूफान चल रही थी। मदन अभी तक नहीं आया। छबिया का मन डर रहा था। 'कहाँ रह गये अभी तक। आये नहीं। दोपहर के गये अभी तक वापस आने का नाम नहीं लिया। कह गये थे घड़ी दो घड़ी में लौट आऊँगा।' छबिया इसी प्रकार सोचती भीतर बाहर कर रही थी। ज्यों ज्यों अँधेरा बढ़ता गया छबिया का जी ज़्यादा डरने लगा। बाहर चौधरी हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सबेरे जमुना प्रसाद के घर जो कुछ देखा उसकी गम्भीरता वह समझ रहे थे। मतई और राम लाल से भी बातें हो चुकी थीं। सभी चौकन्ना थे। गाँव में भी सनसनी थी। इधर उधर तरह तरह की खबरें उड़ रही थीं। चौधरी को चिन्ता बहुत थी। 'पंचायत का क्या होगा। आगे क्या होने वाला है। ज़रा सी बात पर ज़बरदस्ती बहाना ढूँढ कर उस दिन ब्याह के मौक़े पर दारोगा वारन्ट लेकर आ गया था। अब जब कि कमरे में बैठ बैठ कर तैयारियाँ हो रही हैं तब क्या होगा ? और मदन भी नहीं आया अभी तक।' उधर घने बादल आसमान पर छा रहे थे। आँधी अँधड़ से शोर मच रहा था। वातावरण भयानक था। चौधरी की फ़िक्र बढ़ती गई। खाँसते हुये भीतर आये। "मदन नहीं आया अभी तक, कहाँ रह गया ? इतनी देर हो गई, अब तक तो उसे वापस आ जाना चाहिये था।" छबिया को सुना कर कहते हुये चिन्तित चौधरी कुछ देर खड़े रहे। "जाऊँ देखूँ क्या ? शाइत गाँव में ही इधर उधर हो।" सलाह लेते हुये चौधरी ने छबिया से पूछा।

"आ जायेंगी अभी। आप कहाँ जायेंगे इतने तूफ़ान में। अँधेरा बहुत है।" छबिया ने सिर नीचा कर शर्माती सी धीरे से कहा।

"अच्छी बात है। थोड़ी देर और परख लूँ।" कहते हुये चौधरी फिर बाहर जा हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

आँधी तेज़ होती ही गई। ऐसा लगता था कि पेड़ पालो सभी उखड़ कर दूर जा गिरेंगे। घरों की खपरैलें उड़ जायेंगी। छबिया की चिन्ता बढ़ती गई। वह दरवाज़े पर खड़ी राह देखने लगी।

थोड़ी देर बाद मदन आया। चौधरी ने स्नेह से पूछा, "कहाँ रह गये थे बेटा? बड़ी देर कर दी!"

"हाँ दादा, बहुत देर हो गई। कई जगह गया था। कंघीगढ़ टोला में तो यह ख़बर है कि गिरफ़्तारी होने वाली है। वहाँ के लोग जोस में बहुत है। संतोष आज भी आने वाले थे, इसलिये रुक गया। अभी तक नहीं आये तो मैं वापस चला आया। लाला के घर भी गया था। मालूम हुआ तुमसे भेंट हो चुकी थी उनसे! कुछ कहते थे?"

"कहते क्या? परेसान हैं।" चौधरी ने जवाब दिया, "अच्छा जाओ, भोजन करो।"

भीतर आ मदन चौके के पास बैठा। दिया जलाना मुश्किल था। हवा तेज़ थी। लालटेन जला किसी तरह खाना खाया और चारपाई पर लेट बीड़ी सुलगाने लगा। छबिया भी किसी तरह कुछ खा पी कर आगई तो मदन ने उसे अपने पास खींच कर पूछा, "क्यों, बहुत राह देखनी पड़ी?"

"यह तो तुम्हारी पुरानी आदत है। हमेसा देर करने के आदी हो। जाते समय कहते हो घड़ी भर में आ जाऊँगा, आते हो पहर भर बाद।"

"काम जरूरी था। क्या करता?"

"काम तो तुम्हारे पास हमेसा जरूरी रहता है। मामूली काम तो तुम करते ही नहीं। इतनी आँधी चल रही थी।"

"तो क्या तुम डर रही थीं? भय लग रहा था?" मदन ने दुलार

से पूछा ।

ज़रा और नज़दीक आती हुई छबिया ने कहा, "देखो, रात बिरात इस तरह न रह जाया करो बाहर। दिन कुदिन है। होसियार रहना चाहिये। यहाँ हमारा जी भी डर रहा था। दादा घबरा रहे थे।"

"अच्छा कोसिस करूँगा। लेकिन वादा नहीं करता। काम का अलसेट लग जाता है, नहीं तो तुम्हारे बिना जी कहाँ मानता है?" मदन ने छबिया की ठोढ़ी छूते हुये कहा, "दिल में तो तुम बसी हो, बाहर मन कैसे लगे!"

"चलो हटो, बतोले बाजी मत करो। मुझे सब मालूम है। नसीम और बिनय बाबू से छुट्टी मिलती नहीं। बातें करते हैं ऐसी वैसी।"

"नहीं छबी, ऐसा न कहो। मैं चाहे जहाँ रहूँ—यह सरीर चाहे जहाँ रहे, दिल तो तुम्हारे ही पास मँडराया करता है। आओ, गुस्सा मत हो," कहते हुये मदन ने छबिया को अपनी ओर खींचना चाहा।

"अभी नहीं, दादा जाग रहे हैं। पानी वानी माँगेंगे तो आफ़त हो जायेगी।" छबिया ने धीमे से कहा।

मदन ने अपनी ओर जबरन छबिया को खींच उसके माथे को चूम लिया। हड़बड़ा कर छबिया खटिया के नीचे उतर गई। वह पास में चौखट के ऊपर बैठ गई। बगल में टिमटिमाती लालटेन जल रही थी। उसके क्षीण प्रकाश में छबिया सपने की रूप परी सी सुन्दर जान पड़ रही थी। मदन एक टक उसकी ओर देखता रहा। मदन की ओर छबिया देख कर भी देख न पाती। उसे लाज लगती थी। उसके बिखरे बिखरे से बाल, अधपुछी सी बिन्दिया और खिसकी खिसकी सी साड़ी उसके रूपाभ को स्पष्टता प्रदान कर रही थी। छबिया इस रूप में भी कितनी मनमोहिनी, कितनी आकर्षक, कितनी लुभावनी लग रही थी यह मदन के दिल से कोई पूछे। आँगन में आँधी तो कम हो रही थी लेकिन वर्षा की बूँदें एक एक दो दो गिर रही थीं। मदन रह रह सिहर उठता। उसके रोयें भरभरा उठते। मन में चिन्ता की ज्वाला जल रही थी। ऊपर छबिया के सहज सौन्दर्य की शीतल

ज्योत्सना की चादर फैली थी। भीतर की आग बाहर की शीतलता में ढँकी सी जा रही थी। मदन के हृदय की गति धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। इन्तज़ार के कारण, दुविधा के कारण, आशंका के कारण। घूम कर उसने करवट ली।

उसने फिर बीड़ी जलाई और चुपचाप धुआँ उड़ाने लगा।

छबिया को मदन का करवट ले लेना अच्छा न लगा। वह मदन को लालटेन के प्रकाश में लगातार देखती रहना चाहती थी। उसे दूर से बैठ कर अपने स्वामी, अपने राजा का दर्शन करने में सुख मिलता था। नज़दीक आने पर उसकी आँखें अपने से मुँद जाया करतीं। उस समय वह कुछ न देख पाती, कुछ न सुन पाती, कुछ न समझ पाती। उस समय उसके शरीर के भीतर बाहर न जाने क्या होने लगता—एक सनसनी—बिजली सी दौड़ती रहती बदन में। बोटी बोटी नाचने लगती। उसकी पलकें बोझिल हो आँखों को ढँक देतीं। हाथों पैरों का हिलना डुलना मुश्किल हो जाता। सभी जैसे भारी हो जाते। इस लिये अक्सर वह दूर ही से बैठ कर या दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर मदन को देखा करती। इस समय मदन ने करवट ले लिया तो उसे अच्छा न लगा। उसकी मौन आराधना और मूक दर्शन में बाधा पहुँची थी।

"इधर मुँह करके लेटो, वैसे क्यों हो गए?" आग्रह किया छबिया ने। अब तक मदन अपनी परिस्थिति भूल विनय की बातों को सोचने लगा था। 'कल क्या होगा? क्या सचमुच धर पकड़ होगी? क्या सच-मुच छबिया से मुझे अलग होना पड़ेगा? क्या सचमुच यह सब होगा, सचमुच?' वह सोच रहा था।

"ए, सुनते नहीं। इधर देखो। इधर मुँह करो।" छबिया ने दोहराया।

"अच्छा," कहकर मदन फिर करवट ले, छबिया की ओर मुँह करके लेट गया।

"इतने चुप क्यों हो? कुछ बोलो।"

"क्या बोलूँ छबी, मन में बड़ी चिन्ता है।"

"चिन्ता काहे की ? क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं हुआ, तो अभी कुछ नहीं, आगे होने वाला है शायद ! मुझे आगे के दिनों को सोच घबराहट हो रही है।"

छबिया कुछ समझ न सकी। मदन की बातें साफ़ न थीं। वह मदन की ओर एक टक देखती रह गई।

"सुनो, कल मैं पकड़ जाऊँ तो तुम रोओगी तो नहीं?" रुकते रुकते भी मदन कह गया। शब्द जैसे बरबस उसके ओठों से फिसल पड़े। मदन का दिल ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा।

छबिया की बोली रुक गई। गले में जैसे जाला लग गया। आवाज़ ही नहीं फूटती थी। वह काँप उठी। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर में चक्कर आने लगा। किस दुनियाँ से किस दुनियाँ में ला पटक दी गई बेचारी। उसने अपने घुटनों के बीच में सिर डाल लिया।

मदन की समझ में अब आया कि उसकी इस बात से छबिया को गहरा धक्का लगा था, बिजली का सा। मदन मूढ़ सा पड़ा देखता रहा।

बाहर हुक्के की गुड़गुड़ाहट की जगह नाक की खरखराहट सुनाई दे रही थी। दादा गहरी नींद में सो रहे थे। हवा धीरे-धीरे तेज़ होने लगी। फिर बूंदें मोटी और जल्दी जल्दी गिरने लगीं। और फिर, पानी बरसने लगा। तेज़ हवा और पानी! और मदन के दिल की धड़कन भी तेज़! उसने छबिया की ओर देखा। उसका शरीर हिल रहा था, जैसे वह काँप रही थी। जैसे गहरी साँसों के कारण उसकी छाती फूल फूल आती। मदन की दशा विचित्र थी। चाहता था उठकर, दौड़कर छबिया को बाहों में समेट छाती से चिपका ले। लेकिन शरीर अशक्त था। शिथिलता और बेबसी और मन की परेशानी भीतर जैसे सब कुछ खोखला हो रहा था। प्रयत्न करने पर भी वह उठ न सका।

वर्षा और भी तेज़ हुई। हवा और भी तेज़। छबिया उसी तरह बैठी थी। मदन सिहर उठा। शीतल हवा ने उसके सारे शरीर को फिर कँपा दिया। वह उठा और झपटकर छबिया के पास पहुँच, उसे

उठा लिया। छबिया की आँखें सूज रही थीं। गालों पर आँसू की कितने धारें बह चुकी थीं। गाल भीग गए थे! मदन ने छबिया को अपनी ओर ज़ोर से खींच कर दबा लिया।

लालटेन की काँपती क्षीण प्रकाश रेखा ही इस दम्पति के प्रेम परिरम्भण की मूक साक्षी थी। हवा तेज़ हुई। ज्योतिशिखा काँप उठी। मदन के ओठ छबिया के ओठों से मिल गये। छबिया ने आँखें उघार मदन की ओर देखा। ज्योति शिखा बुझ गई।

पानी तेज़ होता गया। आंधी भी तेज़ होती गई। नसीम बारजे पर खड़ी इन्तज़ार करती रही। सड़क पर राही भी आते जाते दिखाई नहीं देते थे। घण्टों खड़ी खड़ी थक जाने पर नसीम कमरे में वापस आ बैठी ही थी कि सीढ़ी पर विनय ने आवाज़ दी। नसीम सीढ़ी पर उतर गई। देखा, विनय पानी से भीगा काँप रहा था। उसे वापस ला, कपड़े बदलने को कह वह चाय बनाने चली गई। विनय ने कपड़े बदले और आराम कुर्सी पर टाँग पसार कर बैठ गया। सिगरेट का धुआँ खींचते हुए वह दिन की बातों पर ग़ौर करने लगा। बिजलीघर, भारतीय प्रेस, कुली युनियन सभी तसवीर की तरह उसकी आंखों के आगे आते रहे। आज वह कितना दौड़ा था, कहाँ कहाँ गया था, क्या क्या किया था? वह सब सोचता रहा। माधोपूर की याद आते ही उसका दिल बैठने लगता। यहीं पर कुछ न कुछ गड़बड़ी हो सकती थी। ऊँः देखा जायेगा। जो होगा सो होगा। लापरवाही से विनय बड़बड़ा उठा। 'मज़दूरों में तो यारों की दाल गलेगी नहीं, दूसरी जगहों में चाहें जो कर लें।'

नसीम चटपट चाय की ट्रे ले आई। प्याली तैयार कर विनय की ओर बढ़ाती बोली, "लो, जल्दी करो, पी डालो वरना ठंढ लग जायेगी।"

विनय ने चाय की प्याली ले ली। वही प्याली थी, पीली ज़मीन और बैगनी चित्रों वाली। नाविक डांड़े मारता जा रहा है सधे हाँथों से और बैठी लड़की घबरा रही है।

हल्की सी मुस्कराहट के साथ विनय ने कहा, "यह चित्र देख रही हो ? नाविक के हाँथ कितने सधे हुये हैं।"

"और पास में बैठी लड़की किस तरह घबरा रही है, यह भी मैं देख रही हूँ।" नसीम मुस्करा पड़ी।

चाय की चुस्कियाँ लेता हुआ विनय बोला, "हमारे मज़दूर तो सब ठीक हैं। वहाँ तो कुछ गड़बड़ी नहीं हो सकती, हाँ माधोपूर का मामला टेढ़ा है। जमुना प्रसाद वग़ैरह तो खार खाये बैठे हैं। नथुआ और उसके साथियों को भी मौक़ा मिल जायेगा। ये लोग ज़ुल्म, ज़्यादाती करेंगे तो गाँव वालों को रोकना मुश्किल हो जायेगा। मुझे माधोपूर की बहुत फ़िक्र है नसीम! अगर मदन पकड़ा गया तो छबिया का क्या होगा ? मदन को अभी से हटाया तो जा सकता है, लेकिन ऐसे मौक़े पर उसका गाँव में रहना ही ठीक होगा। इसीलिये मदन से तिड़ी हो जाने के लिये नहीं कहा।"

"चाय पिये जाओ विनय, ज़्यादा फ़िक्र मत करो। जो होगा देखा जायेगा। अब बच के निकल तो सकते नहीं। जो पड़ेगा झेला जायेगा। कुछ लाइट बातें करो। ज़्यादा परेशान मत हो।" नसीम ने समझाया।

बाहर आँधी और पानी बहुत तेज़ी पर थे। दरवाज़े धड़ाधड़ बोल जाते। यकायक धड़ाका होता तो नसीम चिहुँक उठती। विनय ने दो तीन प्याले चाय के पिये। सिगरेट जलाते हुये उसने कहा, "नसीम, बाहर आँधी पानी बहुत तेज़ है। घटाटोप अन्धकार में रास्ता दिखाई नहीं देता।"

"इसी लिये तो मेरा जी घबरा रहा था। कब से बारजे पर खड़ी खड़ी इन्तज़ार करती रही हूँ। राह देखते देखते आँखें पथरा गईं। ऐसे वक़्त तो जल्दी चले आने की कोशिश किया करो।"

"आँधी और पानी और अँधेरा, तुम ठीक घबरा रही थीं। लेकिन अब तुम जी कड़ा करना सीखो। घबराने से अब काम नहीं चलेगा। कई बार तुम्हें मैं सारी परिस्थिति बता चुका हूँ। कल से हमारा इम्त-

हान होगा। मुमकिन है उसमें हमारे बहुत से साथी काम आ जाएँ। हमें हर एक ख़तरा उठाने के लिये तैयार रहना चाहिये। हमने यह निश्चय किया है कि हम कल वाली आँधी से, जिसकी भयानकता का अन्दाज़ लोगों को नहीं, जो कितने ही आराम से सोये पंछियों के नीड़ों को तार तार कर देगी, भिड़ेंगे। हम उसके साथ नहीं बहेंगे, उसका मुक़ाबिला करेंगे। कितना मुश्किल काम है! आँधी के मुक़ाबिले अपने पैरों को जमाये रहना, जब कि मोटी मोटी दीवारें ढह जायेंगी, जब कि मोटे से मोटे पेड़ उखड़ जायेंगे, आसान काम न होगा। लेकिन हमने डट जाने का प्रण किया है।" विनय के स्वर में कम्पन न था, तेज़ी और दृढ़ता थी।

"मैं समझ रही हूँ विनय। खूब समझ रही हूँ। तुम और तुम्हारे साथी मज़बूत कलेजे के आदमी हैं। तुम ज़रूर कामियाब होगे।"

"इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। साथी राष्ट्रकर्मी कहेंगे, 'तुम देशद्रोही हो, ग़द्दार हो, देश के साथ नमकहरामी कर रहे हो।' शासक समझेंगे, 'एक थैली के चट्टे बट्टे हैं। दोनों में कोई अन्तर नहीं। दोनों के साथ एक ही सा व्यवहार होना चाहिये।' और इन दो पाटों के बीच में हम पीसे जायेंगे। जानती हो हम जनता और पुलिस के बीच में खड़े होकर दोनों के मुठभेड़ को रोकेंगे। जनता की गाली और प्रताड़ना, शासकों के ज़ुल्मों की बौछार और बीच में हम थोड़े से लोग! बड़ा मज़ा आयेगा।" विनय ने सूखी हँसी हँस कर कहा।

नसीम चुप रही तो विनय ने फिर कहा, "तुम चुप हो, ठीक है, तुम्हें चुप ही रहना चाहिये। चुप रह कर ही अपना दिल और दिमाग़ दुरुस्त रखा जा सकता है।"

नसीम फिर भी न बोली।

विनय ने चाय की प्याली उठा वह चित्र नसीम को दिखाया, "देख रही हो इसे? तुमने क्या कहा था उस दिन—'मर्द वह है जो लहरों को चुनौती दे, लहरों की चुनौती स्वीकार करे और उनकी छाती को चीरता हुआ अपनी नाव किनारे तक ले जाय'—याद है?"

"हाँ, खूब याद है।"

"तो आज हम लहरों की चुनौती स्वीकार करने जा रहे हैं। पाल नहीं है। आँधी चल रही है। निविड़ अँधेरा है। उत्ताल तरङ्गें हमें और हमारी नाव को निगल जाना चाहती हैं। लेकिन हम अपनी नाव खेते ही जायेंगे, सधे हुये हाँथों से। उम्मेद है कामियाब भी होंगे।" गर्व से विनय ने कहा।

"ज़रूर कामियाब होगे विनय!"

"तुम कहती हो नसीम?"

"हाँ।"

"बहुत अच्छा! प्रतिकूल परिस्थितियों में साथ वालों का ही सहारा होता है। तुम मेरी हिम्मत बढ़ाती रही तो मैं पीछे न हटूँगा। कल के सैलाब का मुक़ाबिला हिम्मत और जवाँमर्दी से करूँगा, नसीम!" विनय भावुक हो रहा था।

उसने सिगरेट जलाई और फिर कहने लगा, "नसीम, एक बात कहनी है, एक चीज़ माँगनी है।"

"कहो,"

"मानोगी। इन्कार तो नहीं करोगी?"

"तुम्हें कुछ शक है क्या?"

"नहीं, नहीं, शक नहीं। कहते हुये जी डरता है।"

"मुझसे कहते हुये तुम्हारा जी डरता है? नहीं विनय, कहो।"

"कहूँ? अच्छा, अकबर सो गया है?"

"हाँ।"

"कमरे के सब दरवाज़े बन्द कर दो।"

नसीम उठी और एक एक कर उसने सभी दरवाज़े बन्द कर दिये। वापस आ चुपचाप विनय के सामने खड़ी हो गई।

विनय उठा और अपने कमरे में जा एक मिनट में वापस आ गया। नसीम की ओर देखकर उसने कहा, "नसीम, तुम अपने कपड़े बदल डालो। छबिया की शादी के दिन जो कपड़े तमने पहिने थे उन्हें

पहिन लो और उसी तरह बिंदिया भी लगा लो।"

नसीम एक क्षण रुकी जैसे सहम रही हो, फिर अपने कमरे में चली गई। पाँच मिनट बाद कपड़े बदल कर वापस आ गई। विनय ने देखा नसीम, वही उस दिन की नसीम, छबिया की शादी के दिन की नसीम, उसके सामने खड़ी है। वह काँप उठा, रोयें खड़े हो गये।

"बिजली बुझा दो।"

यंत्र चालित सी नसीम प्लग के पास गई और बटन दबा दिया। बाहर आँधी और पानी की तेज़ आवाज़ अब भी सुनाई पड़ रही थी। भीतर विनय का दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। उसने अपने ओंठ दबाये, शक्ति बटोरी और बोला, "इधर आओ, मेरे पास बैठो।"

नसीम पास आ सटकर बैठ गई।

विनय ने जेब से मोमबत्ती निकाली और जलाकर उसे मेज़ पर रख दिया। मोमबत्ती के शीतल प्रकाश में नसीम का सौंदर्य निखर आया। उसके मुख पर लजा की लाली थी। आँखों मे मद था। सिर झुकाये संगमरमर की मूर्ति सी सामने बैठी रही। मोमबत्ती की प्रकाश रेखा सीधी, शान्त, स्थिर थी। बाहर के अँधड़, तूफ़ान का उसके ऊपर कोई प्रभाव न था। वह जलती जा रही थी धीरे, धीरे।

विनय ने सिर ऊपर किया।

नसीम ने सिर ऊपर किया।

आँखें मिल गईं।

नसीम ने पूछा, "अब!"

"और कुछ नहीं, तुम ऐसी ही बैठी रहो और मैं तुम्हें देखा करूँ, जीभर, रात भर, जनम भर!" विनय के ओंठ काँप कर रह गये।

मोमबत्ती जलती रही। नसीम बैठी रही। विनय बैठा रहा। दोनों के हृदय की धड़कन साथ साथ तेज़ होती रही! और दोनों एक दूसरे के सामने बैठे रहे अचल, अडोल मूर्तियों की तरह—कब तक? कितनी देर तक? पता नहीं!

६

सबेरे ही पुलिस की लारियाँ शहर की छाती पर दौड़ने लगीं। हर मोड़ पर पहरा हथियार बन्द पुलिस और फ़ौजवालों का। गली गली में लाल पगड़ी, जगह जगह पर उनका जमघटा। जनता में भी सनसनी। गुट का गुट अख़बारों का कालम देख रहा था। प्रस्ताव पास हो गया। अब क्या होगा? गाँधी जी ने आन्दोलन नहीं छेड़ा। अभी वह वाइसराय को पत्र लिखेंगे, चियांग-काई-शेक, रुज़वेल्ट और स्तालीन के पास सँदेसा भेजेंगे। कुछ लोगों को कुछ राहत भी मिली, लेकिन पुलिस की सरगर्मी से सनसनी बढ़ती ही गई। ख़बर आई, काँग्रेस दफ़्तर पर पुलिस का पहरा हो गया। सभी काग़ज़ात पुलिस उठा ले गई। शोर हुआ, पं० नरोत्तम प्रसाद सोते से जगा कर गिरफ़्तार कर लिये गये, प्रेस परपुलिस का ताला पड़ गया। एक, दो, तीन, सभी नेता धड़ाधड़ गिरफ़्तार होने लगे। शहर और ज़िला काँग्रेस कमेटी के कोई भी ज़िम्मेदार सदस्य नहीं बचे। गिरफ़्तार होकर कोतवाली के लाक अप में पहुँचे।

आठ बजे ख़बर आई, रेडियो से, गाँधी जी गिरफ़्तार हो गये, सभी काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर तड़के ही पकड़ लिये गये। ख़बर आई, बम्बई में हड़ताल हो रही है, हंगामा मचा है। सुना गया, नेता न मालूम कहाँ भेज दिये गये। पता चला गाँधी जी भी शहर बाहर कहीं ले जाये गये। शोर हुआ, बम्बई में गोली चल गई। लोगों में तरह तरह के विचार उठने लगे। किसी ने सोचा नेता अफ्रीका भेजे जायेंगे। दूसरों ने कहा उन्हें लड़ाई का क़ैदी बनाकर कहीं डाल दिया जायेगा। उनकी जान हिफ़ाज़त से है इस पर भी लोगों को शक होने लगा।

विनय के मकान पर सबेरे ही तलाशी आई। उसका कमरा उलट पुलट दिया गया, किताबें बिखेर दी गईं। सामान तहस नहस कर दिये गये। नसीम के सामानों का भी यही हाल हुआ। आपत्तिजनक कुछ भी न मिलने पर तलाशी लेने वाले चले गये। विनय साइकिल उठा माधोपूर की ओर लम्बा हुआ। देखा, मदन का घर घिरा हुआ है। मदन लापता है। पुलिस के अफ़सर चौधरी रामदीन से तरह तरह के

सवाल पूछ रहे हैं। पता चला लाला रामलाल, मतई चाचा और पंचायत घर में भी तलाशी हुई थी। पंचायत घर उजाड़ डाला गया। गाँव के नौजवान घर छोड़ छोड़ भाग गये हैं। औरतें सभी कोठरियों में बैठी हैं। विनय साइकिल ले पंडित जी के यहाँ पहुँचा। वहाँ सब कुछ वीरान था। नौकर ने आँखों में आँसू भर कर कहा, "उन्हें तो सबेरे ही पकड़ ले गये। बेचारे कुछ भी न कर पाये।" 'हूँ' कहकर विनय लौटा और मज़दूरों की ओर तेज़ पैडिल मारता हुआ निकल गया।

दस बज चुके थे। बाज़ारों में हड़ताल हो चुकी थी, बिना किसी के कुछ कहे सुने। मज़दूरों ने भी हड़ताल का एलान कर दिया था। कुलियों ने भी। गाँधी जी की गिरफ़्तारी पर भी हड़ताल होने में कोई सन्देह हो सकता है? कौन है जो ऐसे मौक़े पर अपने काम पर जायेगा? फैक्टरियाँ धड़ाधड़ बन्द होने लगीं और मज़दूर नारे लगाते हुए बाहर निकल आये। भीड़ बढ़ने लगी। जनता की अपार भीड़, जन समूह उमड़ता हुआ। सामने पुलिस वालों का पहरा।

हथियारबन्द, घोड़सवार, पैदल! जलूस को किसी ने नहीं रोका। जलूस बढ़ता ही गया। पार्क में पहुँच कर सभा हुई। विरोध प्रस्ताव पास कर सभा ख़त्म हुई। भीड़ छटने लगी। लोग गरोहों में सड़क पर बातें करते घूमने लगे।

विनय जलूस में शामिल था, सभा में भी। सभा से लौट कर वह पार्टी दफ़्तर पहुँचा। दूसरे साथी भी आगये थे। बात चीत शुरू हो गई। चट पट घन्टे भर में बात चीत समाप्त हो गई और सभी साथी अपने अपने हल्कों में चले गये। विनय ने फिर साइकिल घुमाई। वह माधोपूर जा पहुँचा। वह सीधे मतई चाचा के घर गया और मुँह धोने के लिये एक लोटा पानी माँग बात चीत में लग गया।

"मदन तो निकल गया?" विनय ने मतई चाचा की ओर देख कर पूछा।

"हाँ"

"और किसी की गिरफ़्तारी तो नहीं हुई ?"

"नहीं, कंघीगढ़ टोले में तलाशी हुई थी। लेकिन धर पकड़ नहीं हुई।"

"तुम्हारे यहाँ क्या किया ?"

"कुछ नहीं, सामान की औन पौन, उलट पुलट कर, वापस चले गये।"

"कुछ कहा, डराया धमकाया।"

"नहीं, कुछ नहीं कहा।"

कन्हई पानी लेकर आया। "कुछ खालो भैया," आग्रह से कहा कन्हई ने।

"हाँ, अभी कुछ नाश्ता नहीं किया है। दिन भर दौड़ना है, थोड़ा गुड़ ले आओ जल्दी से।" विनय ने कहा।

मुँह धोकर गुड़ खाया, पानी पिया, साइकिल उठाया और मदन की ओर बढ़ा। कहता गया, "घबराना नहीं, मैं घूम फिर कर यहीं रहूँगा। कोई ख़ास बात हो जाय तो घर पर या पार्टी दफ़्तर में ख़बर कर देना।"

चौधरी रामदीन उदास बैठे थे। विनय उनके पास जा बैठा।

"तुम्हारे यहाँ क्या क्या हुआ चौधरी ?" विनय ने पूछा।

"तलासी हुई, मदन को ढूँढा, उसे न पाकर खोटी खरी सुनाई और धमकी देकर चले गये। उनका ख़्याल है कि मुझे यह पता है कि मदन कहाँ है। चीज़ बस्तु उठा ले गये। छबिया की कोठरिया में भी गये थे।"

"उससे तो कुछ नहीं बोले ?"

"नहीं, वह दूर खड़ी हो गई थी, तलाशी लेकर चले गये।"

"अच्छा, मदन कहीं इधर उधर जाने की बात कर रहा था रात को ?"

"नहीं, देर में आया और खाना खा कर सो गया। कुछ बात नहीं हुई।"

"हूँ ।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। सिगरेट जलाते हुये विनय ने पूछा, "तलाशी के वक़्त गाँव के कौन कौन लोग थे ?"

"नथुआ था, उसके साथ के दो तीन और थे। पुलिस के साथ भीतर भी गये थे। रोकने से माने नहीं।"

"हूँ।" थोड़ी देर चुप रह कर विनय ने गंभीर होकर फिर पूछा, "कहाँ है छबिया ?"

"भीतर है, बुलाऊँ ?"

"हाँ बुला लो, या कहो तो मैं ही मिल आऊँ !"

"अच्छी बात है, आओ" कह कर चौधरी रामदीन आगे बढ़ कमरे में गये और खाँसते हुये बुलाया, "बिटिया, देख विनय भैया आये हैं।"

सिर नीचा किये छबिया आई। विनय के पास आते ही उसकी हिचकियाँ बँध गई। विनय ने चाहा कि उसे समझाये, लेकिन जितना ही वह उसे समझाने की कोशिश करता छबिया की रुलाई उतनी ही अधिक बढ़ती जाती थी। विनय परेशान था। उसका गला रह रह कर भर आता था। मदन का इस प्रकार ग़ायब हो जाना आश्चर्य की बात थी। उसने काफ़ी चुस्ती से काम लिया था। लेकिन गया कहाँ ? विनय ने सोचा, 'यह बेचारी भोली लड़की, इसको क्या पता कि यह सब क्यों और कैसे हो रहा है! उसके दिल की पीड़ा कौन समझ सकता है! अभी अभी ब्याह हुआ। चार दिन भी साथ रहने न पाई और ऐसी आफ़त आगई !' उसने फिर समझाने की कोशिश की, "घबराओ नहीं छबी, मदन जहाँ भी है अच्छी तरह है। मुझसे भेंट तो होगी ही। मैं जल्द ही तुम्हें उसकी ख़बर दूँगा। थोड़ा सब्र से काम लो। इस तरह तो तुम अपनी तबियत ख़राब कर लोगी।"

"कहाँ चले गये, मुझ से कुछ बताया भी नहीं।" सिसकते हुये छबिया ने कहा, "पहिले मुझसे कुछ भी नहीं कहा।"

"कैसे कहता मदन ? उसे ख़ुद भी तो नहीं मालूम था। उस वक़्त

कहने बताने का मौक़ा कहाँ था ? शान्त रहो। मैं उसका पता लगाने ही जा रहा हूँ।" कहते हुये विनय चलने को उठा।

"बहिन जी को भेज दीजियेगा।" छबिया ने प्रार्थना की।

"अच्छी बात है। मैं उन्हें जल्दी ही भेज दूँगा। फ़िक्र मत करो।" कहते हुये विनय बाहर आ गया और साइकिल ले कर चल दिया। रास्ते में उसका गला कई बार भर आया।

घर पहुँच कर देखा तो ताला बन्द था बाहर से। नसीम, अकबर किसी का पता न था। विनय की समझ में कुछ नहीं आया। वह खड़ा खड़ा वहीं बहुत देर तक सोचता रहा।

× × ×

संतोष के जोश का ठिकाना न था। वह रात भर यों ही जागता रह गया था। सबेरे हड़तालों में आगे आगे कूद रहा था। सभा स्थल पर भी मौजूद था। उसके बाद वह अपने साथियों के बीच में पहुँचा। बातें होने लगीं कि क्या किया जाय। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। क्या प्रोग्राम बनाया जाय, क्या स्कीम निकाली जाय कि जनता में जोश आये! कई तरह की बातें कहीं गईं, लेकिन किसी की भी बात ऐसी न थी जिस पर सभी साथी एकमत होते। आख़िर में तय हुआ कि एक पर्चा निकाला जाय जिसमें आज़ादी के लिये मर मिटने को तैयार होने के लिये लोगों से कहा जाय। इस काम की ज़िम्मेदारी संतोष के ही ऊपर दी गई। यह भी बँटवारा हो गया कि किन किन मुहल्लों में कौन कौन साथी पर्चा बाँटने जायेंगे।

जितने साथी आये थे सभी लोगों के चेहरे पर किंकर्तव्यविमूढ़ता की गहरी छाप थी। करना बहुत कुछ चाहते थे, हृदय में उत्साह बहुत था, लेकिन क्या करें यह समझ में नहीं आता था। संतोष की स्कीम किसी भी साथी की समझ में नहीं आई। ऐसा लगा कि उसकी लम्बी चौड़ी बातों में कोई तत्व नहीं है। एक साथी ने कहा भी था, "संतोष, तुम हाँकते लम्बी चौड़ी हो। लेकिन इससे क्या फ़ायदा ? जो तुम सोच और कह रहे हो वह हो भी सकता है ? जनता के भीतर जो जोश तुम

देख रहे हो यह कितने दिन तक टिकेगा ? उसको सङ्गठित रूप देना और सही ढङ्ग से उसे इस्तेमाल करना आसान काम नहीं है।"

"तुम्हारे कहने का मतलब यह हुआ कि हम कुछ कर ही नहीं सकते। तो फिर हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रहें ? इतना अच्छा मौक़ा है। जोश है सभी तरफ़। हमें इस मौक़े को फ़ौरन इस्तेमाल करना चाहिये।"

"यानी क्या किया जाय ?"

"काँग्रेस के लोगों से मिल कर उनको प्रोग्राम का पता लगाया जाय। उनके साथ मिल कर काम किया जाय और क्या ?"

"तो फिर आप जाइये। जाकर उन लोगों से मिलिये। गिरफ़्तारियों के मारे कोई बचा भी है। आफ़त तो मची है सब तरफ़!"

"ख़ैर मैं कोशिश करता हूँ। उन लोगों के भी रङ्ग-ढङ्ग देखे जाँय।"

काँग्रेस वालों से मिलने के बाद रात में संतोष रिपोर्ट देंगे यह निश्चय हुआ। इसके बाद उन लोगों की बैठक समाप्त हो गई।

काँग्रेस के अधिकतर नेता तो गिरफ़्तार हो ही चुके थे। जो बचे थे वह बिल्कुल समझ नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाय। संतोष जिन जिन लोगों के पास पहुँचा सब ने यही कहा, "मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। जब तक कोई आदेश ऊपर से न आवे हम लोग अपने मन से क्या कर सकते हैं ? हमें परिस्थिति का अध्ययन करते रहना चाहिए।"

संतोष ने बहुत काफी बहसें कीं। समझाने की कोशिश की कि "भारतीय क्रान्ति आरम्भ हो गई है। हम लोगों को उसे सफल बनाने में फ़ौरन जुट जाना चाहिये। यह समय सोने का नहीं है। आप यों ढीली-ढीली बातें करके जनता के उत्साह को ठण्ढा कर देंगे। और लगी हुई आग जो अभी जलना शुरू ही हुई है, बुझ जायेगी।" लेकिन संतोष की बातों का कुछ भी असर नहीं हुआ। ये नेता अपने मन से कुछ भी करने को तैयार न थे। जब तक आपस में मिलकर राय न कर लें, ऊपर से कोई आदेश न मिल जाय, रास्ता क्या है इसका पता न लग जाय कैसे क्या किया जाय ? संतोष को नेताओं के इस रुख़ से निराशा हुई।

सोचने लगा, ये डरते हैं, कायर हैं करना वरना कुछ है नहीं, बस बहाना बनाते हैं इधर उधर का। पहिले से प्रोग्राम बनाया नहीं, अब हाँथ पर हाँथ धरे इधर-उधर बग़लें झाँकते हैं। और जब रास्ता बताया जाता है तो हिंसा अहिंसा और दुनियाँ भर की लचर दलीलें देकर कुछ न करने का बहाना बताते हैं। असन्तोष और खीझ में संतोष लौट आया।

नसीम युनिवर्सिटी से लौटी तो बहुत उद्विग्न थी। वहाँ का वातावरण सहज न था। जोश के मारे विद्यार्थियों ने उसकी एक बात भी न सुनी। इतने दिनों तक वह विद्यार्थियों के बीच में काम करती रही, लेकिन उसे कभी इस तरह की बातें सुनने को नहीं मिलीं। जोश में आदमी ज़रूर बहुत-सी बातों का ध्यान नहीं रख पाता। लेकिन अपने साथियों से इस बात की उम्मीद वह बिल्कुल नहीं रखती थी कि उनका व्यवहार इतना गन्दा, और नामुनासिब होगा। वह झल्लाकर चली आई। उनकी कौन्सिल की मीटिङ्ग रात को होने वाली थी। रास्ते में वह सोचती चली आ रही थी कि रातवाली मीटिंग में क्या करना चाहिए। रिक्शा बढ़ा चला आ रहा था, वह सोचती जा रही थी। घर पर रिक्शा पहुँचा तो उसने विनय को ध्यान मग्न खड़े धुआँ उड़ाते देखा। जल्दी से रिक्शा छोड़ वह विनय के पास आ बोली, "कहो, देर से खड़े हो तुम यहाँ?"

"हाँ, कोई पन्द्रह बीस मिनट हुये होंगे। चलो दरवाज़ा खोलो, बहुत थका हुआ हूँ। कहाँ गई थीं तुम?"

दरवाज़ा खोलते हुये नसीम ने बताया, "मैं बहुत देर तक पशोपेश में थी कि क्या करूँ। ख़ुद मुझे जोश आ रहा था। यहां पर मुझे पता चला कि गाँधी जी और वर्किङ्ग कमेटी के सब नेता गिरफ़्तार हो गये। तुम थे नहीं कि पूछती कि क्या करूँ? कुछ देर सोचने के बाद मैंने युनिवर्सिटी ही जाना तय किया। वहाँ का हाल देखा। लड़के बहुत जोश में थे। तुम्हारे विद्यार्थी साथी वहाँ थे। सब को समझाने की कोशिश कर रहे थे कि वे हड़ताल करें लेकिन ऊधम न मचावें। पर वह लोग कब मानने वाले थे? कामरेडों की बात सुनने के लिये वे

तैयार नहीं थे। तुम्हारे ये विद्यार्थी भी बस यों ही होते हैं।"

"मेरे विद्यार्थी क्यों? तुम्हारे साथ पढ़ने वाले तुम्हारे हुये कि मेरे।"

"यही सही, मेरा मतलब यह है कि जोश के बावजूद भी हमें दिमाग़ ठंढा रख कुछ प्रोग्राम बनाना चाहिये, उसे कामयाब करने की तरकीबें सोचनी चाहियें। वहाँ सभी लीडर थे, एक से एक दून की हाँकने वाले। मैंने उनसे कहा कि भाई तुम लोग एक कमेटी बना डालो, उसके हाथ में सारी ज़िम्मेदारी दे दो। वह कमेटी जो कुछ कहे उसे पूरी तरह मानो। कमेटी में ज़िम्मेदार ठंडे दिमाग़ वाले लोगों को रखो। बड़ी मुश्किल से कौन्सिल बनी। उसकी मीटिंग रात को आठ बजे है।"

"हूँ। अच्छा, हमारे कितने साथी हैं उसमें?"

"तीन हैं मुझे मिला कर।"

"कुल तायदाद कितनी है।?

"ग्यारह। कमेटी तो बन गई है, लेकिन बाक़ी चुनाव रात को होगा?"

"यानी तुम्हारी बात सुनी जायेगी वहाँ, ऐसी उम्मेद करना ग़लत न होगा? क्यों?"

"ऐसा तो नहीं है। तायदाद कम होने से क्या होता है? अगर हम लोग राय ठीक देंगे, हमारी बातें अगर ठीक होंगी तो उन्हें मानना पड़ेगा। न कैसे मानेंगे?"

"बहुत ठीक, डटी रहो।"

"और तुम क्या कर आये?"

"मैं माधोपुर दो बार गया था। सबेरे मदन को गिरफ़्तार करने आये थे। लेकिन वह तिराट हो गया। तलाशी लेकर लौट गये। मतई और बाबू रामलाल के घर भी तलाशियाँ हुई थीं। मगर कहीं कुछ मिला नहीं। पंडित जी की ख़बर तो तुम्हें मिल ही गई होगी?"

"हाँ, वह तो मुझे मालूम है। मंत्री जी भी पकड़ गये। कई और गिरफ्तारियाँ भी तो हुई हैं।"

"गिरफ़्तारियाँ बहुत हुई हैं। कौन पकड़ा गया, कौन बचा अभी इसका पूरा पता नहीं है। शाम तक सब मालूम हो जायेगा।"

"कुछ नाश्ता वाश्ता भी किया? मौक़ा ही नहीं मिला होगा!" नसीम को अब याद आया कि विनय सबेरे यों ही भाग गया था। उसका मुँह सूख रहा था। बाल बिखर रहे थे। कपड़ा भी नहीं बदला था।

मुस्कराते हुये विनय बोला, "आगई याद नाश्ते की, वाह रे औरत! कुछ हो जाय, आराम ज़रूर मिले मुझे!"

नसीम उठ कर चाय का पानी चढ़ाने गई और विनय ने कपड़े बदले। बाहर आया ही था कि बूढ़ा अकबर धीरे धीरे सीढ़ियों पर चढ़ता अन्दर आ गया। विनय को देखते ही उसकी भावुकता ज़ोर मारने लगी, "भैया, मैं भी जलूस में गया था।" अकबर ने उल्लास से, गर्व से बताया, "सोचता था कि क्या हर्ज है अगर पकड़ जाऊँ। जब गाँधी जी ऐसे बूढ़े पकड़ गये तो हमको क्या बहाना है। लेकिन किसी ने पकड़ा ही नहीं। सभा से लौट कर घूमते घामते मैं वापस आ रहा हूँ।"

"अच्छा, बहुत जोश आ गया? अगर गिरफ़्तार हो जाते तो?"

"क्या परवाह भैया। जब हमारे बच्चे किसी बात से नहीं डरते तो इस बूढ़े को क्या? रोटी खा खा के मर जाने से अच्छा है कि बहादुरी से मर जाऊँ।"

"पकड़ के जाते तो हम लोगों की याद आती तुम्हें?"

"यही तो एक कमज़ोरी है भैया। जब मैं सभा में जा रहा था, तो रास्ते में तरह तरह के ख़्यालात मन में उठ रहे थे। गिरफ़्तार होने के लिये तो मैं तैयार था, लेकिन बिटिया और तुम्हें सोच कर जी घबराने लगता था। बड़े मियाँ ने हमारे ही भरोसे बिटिया को यहाँ भेज दिया था। जब से बिटिया यहाँ आई और तुम लोगों का साथ हुआ, उसे जगह ज़िमीदारी, घर कुनबा किसी की याद नहीं रहती। इस छुट्टी में भी घर नहीं गई। कितना समझाया लेकिन कुछ असर नहीं हुआ।

बड़े मियाँ बूढ़े हो गये हैं, उनका कुछ ठिकाना नहीं है। अकेली बिटिया को ही सब कुछ देखना सुनना है, लेकिन बिटिया का ध्यान इधर नहीं है। यहाँ से बाहर जाने का उसका दिल ही नहीं करता।" वात्सल्य का स्नेह अकबर की आँखों से उमड़ना चाहता था, "वह जा भी कैसे सकती है ? तुम जो यहीं हो। भैया, नसीम बीबी का दिल ही ऐसा है। मुझे ही देखो। बूढ़ा हो गया हूँ कुछ कर नहीं सकता। लेकिन मुझे अपने साथ रखती हैं। कहती हैं 'पाल जिलाकर मुझे इतना बड़ा किया, अब तुम कहाँ जा सकते हो ?' रईसज़ादी है। दिल भी रईसों का पाया है।"

नसीम अन्दर आ गई। अकबर और विनय को बातों में लगा देख, वह मुस्करा पड़ी। अकबर ने नसीम को देखा तो उठ के चलने को हुआ। नसीम ने उसे बैठा लिया, "कहाँ जाते हो बाबा, चाय पियो यहीं ?"

"बिटिया क़सूर हुआ। तुम चली गईं तो मुझसे भी न रहा गया। सभा में चला गया था। तुम्हें तकलीफ़ हुई।"

"नहीं बाबा, मुझे तकलीफ़ नहीं हुई। कौन तुम रोज़ इधर उधर जाते हो। आज का दिन ही ऐसा है कि कोई अपने घर में बैठ नहीं सकता। लो चाय पियो", कहती हुई नसीम ने पहिला प्याला अकबर को ही बढ़ाया। अकबर धीरे धीरे सिर नीचा किये चाय पीता रहा। उसकी आँखों के कोर में आँसू के कण थे—स्नेहाश्रु के !

नसीम और विनय दोनों ने यह देख लिया, लेकिन छेड़ना ठीक न समझ दोनों अनदेखी कर गये। विनय ने बात चलाई, "उसके दिल पर क्या गुज़रती होगी। चार दिन भी अच्छे न बीत पाये कि आफ़त का यह पहाड़ आ टूटा। बेचारी के हौसले दिल ही में रह गये। उसको कुछ पता नहीं कि यह सब क्यों हो रहा है। कैसे हो रहा है।" सर्द आह भर कर विनय ने कहा।

नसीम अब बहुत गंभीर हो गई। उसे छबिया का ध्यान नहीं आया था अभी तक। उसका दिल कचोटने लगा। तड़प उठी नसीम, 'बेचारी गाँव की सीधी सादी लड़की, सियासत क्या है, क्या जाने ? कितनी तकलीफ़ होगी उसे इस वक़्त !'

"तुम उससे ख़ुद मिले थे ?" नसीम ने विनय से पूछा।

"हाँ, दोबारा गया था तो उससे मिला था। उसके पास तो बैठा नहीं जाता। बहुत रो रही थी बेचारी। आँखें सूज गई हैं।" दुखी हो विनय ने कहा।

"कुछ कह रही थी ?"

"क्या कहती ! ये लड़कियाँ देहात की, अपने मन की बात किसी से नहीं कह सकतीं। घुट घुट के मरना पड़ता है इन्हें। तुम्हें बुलाया है। चली जाना। हाल चाल देख लेना।"

"ज़रूर जाऊँगी। शाम को ही जाऊँगी। मेरी छबी, हाय उसे कितना दुख होगा। क्या गुज़र रही होगी उसके ऊपर इस वक़्त।" रुआसी हो गई थी नसीम।

"क्या बात है बिटिया ! तुम्हें क्या हो गया जो इतनी परेशान हो ?" अकबर ने पूछा।

"सुन नहीं रहे हो बाबा, मदन को तुम जानते ही हो, वही जो अक्सर यहाँ आया करता था। उसकी शादी कुछ दिन पहले हुई थी। उसको सवेरे पुलिस पकड़ने आई थी। वह निकल तो गया, लेकिन किसी को पता नहीं कहाँ गया है। उसकी औरत बहुत रो रही है।"

"क्यों न रोयेगी बेटी, रोना तो पड़ेगा ही उसे।" अकबर की पलकें फिर भीग गईं।

"बाबा, मेरा पैकेट ख़त्म हो गया। ज़रा नीचे दूकान से ले तो लेना, वही पासिंग शो।" विनय ने कहा बूढ़े अकबर को वहाँ से टालने के लिये।

अकबर सीढ़ियों से नीचे चला तो विनय ने कहा, "नसीम, अकबर के सामने ऐसी बातें न किया करो। जानती हो, बूढ़ा है, उसका दिल कितना कमज़ोर है। उसके सामने हँसी ख़ुशी की ही बातें करनी चाहिये।"

"ठीक कहते हो विनय। अकबर बहुत मुलायम दिल वाला आदमी है। मुझे बचपन से गोद में खेलाया है। चाहती हूँ इस उम्र में इसे

तकलीफ़ न हो, लेकिन कुछ न कुछ किया ही करता है। बहुत नेक आदमी है। यों कुछ बोलता नहीं, चुपचाप अपना काम किया करता है। लेकिन हम लोगों का क्या हाल है, हमारे दिमाग़ कितने परेशान हैं, यह सब वह जानता है।" नसीम ने बताया।

अकबर सिगरेट लेकर वापस आया तो विनय ने उसे आराम करने को भेज दिया, "जाओ, बहुत थक गये होगे। ज़रा आराम कर लो।"

"आपने चाय अब पी है। खाना कुछ खाया नहीं। मैं आराम कैसे कर लूँ ?" कहता हुआ अकबर भीतर चला गया।

विनय जैसे तैसे खाना खाकर फिर चला गया। नसीम शाम तक घर में ही रही। आज उसे विनय का वियोग दुख दे रहा था। जितनी बार वह छबिया को याद करती उतनी ही बार उसे अपनी याद आती। 'मदन निकल तो भागा। लेकिन पुलिस के चंगुल से कोई कब तक बच सकता है! एक न एक दिन पकड़ ही जायेगा। विनय का भी कौन ठिकाना ? किसी भी वक़्त यह ख़बर सुनाई पड़ सकती है कि विनय गिरफ़्तार हो गया। छबिया को दुख हो रहा है। आज मुझे उसका एहसास हो रहा है। लेकिन अगर विनय पकड़ गया तो शायद मुझे उसका ज़्यादा एहसास हो सकेगा। और अगर विनय पकड़ गया तो मैं क्या करूँगी ? मैं भी वही करूँगी और क्या.? विनय जानता है कि मैं उसे धोखा न दूँगी। मेरा सब कुछ तो वही है। जब वही नहीं रहा तो मैं ही बाहर रह कर क्या करूँगी ? लेकिन मैं भी पकड़ गई तो अकबर का क्या होगा ? बेचारा रो रोकर घर जायेगा। मैं यह सब जानती तो उसे पहिले ही घर भेज देती। लेकिन अब क्या हो सकता है ? अब उसे यहाँ से हटाना ठीक नहीं होगा। वह जायेगा ही नहीं।' इसी प्रकार सोचते सोचते शाम होने को आई।

साइकिल लेकर नसीम चली तो अकबर ने कहा, "बीबी, जल्दी आ जाना। मौसम ख़राब है। रात करना ठीक न होगा। मैं राह देखूँगा।"

"अच्छा, अच्छा, घबड़ाओ न बाबा, मैं जल्दी आ जाऊँगी।"

कहती हुई नसीम साइकिल पर बैठ गई। रास्ते में वह छबिया और मदन की बातें सोचती रही। आज माधोपूर जाते हुये उसे डर लग रहा था। उस दिन जब छबिया की शादी थी, वह कितने जोश, कितने उत्साह से माधोपूर गई थी। आज हालत बदल गई है। इसलिये नसीम का मन डर रहा है। किसी तरह वह साइकिल बढ़ाती रामदीन चौधरी के घर पहुँच गई।

रामदीन दरवाज़े ही पर बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे। नसीम को देखा तो हड़बड़ाकर उठ गये और नसीम का स्वागत किया। नसीम चुपचाप चारपाई पर बैठी रही।

"अच्छी हो बिटिया? काहे को इतनी तकलीफ़ की?" चौधरी ने स्नेह से पूछा।

"नहीं, तकलीफ़ क्या है? छबी रानी को देखने आई थी। कैसी है हमारी छबी?"

"कैसी क्या है, बेचारी दिन भर रोती है। उसने न खाना खाया न पानी पिया। लाख समझाया लेकिन बच्ची है अभी। क्या समझे? मतई चौधरी भी आये थे। कह सुन गये हैं। अब तुम आई तो साइत कुछ खा पी ले। बड़ी परेशानी में जान फँस गई है। गाँव वाले डरे हुये हैं। सनसनी फैली हुई है। मैं तो कल ही से सब समझ रहा था।"

"हाँ, मुझे पता चल गया। ख़ैर, कोई बात नहीं है। मदन बहादुर आदमी है। उसका कोई एक बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैं ज़रा छबिया से मिल लूँ।" कहती नसीम भीतर आ गई।

नसीम को देखते ही छबिया ने झट से आँखें बन्द कर लीं, दोनों हाथों से। जैसे डर गई हो। नसीम ने उसकी चारपाई पर जा छबिया को गले लगा लिया। छबिया आँखें कस कर बन्द किये हुई थी। वह सिसकने लगी। सिर की साड़ी खिसक गई। उसके बाल बिखर गये। नसीम की गोद में पड़ी-पड़ी छबिया रोती रही।

नसीम कुछ बोल न पाई। उसका गला भरा हुआ था। चुपचाप बहुत देर तक छबिया को अपनी गोद में लिए बैठी रही। ख़ुद नसीम

के दिल में एक तूफान-सा उठ रहा था। वह जानती थी कि इस समय हिम्मत और बर्दाश्त से काम लेना चाहिये। इसीलिए वह स्वयं अपने को सँभाल रही थी। लेकिन हृदय सँभले तब न ! आँखें मानें तब न !

देर होने लगी तो नसीम ने कहा, "बहिन अपने को, थोड़ा सा सँभालो। मैं जानती हूँ, तुम्हारे दिल में आग लगी हुई है। लेकिन बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। तुम बहादुर नौजवान की औरत हो। तुमको भी बहादुर बनना चाहिये। मदन ने चोरी नहीं की है, डाका नहीं मारा है। उसने गाँव वालों की सेवा की है। इसका इनाम उसे मिल रहा है। अपने गाँव वालों, पास पड़ोसियों की सेवा करने का आज कल यही फल मिलता है। अगर मदन भी बदमाश होता तो मज़े में रहता। लेकिन मदन ने जान बूझ कर काँटों का रास्ता अख़्तियार किया है। शादी के पहिले से तुम्हें यह मालूम है। अब पछताने रोने से क्या होगा ? मदन को मालूम पड़े कि तुम उसके लिये रो-रोकर जान दिये दे रही हो तो उसके दिल पर क्या गुज़रेगी ? सोचो ज़रा। तुम हिम्मत से काम लोगी तो उसकी भी हिम्मत दूनी रहेगी। चौधरी को देखो। अकेला लड़का, जाने कहाँ ग़ायब है, लेकिन हिम्मत से सब कुछ झेल रहे हैं।"

"ठीक कहती हो बहिन, लेकिन आँसू जो नहीं मानते। अगर मुझसे कह कर जाते तो क्या मैं उनके रास्ते में रोड़ा बनती ! मैं ख़ुशी-ख़ुशी उन्हें जाने देती। चोर की तरह क्यों गये ?" छबिया सिसक रही थी।

"उसे क्या मालूम था कि वरण्ट आने वाला है ? जब वे एकाएक आ गये तो भागने के अलावा और रास्ता ही क्या था ? यहीं कहीं आस पास होगा। जल्दी ही ख़बर मिल जायेगी। घबराओ नहीं।"

"गये सो ठीक किया, लेकिन मुझसे क्यों छिपाया ? रात को यों ही कहा था, अगर मैं पकड़ जाऊँ तो ! मुझे क्या मालूम था कि सबेरे क्या होगा इसे वह जानते थे। मालूम होता तो रात भर सेवा कर लेती। ये नींद अभागी क्यों लग गई ! जाते समय भी मैं नहीं देख पाई बहिन एक झलक भी नहीं मिली।"

"अच्छा, अगर उसका पता लग जाय तब तो शांत रहोगी ? तब तो इस तरह जान नहीं दोगी ? बोलो, वायदा करो कि हिम्मत से काम लोगी तो मैं उसकी ख़बर जल्दी से जल्दी मँगवाने की कोशिश करूँ।" नसीम ने भाँवली दी।

"हाँ बहिन कोसिस करूँगी, ज़रूर कोसिस करूँगी। उनकी खबर मँगा दो। बड़ी किरपा होगी।" छबिया ने हाँथ जोड़कर प्रार्थना की।

नसीम अब अपने को रोक न सकी। स्वयं उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अपनी आँखों से छबिया की यह परवशता देख उसका कलेजा फटने लगा। "हाय रे नारी हृदय ! तू कितना कमज़ोर है !" नसीम चिल्ला पड़ना चाहती थी। अभी तक ज़बरदस्ती अपनी करुणा नसीम ने रोक रखी थी, अब छबिया का उजड़ा रूप देखकर उसका दिल चाक-चाक हो रहा था।

अँधेरा होने लगा तो चौधरी भीतर आये। "कुछ दिया बत्ती जला ले बेटी, साँझ हो गई है। अँधेरा घर तो असुभ होता है बिटिया।" कहकर वह फिर बाहर चले गये।

"उठो छबी, देखो दादा क्या कह रहे हैं।" कहकर नसीम छबिया को उठाने लगी। छबिया किसी तरह उठी और रोते रोते उसने दिया जलाया।

"दिन को तुमने कुछ भी खाना नहीं खाया, क्यों ?" नसीम ने छबिया से पूछा।

"हाँ, रुलाई आती थी खाना बनाने का मन नहीं होता था। दादा ने भी कुछ नहीं खाया।" छबिया ने जवाब दिया।

"इस वक़्त तो बनाओगी न खाना ? ज़रूर बनाना, समझीं ?"

"अच्छा।"

"तो अब मैं जाऊँ ? रात हो रही है। फिर आऊँगी। घबराना नहीं।"

"अच्छा।"

छबिया की पीठ थपथपाते हुये नसीम जब जाने लगी तो छबिया

को फिर ज़ोरों से रुलाई आई। नसीम का चेहरा भी लाल होने लगा। आँखों की डोरियाँ सुर्ख़ होने लगीं। जल्दी से नसीम ने छबिया का माथा चूम लिया और घर के बाहर हो गई।

जाने लगी तो चौधरी पहुँचाने आये। नसीम ने उनको रोका, "आप बुज़ुर्ग आदमी हैं। अँधेरा हो रहा है। लौट जाइए, मैं चली जाऊँगी।"

"नहीं बिटिया समय ख़राब है, वख्त ख़राब है। चलो गाँव के बाहर तो पहुँचा आऊँ तुम्हें", कहते हुए चौधरी नसीम के साथ हो लिये।

रास्ते में तरह तरह की बातें होती रहीं। चौधरी विनय की बड़ाई करते और नसीम मदन की तारीफ़ करती। विनय की तारीफ़ सुन नसीम गर्व से फूली न समाती। मदन की तारीफ़ सुन चौधरी की आँखें छलछला आतीं। गाँव के किनारे सड़क के पास पहुँच नसीम ने बिदा ली। नसीम साइकिल पर सवार हो आगे बढ़ी तो चौधरी वापस लौटे।

कल शाम को मदन ने आने में देर की तो चौधरी घबराहट में ढूँढ़ने जाने को तैयार थे। लेकिन आज तो वह ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकता। आज दिन में बेचारे ने क्या खाया होगा? कहाँ रहा होगा? रात को क्या खायेगा? कहाँ सोयेगा? बरखा बूँदी का समय है। कहाँ सरन मिलेगी उसे? हाय भगवान! चौधरी घर की तरफ बढ़ते गये लेकिन उनका घर जैसे उन्हीं को खाने के लिए दौड़ा आ रहा था। भाँय भाँय कर रहा था सारा मकान। पेड़ पालो भी सारे डरावने लग रहे थे। धीरे से चारपाई पर लेट चौधरी हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

भीतर छबिया चूल्हा जला दाल चढ़ाने लगी। किसी काम में उसका मन नहीं लग रहा था। लेकिन दादा क्या खायेंगे, कब तक ऐसे ही फ़ाक़ा करेंगे, यह सोचकर कलेजे पर पत्थर रख रसोई बनाने लगी। बीच बीच में वह रोती भी जाती थी। जो रसोई यों वह घंटे भर में कर लेती थी उसमें आज दो घंटे से ऊपर लगे। बीच बीच में

कभी चूल्हा बुझने लगता, कभी आटा में पानी ज़्यादा हो जाता। कभी दाल जलने लगती। बुरा हाल था बेचारी का। लेकिन यह कसरत तो उसे करनी ही पड़ेगी! मन चाहे या न चाहे, अधम पेट कहाँ मानता है!

माधोपूर से वापस हो नसीम घर पहुँची तो अकबर को बाहर ही खड़ा पाया। जल्दी से एक प्याला चाय के लिये सहेज वह मुँह हाथ धोने चली गई। थोड़ी देर में अकबर चाय ले आया। चाय पीकर वह फिर चलने को हुई तो अकबर ने टोका, "रात हो गई है बीबी, अब न जाओ।"

"नहीं अकबर, बहुत ज़रूरी काम है। दो घन्टे में आ जाऊँगी। घबराना नहीं।" कहती हुई नसीम साइकिल पर चढ़कर निकल गई। अकबर कुछ बोल न सका। खड़ा खड़ा देखता रह गया।

कौंसिल की बैठक वख्त पर शुरू हो गई। सबके वोट से नसीम ने सदारत की जगह ली। चुनाव और अगले प्रोग्राम के बारे में बातचीत होने लगी। अधिकतर लोग कुछ न कुछ चमत्कारपूर्ण काम करने के पक्ष में थे। इनका ऐसा विचार था कि इस समय जनता जोश में है। उसके जोश को ठीक से इस्तेमाल करना चाहिये। अगर उसे ठीक से इस्तेमाल न किया गया तो वह ठंढा हो जायेगा। दूसरे लोगों का कहना था कि जब तक काँग्रेस का कोई अधिकारपूर्ण आदेश न मिले अपने मन से किसी भी प्रोग्राम को अपनाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। अगर कुछ हो गया तो ज़बरदस्ती काँग्रेस के ऊपर बोझ डालना और ज़िम्मेदारी थोपना हो जायेगा। इससे स्वयं काँग्रेस के काम में बाधा पहुँचेगी। दोनों मतों के लोगों में विचार सामञ्जस्य की आशा कम थी। बात बात में गरमागरमी और एक दूसरे को कायर, कमज़ोर आदि साबित करने की कोशिश कर सबों ने वातावरण को दूषित बना दिया। बहुमत उन लोगों का था जो नेतृत्व अपने हाथ में ले शहर निवासियों का मार्ग प्रदर्शन करना चाहते थे। कहाँ तक इस नेतृत्व का अर्थ लोग समझते थे या उसकी ज़िम्मेदारी निभाने की उनमें कितनी क्षमता थी, यह बिल्कुल दूसरी

बात थी। हाँ, लच्छेदार शब्दावली जिसके हर तीसरे शब्द के बाद क्रान्ति और इन्कलाब का पुछल्ला लगा रहता था, इस दल की अपनी चीज़ थी। अल्पमत उन लोगों का था जो 'देखो और इन्तज़ार करो' की नीति के पोषक थे। ये लोग कौंग्रेस के आदेशों की राह देखना चाहते थे। साथ ही कोई ऐसा काम करने के लिये तैयार न थे जिससे जनता मुफ़्त मारी जाय। नाप तौल कर बोलना और फूँक फूँक कर क़दम रखना इनकी नीति थी।

दो घण्टे होने को आये तो नसीम ने सदर की हैसियत से यह माँग की कि गोलमोल, बे सिर पैर की बातें बन्द कर अब प्रस्ताव के रूप में दोनों दल अपनी अपनी बातें रखें, जिससे बहस में और एक मिले जुले नतीजे पर पहुँचने में आसानी हो। दोनों दलों के प्रस्ताव भी बन गये। दोनों प्रस्ताव एक दूसरे के बिल्कुल विरोधी बने। खीझ कर बहुमत वालों ने यह प्रस्ताव रखा कि अल्पमत वाले कायरतावश दूसरे कारणों की आड़ लेकर कुछ न करने की नीति अख़्तियार करना चाहते हैं। इस प्रकार वे बहुमत के कामों में अड़ंगा लगा रहे हैं और साथ ही इस नाज़ुक मौक़े पर देश के साथ ग़द्दारी भी कर रहे हैं। इसलिये इनके खेलाफ़ अविश्वास का प्रस्ताव पास कर इन्हें कौंसिल में से निकाल दिया जाय।

इस प्रस्ताव को नसीम ने पेश नहीं होने दिया। इससे झगड़ा रुकने के बजाय और ज़्यादा बढ़ता। गाली गलौज, तू तू मैं मैं के बाद जब हाँथापाई की नौबत आ गई तो मजबूर होकर नसीम को कौंसिल की बैठक बरख़्वास्त कर देनी पड़ी। इस तरह दूसरे दिन के लिये कोई भी प्रोग्राम न बन सका और अपनी ढपली अपने राग गाने के लिये लोग स्वतन्त्र हो गये।

लेकिन इस गड़बड़ी का बहुत बुरा असर विद्यार्थियों पर पड़ा। उनकी एकता और संगठन के मूल में जब कुठाराघात हो गया तो आगे क्या आशा की जा सकती थी? तमाम होस्टलों में यही चर्चा चल रहा था। पहिले ही दिन यह हुआ तो आगे क्या होगा? दोनों

दल के लोग अपने को निर्दोष बताने और विद्यार्थियों में जाकर अपनी नीति का प्रचार करने लगे।

नसीम को बहुत सदमा पहुँचा। गुस्से में अपनी साधारण शिष्टता भी छोड़ दिया था इन विद्यार्थी नेताओं ने। उसने सोचा, इनसे क्या आशा की जाय। जब इतने थोड़े से लोग जो अपने को विद्यार्थी समुदाय का नेता समझते हैं इस प्रकार ग़ैर ज़िम्मेदारी और ओछेपन के साथ सिर्फ़ बहस के मौक़े पर पेश आ सकते हैं तो इनसे आगे किस बात की उम्मेद की जाय। नसीम स्वयं युनिवर्सिटी में पढ़ती थी और विद्यार्थियों के आन्दोलनों में आगे बढ़ कर हिस्सा ले चुकी थी। कई बार गहरे मतभेद के भी मौक़े आ चुके थे। लेकिन ऐसी छीछालेदर कभी भी नहीं हुई थी। सिर झुक गया शर्म से उसका, यह सोच कर कि इन्हीं लोगों के सहारे कल का इन्क़लाबी प्रोग्राम चलने वाला है। वह पछताती पछताती घर वापस आई।

विनय अब भी वापस नहीं आया था। ग्यारह बजने वाले थे। नसीम खाना आम तौर से विनय के साथ ही खाती थी इसलिये बहुत देर तक उसकी राह देखती रही। जब बारह बज गये और विनय नहीं आया तब उसने खाना खा लिया और आराम कुर्सी में पड़ रही। एक बजे विनय आया। मुँह पर धूल पड़ी थी। बाल भी गन्दे हो रहे थे। थक के चूर था विनय। तमाम कारखानों के मजदूरों की अलग अलग सभायें कर उन्हें सारी बातें समझा वह पार्टी दफ़्तर गया। वहाँ सलाह मशविरे में एक बज गया। तब छुट्टी पा वह साइकिल सँभाल घर पहुँचा। उसके आने पर नसीम ने उसे विद्यार्थियों की बैठक की रिपोर्ट दी। बहुत कुछ तो विनय को मालूम हो चुका था। नसीम से सारा विवरण मालूम हुआ। उदास हो उसने कहा, "यह तो ग़ैर ज़िम्मेदार लोगों, विद्यार्थियों में फूट डालने वालों की जीत हुई। हमारी साफ़ साफ़ हार हुई। बहुत बुरा हुआ। ख़ैर सबेरे ही तुम वहाँ पहुँच जाना और हालत सँभालने की कोशिश करना। दूसरे कामरेड भी रहेंगे। समझ लो, हमारा स्थान पुलिस और जनता के बीच में है, जनता से

अलग नहीं। जान देकर भी हमें उसकी रक्षा करनी है।"

विनय खाना खाने लगा तो नसीम ने पूछा, "तुम्हारे मज़दूरों का क्या हाल है? वहाँ शरारती लोग उभारने के लिये पहुँचे या नहीं?"

"गये तो थे ये लोग, लेकिन इनकी दाल गली नहीं। हम लोगों को देशद्रोही, ग़द्दार आदि की उपाधि मुफ़्त में बाँट कर चले गये। लेकिन मज़दूरों में जोश बहुत है। उनकी निगहबानी हमें दिन रात करनी पड़ेगी। अगर ये बिगड़े तो सत्यानाश ही हो जायेगा। हमें अपनी युनियनों में बहुत सजग, चुस्त और तेज़ रहना है। अपनी तरह से जहाँ तक हो सकेगा हमारे मज़दूर कॉंग्रेस का हुक्म मानेंगे। लेकिन इधर उधर के लोगों के बहकावे में वे नहीं आ सकते।" विनय ने दृढ़ता और मज़बूती से कहा।

"यानी, तुम्हारा फ्रन्ट ठीक है। वहाँ के लिये परेशान होने की ज़रूरत नहीं है।"

"परेशान तो नहीं, हाँ सजग होने की ज़रूरत ज़रूर है।"

"तुम माधोपूर गईं थीं?" कुछ रुक कर विनय ने पूछा, "क्या हाल है छबिया का? मतई चौधरी की तरफ़ की भी कुछ ख़बर है?"

"हाँ, गईं तो थी छबिया की ओर। रो रही थी ज़ार ज़ार बेचारी। सुन कर कलेजा फटा जा रहा था। कितना दुख मिला उस बेबस लड़की को!" आह भर कर नसीम ने कहा।

"समझा बुझा दिया उसको?"

"हाँ, इधर उधर की पट्टी पढ़ा आई हूँ, लेकिन उससे होता क्या है? दिल रोने बग़ैर मानता कहाँ है। आँसू ही कहाँ रुकते हैं?"

"मतई चौधरी का क्या हाल है? गईं थीं उधर?"

"ना, उनके घर तो न जा सकी। रात हो रही थी तो वापिस चली आई। गये तो थे मतई छबिया को समझाने।"

"अच्छा, अब सोना चाहिये नसीम। मैं बहुत थका हूँ। कल सबेरे ही उठना है। भाग दौड़ करनी है बहुत ज़्यादा। जाता हूँ," कह कर विनय अपनी कोठरी की ओर चल दिया और नसीम भी अपनी चार-

पाई पर पड़ रही। जल्दी ही उसे नींद आगई।

लेकिन विनय को नींद नहीं आ रही थी। वह पड़े पड़े कितनी ही बातें सोचता रहा। लेकिन रह रह कर उसका ध्यान मदन की ओर खिंच आता। 'मालूम नहीं कहाँ रहा दिन भर। रात हो गई है। इस वक्त कहाँ होगा? क्या खाया होगा? कैसे होगा? उससे फ़ौरन सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। सबेरे ही वह इसकी पूरी कोशिश करेगा।' यही सोचते सोचते विनय को नींद सी आने लगी।

उधर अपने गाँव से दो मील दूर, नदी के किनारे नाव में पड़े विनय की नींद दूभर हो रही थी। शंकालु हृदय था। पत्ता भी खड़कता तो उसे किसी के आने का शक हो जाता। दिन भर वह कोशिश करता रहा कि किसी प्रकार विनय से मिल सके। लेकिन असफल रहा। रात हुई तो धीरे से गाँव के पास जा, अपनी नाव खोल दो मील दूर निचाट सन्नाटे में जाकर पड़ रहा। बिना विनय से मिले आगे के लिये वह कुछ निश्चय नहीं कर सकता था। उसे सब की याद आई, सब का मोह लगा। छबिया का ध्यान कई बार आया। लेकिन रोने की इच्छा उसे एक बार भी नहीं हुई। उसका दिल जैसे काठ का हो गया था। यकायक वह भाग निकला था। पहिले से कुछ भी सोचा नहीं था। इसलिये भावुकता और करुणा के लिये उसे समय ही नहीं मिला। दिन भर झाड़ियों में पड़ा रहा और रात हुई तो इधर आ निकला। अब जब कि उसे थोड़ी बहुत शान्ति मिली तो भूख सताने लगी। खाने को कुछ भी न था। इसलिये नाव पर लेटे लेटे आसमान के तारे गिनता रहा। कब उसे नींद आ गई इसका उसे पता नहीं चला। हाँ, सबेरा होने से बहुत पहले ही वह उठ गया और नाव फिर गाँव के पास बाँध, नदी के किनारे किनारे बहुत दूर निकल गया!

छबिया इधर रात भर तारे गिनती रही। चौधरी तो खा पीकर सो गये। लेकिन उसे नींद नहीं आई। खटका लगा था कि कहीं मदन चुपके से आ न जाय। कहीं ज़रा सी खरखराहट होती तो छबिया के कान खड़े हो जाते और सारा ध्यान बटोर, साँस खींच, कान रोप सुनने

की कोशिश करती। लेकिन मदन नहीं आया। छबिया आसमान के तारे गिनती रह गई—शायद वही तारे जिन्हें देखकर मदन भी उधर एकान्त में नाव पर पड़ा आहें भर रहा था।

नसीम जब युनिवर्सिटी पहुँची तो वहाँ उसने वातावरण काफ़ी गरम देखा। वह लोग जो रात को इन्तज़ार करने और आदेश मानने की बातें कर रहे थे बुरी तरह बदनाम किये जा रहे थे। कोई इन्हें कायर, देशद्रोही कहता, कोई उनके सोशल बायकाट की धमकी देता। फिर भी वह विद्यार्थियों से कहे जारहे थे "साथियो, अगर तुम नहीं मानते तो चलो, हम भी साथ हैं। जलूस में हम भी शामिल होंगे, सख्तियाँ भी साथ ही बर्दाश्त करेंगे, लेकिन इतना समझ लो कि किसी भी हालत में हिंसा न होनी चाहिये। अपने ऊपर, अपने ग़ुस्से के ऊपर रोक लगा सकोगे यह सोच लो। अगर आवेश में आकर तुमने एक ढेला भी फेंक दिया तो समझ लो ग़ज़ब हो जायेगा और हमारे बहुत से साथियों की ज़िन्दगी पर बन आयेगी।"

विद्यार्थियों में से बहुत से लोग इन बातों को समझते थे। ग्यारह बजे जलूस निकलने का समय था। दस ही बजे से विद्यार्थी जमा होने लगे। सोचा गया था कि चल कर कचहरी पर झण्डा लगायेंगे। वहाँ के अधिकारियों से कहेंगे कि वे कचहरी छोड़ कर बाहर निकल आयें। जलूस के कप्तान ने सीटी दी। क़तार बनने लगी। नसीम लड़कियों के साथ थी। पहिले तो उसने घूम घूम कर सब से शान्त रहने के लिये समझाया, उसके बाद लड़कियों के साथ जलूस में शामिल हो गई। उसके और कई साथी भी थे जो जलूस की देख रेख कर रहे। जलूस बढ़ा तो उमड़ते हुये समुद्र की तरह। आगे बहुत बड़ा सा तिरङ्गा झण्डा लहलहाता हुआ। उसके पीछे वालंटियरों की टोली, उसके पीछे लड़कियों का जत्था और सब के पीछे विद्यार्थियों का दल। शहर के विभिन्न सड़कों से घूमता घूमता जब जलूस कचहरी की ओर बढ़ा तो वातावरण गंभीर होने लगा। विद्यार्थियों के दिल उछलने लगे, नारों में तेज़ी आई, जलूस की चाल भी बढ़ी और वह कचहरी के सामने वाले

मैदान में जा पहुँचा ।

जलूस रुका और कप्तान ने एक भाषण दिया । सब को शान्त रहने के लिये आदेश दे उसने झण्डा फहराने का प्रोग्राम सामने रखा । विद्यार्थियों ने जोश में नारे लगाये, तालियाँ पीटीं और आगे बढ़ने के लिये उतावले हो कप्तान की सीटी का इन्तज़ार करने लगे ।

सामने अधिकारियों का दल खड़ा था । पूरे सज धज, पूरी तैयारी के साथ । हथियारबन्द पुलिस, फ़ौज के सिपाही, और कान्स्टेबिल सभी थे । उनके चेहरों से गंभीरता, दृढ़ता और निश्चयात्मकता टपक रही थी । शान्त, स्थिर, पत्थर की तरह सभी खड़े थे । अधिकारियों की मनोदशा कैसी थी, क्या थी यह उनके चेहरे से स्पष्ट न थी । ऊपर से तो वे पैर जमाये, हाँथ बाँधे, अकड़ कर इस प्रकार खड़े थे मानो वे किसी ऐसी घटना का इन्तज़ार कर रहे हों जिसके लिये वे पूरी तरह तैयार हों । मालूम पड़ता था कि वे पहिले से ही कुछ प्रोग्राम बनाये, कुछ निश्चय किये खड़े हैं । भीतर उनके दिल में क्या हो रहा था, क्या गुज़र रही थी उनके ऊपर, इसे वही जानें । शायद उनमें से बहुत से उस भयानक घटना के लिये तैयार न थे, उत्सुक न थे, बचा जाना चाहते थे, जिसकी भूमिका स्वतः ही बनती चली जा रही थी । अविचलित से वे खड़े रहे । जलूस आगे बढ़ा ।

जलूस आगे चला जा रहा था । विद्यार्थियों के हृदय धड़क रहे थे । उनके चेहरे लाल हो रहे थे । नारों की ध्वनि गम्भीर समुद्र की कर्ण बेधी नाद का रूप लेती जा रही थी । अपार जनसमूह पीछे, बग़ल से जय के नारे लगा रहा था । कप्तान एक एक क़दम नाप कर रखता और उसके पीछे मंथर गति से जलूस बढ़ता जा रहा था । सामने तिरङ्गा झण्डा अपने सारे गौरव, सारे अभिमान के साथ हवा के थपेड़ों में लहर लहर कर लहरा रहा था । भावुक हृदयों के छिपे अरमानों की, कितने तरुणों की हार्थिक अभिलाषा की पूर्ति की मानो शुभ वेला आ पहुँची थी ।

जलूस और आगे बढ़ा । सनसनी बढ़ती जा रही थी । सभी तमा-

थाईं अपने ओठों को दाँतों से दबाये पंजों के बल खड़े, स्तब्ध देख रहे थे, आगे क्या होगा! कचहरी के अहलकार, गाँवों से आये हुये किसान और पक्के मुकदमेबाज़ अपने अपने बस्ते बग़ल में दबाये, धड़कते हृदय से आगे आने वाली भयङ्कर घटना का जैसे इन्तज़ार कर रहे थे। उसी समय आवाज़ आई कर्कश, कठोर—'जलूस रोक दो, पाँच मिनट में जलूस वापस कर के लौट जाओ, वरना गोली चलाई जायेगी।' और उस अफ़सर ने घड़ी देखना शुरू कर दिया। जलूस सहमा, कुछ रुका लेकिन कप्तान ने फिर सीटी दी, जलूस फिर आगे बढ़ा। "मैं फिर आगाह करता हूँ," चीख़ती हुई आवाज़ आई, "दो मिनट में वापस चले जाओ, वरना जान से हाँथ धोओगे।"

नसीम से अब न रुका गया। वह झपट कर आगे आगई और कप्तान से कहना ही चाहा था कि रुक कर वह सोच ले कि इसका क्या नतीजा होगा कि कप्तान ने उसे डाँट दिया। "अगर हिम्मत नहीं है, डरती हो, जान ज़्यादा प्यारी है तो अब भी मौक़ा है, चली जाओ यहाँ से। जलूस में गड़बड़ मत करो।" नसीम कुछ कहना ही चाहती थी कि कप्तान उसे धक्का दे आगे बढ़ गया। नसीम एक बार झिझकी, फिर दौड़कर अधिकारियों के पास पहुँची और घबराई हुई कहने लगी, "आप अभी रुकें, अभी गोली न चलायें। मैं एक बार और कोशिश करती हूँ। शायद ये लोग मान जायँ। पाँच मिनट और रुक जाइये।" कह कर नसीम वापस गई और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगी, "भाइयो, एक बार रुक कर सोच लीजिये आप क्या करने जा रहे हैं। आपके न मानने का नतीजा क्या होगा। भाइयो.."

"शट अप यू फ़ूल," कहते हुये कप्तान ने ज़बरदस्ती नसीम को रास्ते से हटा दिया। वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी, कप्तान के धक्के से और भीतर की घबराहट से। जलूस बढ़ता ही रहा। दस क़दम जलूस गया होगा कि फ़ायर का आर्डर हुआ, बन्दूकों की चमकती नलियाँ जलूस की तरफ़ घूरने लगीं। तीसरे हुक्म पर सन् सन गोलियाँ चलने लगीं। कप्तान ने हुक्म दिया "लेट जाओ," और जलूस के लोग एक

साथ ही सब के सब ज़मीन पर लेट गये। फिर हुक्म हुआ "चलो" और जलूस के लोग आगे बढ़े। फिर गोली चली। अबकी बार धुँआ-धार बौछार शुरू हो गई। तमाशाई पहिले ही चम्पत हो गये थे। जनता भी भाग निकली थी। पीछे से कुछ विद्यार्थी भी जिन्हें अपनी जानें प्यारी थीं, खिसक गये थे। केवल कुछ सौ लड़के रह गये थे। गोलियों की बाढ़ देख नसीम ने होश सँभाला। कप्तान के गिरते ही नसीम दौड़ कर उसके ऊपर आ पड़ी जिससे उसे अब गोलियाँ न लगने पावें।

जोश देकर आगे बढ़ाना आसान काम है। गोलियों के डर से भागती भीड़ को रोक लेना बहुत मुश्किल! क्योंकि उस भगदड़ के समय देशभक्ति काफ़ूर हो चुकी होती है, क़ुर्बानी के जज़्बे ख़त्म हो चुके होते हैं और उसकी जगह पर कायरता और प्राणरक्षा की भावना का ही रंग रहता है। थोड़ी देर गोली और चली, भीड़ तितर बितर हो गई और अब एक मिनट पहले शान से लहलहाता तिरङ्गा झण्डा भूलुण्ठित, धूल धूसरित हो रहा था।

जिन्हें ज़रा बहुत चोट आई थी वे तो चले गये। लेकिन जब अस्पताल की लारी कप्तान के पास पहुँची तो पता चला अधिक ख़ून बहने के कारण उसकी प्राणशक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी। नसीम बेहोश थी। दोनों एक दूसरे के पास पड़े थे। दोनों बेहोश, दोनों के शरीर से चटख़ लाल लोहू की धारा बह रही थी। लारी उन दोनों को उठा कर अस्पताल की ओर चल दी।

शहर में सनसनी फैल गई। बात की बात में ख़बर घर घर पहुँच गई। तहलका मच गया चारो ओर। अतिरंजन और गपों की बाढ़ आ गई। किसी ने कहा, "सैकड़ों घायल हो गये, बीसों मर गये। किसी ने कहा, 'बहुत सी लड़कियाँ काम आ गईं।' क्या हुआ यह किसी को नहीं पता, लेकिन यह सभी को पता चल गया कि आज़ादी के नाम पर झण्डे की इज़्ज़त रखने के लिये सैकड़ों युवक और युवतियाँ काम आ गईं। अब क्या था? मार्ग प्रदर्शन और आदेशों की ज़रूरत न थी।

लोगों ने सोचा, इन शहीदों ने रास्ता दिखा ही दिया है। दूकानें धड़ाधड़ बन्द होने लगीं। सड़कों पर भीड़ का पता न था। जैसे सारा शहर घरों में समा गया हो। सड़कें वीरान नज़र आने लगीं। सियापा छा गया चारों ओर। न इक्के ताँगों की धड़धड़ाहट, न घोड़ों के टापों की गूँज, न रिक्शों की महीन सुरीली टुनटुन! चारों ओर सन्नाटा, भयानक, क़ब्रिस्तानी शान्ति, मरघट जैसी।

पार्टी आफ़िस में ख़बर पहुँची तो विनय अस्पताल की ओर बढ़ा। मन में हज़ारों बातें एक साथ उठ रही थीं। कोई लड़की घायल हुई थी। नसीम ही थी वह लड़की इसका निश्चय नहीं था। मुमकिन है कोई और हो। कप्तान की भी ख़बर थी उसे। धड़कते दिल से वह अस्पताल के भीतर पहुँचा। भीतर किसी के जाने की आशा न थी। विनय ने चपरासी से कहलवाया। लेकिन इजाज़त न मिली। वह परेशान पेड़ के नीचे साइकिल के सहारे घण्टों खड़ा रहा।

ड्यूटी बदलने के समय नर्स बाहर निकली तो विनय उसके पीछे हो लिया। नर्स ने बताया, "कप्तान की उम्मीद कम है। गोली ज़्यादा भीतर घुस गई थी। ख़ून काफ़ी निकल गया। आक्सीजन दिया गया है। शाम तक चल गया तो उसकी जान बच सकती है।"

"और उस लड़की का क्या हाल है?" चिन्ता से पूछा विनय ने।

"उसके लिये कोई ख़तरा नहीं है। सिर्फ़ बाँह और पैर में गोलियाँ लगी थीं। घाव तो कुछ गहरे हैं लेकिन ख़ून का बहना रुक गया है। पट्टी बँध गई है। वह होश में है। स्पेशल वार्ड में रखे गये हैं दोनों।"

"क्या आप मुझे मिला देंगी उनसे? बड़ी मेहरबानी होगी।"

"देखिये कोशिश करती हूँ। लेकिन बोलियेगा मत ज़्यादा उनसे," कहती नर्स भीतर गई और एक दो मिनट में वापस आ विनय को अपने साथ ले फिर वह अन्दर चली गई।

भीतर जाते समय विनय का दिल धड़क रहा था। पैर लड़खड़ा रहे थे। आँखों से जैसे दिखाई नहीं दे रहा था। धीरे धीरे सँभाल सँभाल पैर बढ़ाते हुये विनय वार्ड में गया। उसने देखा खुले हवादार

छोटे से कमरे में एक चारपाई पर बेहोश कप्तान लेटा है। बग़ल की चारपाई पर शान्त, आँखें बन्द किये नसीम पड़ी है। नज़दीक पहुँचने पर नसीम की आँखें खुलीं। विनय को देख नसीम मुस्कराई मन्द मन्द, फिर उसका चेहरा लाल हुआ। दाँतों से निचले ओंठ को नसीम ने दबा साँस खींची। लेकिन आँसू की दो मोटी डोरियाँ उसके गुलाबी गालों पर दौड़ ही गईं।

बहुत देर तक विनय चुप चाप खड़ा रहा। उसकी आँखें देख कर भी विश्वास न करना चाहती थीं कि सामने, अस्पताल के बिस्तर पर लेटी हुई, पट्टियों से बँधी वह लड़की नसीम ही थी। लेकिन आज इस रूप में! मोमबत्ती के सामने वाला चित्र, चाँदनी रात में माधोपुर से लौटते हुये उसका भव्य रूप और आज की यह शक्ल! विनय का दिल रो रहा था।

कप्तान ने करवट लेने की कोशिश की। विनय ने देखा, वह फिर घबड़ा गया। सिर से पैर तक, पैर से सिर तक, उसके रगों में खून दौड़ गया बहुत तेज़ी से! कितना भयानक दृश्य था!

विनय काँप गया, काँपता रह गया। ओंठ दबा साँस खींच वह कुर्सी पर चुप चाप बैठ, दोनों की ओर देखता रहा।

"आगये तुम?" सूखी हँसी हँस कराहते हुये नसीम ने कहा।

"हाँ, आ गया।" विनय का गला भर आया।

"विनय, मैंने अपना फ़र्ज़ पूरा किया? कमज़ोरी तो नहीं दिखाई?" नसीम की आँखें चमक रही थीं।

"हाँ नसीम, तुमने अपना फ़र्ज़ पूरा किया, तुमने बहादुरी दिखाई।" अपनी सारी शक्ति लगा, अपने को सँभाल, विनय ने कहा, "शान्त हो कर लेटी रहो। कप्तान को हमारी बातों से तकलीफ़ होगी।"

१०

कप्तान की ख़बर संतोष को मिली तो उसे बहुत ताव आया। एक क्षण के लिये जैसे वह अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठा। लेकिन उसने अपने को सँभालने की कोशिश की। अपने दल का एक आदमी इस प्रकार शहादत का नमूना पेश करे तो गर्व से सिर ऊँचा हो ही जाता है। संतोष की छाती फूल गई। दिन भर की परेशानी, चिन्ता और आशंका के बाद जब समाचार मिला कि कप्तान को होश आ गया है और अब कोई ख़तरा नहीं है तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। उत्सुकतापूर्वक आठ बजने का इन्तज़ार करता रहा।

आठ बजा तो संतोष कपड़े बदल, सड़कों को बचाता, गलियों से होता हुआ अस्पताल की ओर चला। उसका हृदय उछल रहा था। उसका यह सपना कि हम अपनी क़ुर्बानियों से जनता में प्राण फूकेंगे पूरा होने जा रहा था। कप्तान के अदम्य उत्साह और बेलौस प्राणार्पण के उदाहरण से लोगों को बल मिला, शक्ति मिली! अगर वह काम भी आ गया होता तो क्या बात थी? जनता की भलाई के लिये, आज़ादी की लड़ाई में नौजवान ही तो काम आते हैं। आज कप्तान ने अपने दल का नाम ऊँचा किया है, जान की बाज़ी लगा कर उसने देश का गौरव ऊँचा किया है। कितना वीर है यह कप्तान!" सोचता सोचता संतोष अस्पताल के फाटक में दाख़िल हो गया।

स्पेशल वार्ड में बत्ती जल रही थी। नर्स बीच में कुर्सी पर बैठी चुपचाप कभी नसीम को देखती कभी कप्तान को। उसके मन में आ रहा था वह दृश्य जब कि ये लोग प्राण की परवाह न कर गोलियों की बाढ़ के सामने डटे होंगे। वह सोचती कितने बहादुर हैं ये लोग, दूसरों के लिये, अपने देश के लिये अपना सब कुछ निछावर कर दिया इन लोगों ने, जान की परवाह भी नहीं की।

संतोष भीतर आया। उसके आने की ख़बर नर्स को पहिले ही लग चुकी थी। संतोष आया तो वह उठकर आगे आई। "देखिये, बोलि-

येगा बहुत कम, इन लोगों पर ज़ोर न पड़ना चाहिये" नर्स ने मुलायमियत से कहा। उसकी विनम्र भावभंगी, उसकी कोमल तरुणाई को द्विगुणित आकर्षण प्रदान कर रही थी। संतोष ने धीरे से "अच्छा", कहा। कप्तान ने आँखें खोली, नमस्ते किया। संतोष ने उसे चुप करने के लिये ओठों पर उँगली रखी। कप्तान ने आँखें बन्द कर लीं। संतोष ने नसीम को नमस्ते किया। नसीम ने जवाब दिया। उसको पीड़ा तो थी लेकिन बोलने की शक्ति थी उसमें।

संतोष ने पूछा, "क्या हाल है ?"

"ठीक है, दर्द बहुत है।" नसीम ने कराहते हुये पतली आवाज़ में कहा।

"विनय आया था ? उसको ख़बर लगी ?"

"हाँ, आये थे। थोड़ी देर रह कर चले गये। उनको काम था, इसलिये रुक न सके।"

"काम था," चिढ़कर संतोष बोला, "क्या काम था ? बहरहाल, किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बताओ।"

"नहीं, ज़रूरत तो कुछ नहीं है।"

"कप्तान कुछ बोला था ? क्या हाल है इसका ?"

"कुछ बोले तो नहीं, बोलना ठीक भी नहीं है। डाक्टरों ने मना किया है।"

"अच्छा, अच्छा।" संतोष ने कहा। कुछ देर चुप चाप बैठने के बाद उसने कहा, "जाता हूँ, कल किसी को भेजूँगा या ख़ुद आ जाऊँगा। घबराओगी तो नहीं तुम लोग ?"

"नहीं," नर्स की ओर देख नसीम ने कहा, "ये तो हैं ही।"

"मि० संतोष, आप बेखटके जाइये। मैं यहाँ हूँ। इन लोगों को कोई तकलीफ़ न होगी। अब कोई ख़तरा है भी नहीं।" नर्स ने विश्वास दिलाया संतोष को।

संतोष की आँखें डबडबा रही थीं। धीरे से उसने पूछा, "आपका नाम पूछ सकता हूँ ?"

"नूरजहाँ।"

"अच्छा, थैंक्यू (धन्यवाद), मैं जा रहा हूँ। आप तो यहाँ हैं हीं।" कहते हुये संतोष कमरे के बाहर हो गया।

संतोष चला गया तो नर्स फिर अपनी कुर्सी पर आ जमी। नसीम उसको कभी कभी देख लेती फिर आँखें मूँद लेती।

नर्स अपनी कुर्सी उठा नसीम के पास आ गई। यद्यपि नसीम को कम बोलने की आज्ञा थी और नर्स उसकी परिचर्या के लिये ही रखी गई थी फिर भी जैसे दोनों के मन में एक दूसरे से बातें करने की स्वाभाविक इच्छा ज़ोर मार रही थी।

पास आ नर्स ने पूछा, "आपकी तबियत कैसी है?"

"ठीक है, थोड़ा थोड़ा दर्द हो रहा है, और कुछ नहीं।" नसीम ने जवाब दिया।

"आराम से हैं न? कोई तकलीफ़ तो नहीं है। संकोच मत कीजियेगा।" नर्स ने स्नेह जताते हुये कहा।

"नहीं, संकोच की क्या बात है? तकलीफ़ कोई ख़ास नहीं है मुझे। आराम से हूँ। आपके रहते तकलीफ़ हो ही क्या सकती है!" मुस्कराने की कोशिश करते हुये नसीम ने कहा, "आप कब से हैं यहाँ?" कैसा लगता है आपको यह काम? बीमारों से चारों ओर घिरे रहने से आपका जी नहीं घबराता? मुझे रहना हो तो मैं दो रोज़ में भाग जाऊँ।"

"नहीं, जी तो नहीं घबराता। आदत पड़ गई है। मुझे यह काम बहुत अच्छा लगता भी है। बीमारों को आराम पहुँचाने में अपने को सुख मिलता है, ऐसा सुख जिसे मैं बता नहीं सकती।"

"चीरफाड़ देख कर घबराहट नहीं होती? आपरेशन के वक़्त तो मरीज़ बहुत शोर करते होंगे?" नसीम ने पूछा। वह अपनी कमज़ोरी इन शब्दों में प्रकट कर रही थी।

"कहा न, आदत पड़ गई है। शुरू में बड़ी घबराहट होती थी। चीख़ पुकार से हाथ पाँव फूल जाते थे। लेकिन धीरे धीरे यह कमज़ोरी

दूर हो गई और अब यह सब बातें मामूली रोज़मर्रा की हो गई हैं।" नर्स ने बड़े इत्मीनान से कहा।

नसीम को जैसे विश्वास नहीं हुआ। औरत होकर दिल इतना कड़ा कर लेना उसकी समझ के बाहर की बात थी। विस्मय से आँखें फाड़ नर्स की ओर देखती रही।

"क्या आपको यक़ीन नहीं हो रहा है? आप ही सोचिये, रोज़ तो हमारे पास एक-से-एक भयानक बीमारी वाले मरीज़ आते हैं। अगर घबराने लगूँ तो मुश्किल ही हो जाय। घबराकर मरीज़ का कुछ भला तो कर नहीं सकती। हाँ, उल्टे उनका नुक़सान कर सकती हूँ" नूरजहाँ मुसकरा रही थी।

नसीम को झेंप मालूम पड़ी। फिर यह सोचकर कि शायद वह ठीक ही कह रही हो टापिक बदल दिया, "आपके घर वाले कहाँ हैं?"

"सहारनपुर।"

"आपके घर के और लोग भी यही काम करते है?"

"जी नहीं, मुझे इस पेशे को अख्तियार करने के लिए उन लोगों से लड़ाई लड़नी पड़ी थी। हमारे घर वाले इस पेशे को बुरी निगाह से देखते हैं। दसवाँ पास करने के बाद वह हमारी शादी कर देना चाहते थे। लेकिन मैंने इन्कार कर दिया। इससे उन लोगों को बहुत दुख हुआ। जब मैंने इस पेशे में आने का प्रस्ताव रखा तो वे और भी आग बबूला हो गये। मैं भी उन लोगों से लड़ झगड़ कर यहाँ आई हूँ। जब से यहाँ आई, न तो एक दिन की छुट्टी ली और न घर गई।" नूरजहाँ ने सब कुछ सीधे सीधे कह दिया?

नसीम के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इस पेशे में क्या ऐसी ख़ास बात है कि यह लड़की अपना घर-बार छोड़ कर यहाँ चली आई? मरीज़ों की सेवा, क्या सचमुच सिर्फ़ इसी के लिए इसने इतनी बड़ी क़ुर्बानी की? नसीम नूरजहाँ की ओर उत्सुकता पूर्वक देखती रही। चाहती थी कि वह कुछ और कहे।

"मेरी बातें कुछ अजीब-सी मालूम पड़ती होंगी आपको, लेकिन मैं क्या करूँ ? मेरे घर वाले हैं तो क्रिश्चियन, लेकिन इतने पिछड़े ख़्यालात हैं उनके कि क्या बताऊँ ? जब तक मैं उनके साथ थी, मुझे बड़ी उलझन होती थी। अब मुझे दिमाग़ी परेशानी नहीं रहती।"

"आपको अपनी इस ज़िन्दगी से पूरा संतोष है ?" नसीम ने पूछा।

"यह मैं नहीं कह सकती। कभी कभी बहुत उदासी मालूम पड़ती है, जैसे मैं बिलकुल अकेली हूँ, मेरे कोई नहीं है, किसी को मैं अपना नहीं कह सकती। कोई ऐसा नहीं है, जो मेरे काम आ सके। जब भी यह सोचती हूँ जी घबराने लगता है।" नूरजहाँ ने सिर नीचे करके दुखी और उदास होकर कहा। अप्रतिभ सी हो रही थी वह इस समय।

नसीम की सहानुभूति जाग उठी। उसे लगा कि यह नूरजहाँ भी उसी बीमारी की शिकार है जिसकी शिकार वह इतने दिनों रही है। सोचा, 'शायद इस उम्र में सभी लड़कियाँ अपनी ज़िन्दगी में यही कमी महसूस करती हों। उसे लगा कि उसमें और नूरजहाँ में एक लगाव है, एक रिश्ता, ऐसा रिश्ता जिसे वह समझ नहीं सकती। विनय को पाने के पहिले उसकी जो हालत थी इस बेचारी नूरजहाँ का आज वही हाल है। उसे ख़ुद अपनी व्यथायें याद आईं। ओह, कितनी रातें वह आसमान के तारों को गिनकर काट चुकी थी! कितनी आरज़ू, मिन्नत, इम्तहान के बाद विनय उसका अपना हो सका था। और इस बेचारी का विनय न जाने कौन होगा, किसकी याद में यह तड़पती होगी। शायद उसे पता ही न हो कि वह क्या चाहती है।' सहानुभूति और संवेदना से नसीम का दिल भर गया।

नूरजहाँ ने पूछा, "ये संतोष बाबू कौन हैं ? कोई बड़े लीडर मालूम होते हैं।"

"हाँ, लीडर तो हैं ही। ये जो इस चारपाई पर लेटे हुये हैं कितने बहादुर हैं यह तो तुम समझ ही गई होगी। इनके अगुआ हैं संतोष बाबू!"

श्रद्धा से गद्गद् हो नूरजहाँ ने कहा, "अच्छा, तब तो वह और भी बहादुर होंगे।"

"क्यों नहीं।" नसीम ने जवाब दिया।

कप्तान पड़ा पड़ा सारी बातें सुनता रहा। वह कुछ नींदाँसा सा था। अभी तक उसे लगा कि वह सपना देख रहा है। जब संतोष का चर्चा आया तो उसने आँखें खोलने की चेष्टा की। शरीर हिला तो नूरजहाँ फ़ौरन उठकर उसके पास पहुँच गई।

"कोई तकलीफ़ है आपको ?" चिन्तित हो उसने पूछा।

ज़रा सा सिर हिलाकर कप्तान ने फिर आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर वहीं खड़ी रह नूरजहाँ नसीम के पास वापस आकर बोली, "अच्छा, अब आप सोने की कोशिश कीजिये। कल फिर बातें होंगी। अब बहुत देर हो गई है।"

नसीम बातें जारी रखना चाहती थी लेकिन यह सोचकर कि कप्तान जाग न जाय चुप रही और धीरे-धीरे आँखें बन्दकर सोने की कोशिश करने लगी।

नूरजहाँ अपने टेबुल के पास बैठ नावेल पढ़ने लगी। बल्ब के ऊपर कवर लगा हुआ था, इसलिये कमरे भर में अँधेरा था। केवल नूरजहाँ के मुँह और नावेल के ऊपर सारी रोशनी पड़ रही थी। नसीम अक्सर आँखें खोल नूरजहाँ की ओर देख लेती। उसे नूरजहाँ में कुछ आत्मीयता, कुछ अपनत्व का आभास मिलने लगा था। नूरजहाँ नावेल पढ़ते पढ़ते रुक जाती, सिर उठाकर बड़ी देर सोचती रहती, 'ये लोग भी कितने बहादुर हैं। अपनी आन पर जान देना खेल है इनके लिए।' कभी वह अगाध, असीम श्रद्धा से नसीम की ओर देखती, कभी क़प्तान की ओर। नसीम इस मुद्रा में नूरजहाँ को देख सोचती, मालूम होता है नावेल में कोई दिलचस्प वाक़या आगया है जिसे वह ध्यान से सोच रही है। मुमकिन है उसे ऐसी कोई बात मिल गई है जो उसके दिल को राहत और आराम दे रही है।

अस्पताल से लौटकर विनय घर पहुँचा तो अकबर को वह कुछ

बता न सका। अकबर बार बार पूछता, "बीबी कहाँ है" तो कभी इधर कभी उधर की बातें कर वह टाल जाता। लेकिन जब देर होने पर भी नसीम नहीं आई और अकबर बहुत ज्यादा घबराने लगा तो उसने सारी बातें कह दीं। अकबर को काठ मार गया। आँखों से आँसू की धारा बही तो बहती ही रही, रोके रुकी नहीं। वह पागल सा कभी मुँह खोले, आँखें फाड़े विनय की ओर देखता, कभी एक दम से रो पड़ता। उसकी दशा विक्षिप्त जैसी होने लगी तो विनय घबराया। लाख समझाने पर भी अकबर विश्वास करने को तैयार न था कि नसीम बिल्कुल ठीक है। जिस फूल सी बच्ची को उसने अपने गोद में खेलाया, आँख की पुतली की तरह जिसे पाला, ज़िन्दगी की उम्मीद की तरह जो बढ़ती, फूलती, फलती रही, वही नसीम गोलियों का शिकार हो गई! ज़ालिमों ने कैसे गोली चलाई! क्या उनकी आँखें फूट गई थीं! क्या उनके दिल न था! क्या उनके घर में लड़के लड़कियाँ नहीं हैं! हाय रे ज़ालिमों, तुम आदमी नहीं पत्थर हो, एक दम पत्थर!' बार-बार अकबर इसी तरह बड़बड़ाता, रोता बैठा रहा।

विनय के लिए समस्या कठिन थी। ख़ुद उसका दिल रो रहा था, कलेजा फटा जा रहा था। लेकिन उसे पता था कि यह रोने का, अफ़सोस करने का समय नहीं है, काम करने का समय है। उसे मालूम था कि नसीम उसके काम से ही ख़ुश होगी, कायरों की भांति रोने से नहीं! इसीलिए हिम्मत बाँध, कलेजे पर पत्थर रख, आँसू को भीतर ही भीतर पी वह अविचल बने रहने का प्रयत्न कर रहा था।

अकबर की परेशानी देख उसका गला रुँध गया। सँभलते हुए बोला, "बाबा, तुम दिल मज़बूत करो। मैं भी तुम्हें इस तरह रोते देखकर कमज़ोर हुआ जा रहा हूँ। देखो, सुनो तो, नसीम मज़े में है। ज़रा सी चोट आ गई है। दो तीन रोज़ में अच्छी हो जायगी। फिर उसे यहीं ले आयेंगे। थोड़ा सा बर्दाश्त करो बाबा!"

"अब बर्दाश्त ही करना बाक़ी रह गया है भैया। इसीलिए तो इतने दिनों तक ज़िन्दा रहा, यही देखने के लिए। हाय रे, मैं बड़े मियाँ

को क्या जवाब दूँगा, कौन सा मुँह दिखाऊँगा उन्हें।" अकबर सिसकियाँ भर रहा था।

विनय सिगरेट फूँकता कमरे में टहलता रहा। एक दो बूँद आँसू अगर आ जाते आँखों में तो छिपा कर पोंछ लेता। "अच्छा बाबा, कल ले चल कर तुम्हें देखा लाऊँगा। अपनी आँखों से देख कर तो यक़ीन करोगे?"

"आज नहीं चलोगे भैया?" उत्कण्ठा से अकबर ने पूछा।

"आज नहीं बाबा, डाक्टरों का हुक्म नहीं है। कल ज़रूर ले चलूँगा तुम्हें।"

अकबर विनय की ओर देखता रह गया।

"अच्छा, अब चलता हूँ। रोना-घबराना मत। तुम तो बहादुर आदमी हो। घूम फिर कर वापस आ जाऊँगा। जाऊँ?" विनय ने अकबर की ओर देखा।

अकबर कुछ बोल न सका। विनय धड़धड़ाता सीढ़ी के नीचे उतर गया।

विनय को इस समय सब से ज़्यादा फ़िक्र मदन की थी। कल से उसकी ख़बर बिलकुल नहीं मिली थी। वह साइकिल की पैडिल मारता हुआ माधोपुर की ओर बढ़ा जा रहा था। थोड़ी दूर जाने पर माधोपुर पंचायत का एक स्वयं सेवक मिला। उसने इशारा किया तो आगे पीछे घूम कर देख ताक विनय रुका। उसने दो मिनट में बातें ख़तम की और आगे बढ़ गया।

संध्या के झुटपुटे में साइकिल पर थोड़ी सी पूड़ियाँ और आध पाव मिठाई बाँधे, शहर का लम्बा चक्कर देते हुये विनय जमुना के किनारे वाली सड़क पर आ गया। वहाँ साइकिल और तेज़ की और भन भन करता कुछ मिनटों में ही अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया।

कुछ देर तक इन्तज़ार करने के बाद मदन भी आगया। दौड़ कर विनय ने मदन को गले लगा लिया।

"छबिया बहुत मज़े में है। मैं उसके पास गया था। नसीम भा

गई थी। दादा भी मज़े में हैं। तुम घबड़ाओ नहीं मदन!" एक साँस में विनय सब कुछ कह गया।

मदन कुछ बोल ही न सका। हर्षातिरेक और विह्वलता के आँसू उमड़ आये उसकी बड़ी बड़ी आँखों में।

"हमारी कामरेड कैसी है? मज़े में तो है!" अपने को बहुत सँभाल कर मदन ने पूछा।

"हाँ, बहुत मज़े में है। चलो खाना खाओ", कह कर विनय ने पूड़ियों की पोटली निकाली और दोनों जमुना जी के किनारे चले गये। दोनों बहुत देर तक बातें करते रहे। खाना खाने के बाद विनय ने नसीम का सच्चा हाल बताया। मदन को बिजली मार गई। विनय ने फ़ौरन ही यह कह कर सँभाल लिया कि, "अब वह बिलकुल ठीक है। हुआ ही क्या था उसे? जलूस वग़ैरह में चोट चपेट तो लग ही जाया करती है।"

विनय ने इतनी लापरवाही से नसीम का हाल बताया तो मदन की व्यग्रता कुछ कम हुई। लेकिन परेशानी उसकी बनी ही रही। उसकी आँखों के सामने वह चित्र खिंच गया जब 'अपार जन समूह उमड़ता हुआ आगे बढ़ा जा रहा होगा और सामने से गोलियों की बौछार बरसात की बौछार की तरह चली आ रही होगी, और उसी समय नसीम को गोलियाँ लगी होंगी। वह छटपटा कर गिर गई होगी, ज़मीन पर लेट गई होगी। उसका बदन लोहू लोहान हो गया होगा। कपड़ों पर धूल और ख़ून के धब्बे पड़ गये होंगे। 'आह' कर बेहोश हो गई होगी।' सोचते सोचते मदन काँप उठा। उसके शरीर के रोयें भर-भरा उठे।

विनय चलने लगा तो उसने फिर आश्वासन दिया, "नसीम के लिये चिन्ता मत करना। छबिया के लिये भी फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं। दोनों मज़े में हैं।" निर्दिष्ट स्थान पर, नीयत समय पर फिर मिलने के लिये कह विनय चल दिया और मदन बीड़ी सुलगाता धीरे धीरे गहरे होते हुये अंधकार में लीन हो गया।

रेलवे स्टेशन और ट्रामों में आग लगने की ख़बर रेडियो से संतोष को मिल चुकी थी। रेडियो के बाद वह अपने साथियों से मिला और यह निश्चय किया कि बम्बई की तरह यहाँ भी इस प्रोग्राम का अनुसरण करना चाहिये। दोपहर की घटना से जनता में जोश और उबाल आ गया था। तवा गर्म ही रहे इसका उसे प्रबन्ध करना था। उसने सोचा रेलवे के कुलियों को उभारा जाय और गोदाम में आग लगाई जाय तो शहर में सनसनी फैल जायेगी। वह अपने एक विश्वसनीय साथी को लेकर स्टेशन की ओर चला।

कुलियों का सङ्गठन मज़बूत था। युनियन का प्रभाव इतना था कि उसके आदेश के बग़ैर कुली एक कदम आगे बढ़ने को तैयार नहीं होते थे। संतोष की जान पहिचान बकरीदू और जग्गन दोनों से थी. संतोष उन्हें ढूँढ़ एक अँधेरे स्थान पर ले आया और बात शुरू हो गई।

लम्बी चौड़ी भूमिका के बाद संतोष ने कहा, "अगर गोदाम में आग लग जाये और किसी को पता भी न चले तो मज़ा आ जया। सारे शहर के ऊपर इसका असर पड़ेगा और हमारी तहरीक मज़बूत होगी।"

"हुज़ूर बजा फ़र्माते हैं। लेकिन एक दो के किये यह काम हो भी नहीं सकता। कम से कम पाँच सात पट्ठों की ज़रूरत पड़ेगी। वहाँ पहरा भी तो गहरा रहता है।"

"पहरे से क्या होता है? एक बार चिनगारी लग जाय। फिर तो सब कुछ खुद बखुद स्वाहा हो जायेगा। क्यों जग्गन, तुम्हारी क्या राय है?"

"हुकुम पूरा करना हमारा काम है। लेकिन युनियन वाले हमारा विरोध करेंगे। उनके विरोध के रहते हुये कामियाब होना मुश्किल है।"

संतोष ने कुछ सोच कर कहा, "युनियन वालों से मदद लेनी ही नहीं है। हम तुम्हें दो आदमी दे देंगे। दो तुम लोग हो। एक दो और साथी ढूँढ लेना। चटपट पाँच मिनट में सारा काम हो जायेगा।

आग लगा कर तुम लोग खिसक जाना।"

कुछ देर इसी प्रकार बातें होती रहीं और अन्त में यह निश्चय हो गया कि एक बजे रात को जब स्टेशन क़रीब क़रीब खाली रहता है और पहरे वाले भी ऊँघते रहते हैं पीछे की तरफ़ से पेट्रोल जलाकर आग लगाई जाय। संतोष सारी स्कीम समझा कर और एक बार उन्हें फिर अच्छी तरह लेक्चर पिला कर लौट आया। रास्ते में वह यही सोचता रहा कि सबेरे सब लोगों को इस घटना का पता चलेगा तो काफ़ी जोश फैलेगा और ख़ुद बख़ुद इसी तरह के प्रोग्राम दूसरे लोग अपना लेंगे। उसने यह भी सोचा कि अगर विनय और उसके साथी इस प्रोग्राम में शरीक होते तो शहर भर में एक साथ उथल पुथल मचा देते। उस वक्त इस बढ़ती हुई तहरीक को दबा देना शासकों के लिये असम्भव होता। लेकिन इन लोगों ने ऐसे बे मौक़े धोखा दिया कि क्या कहा जाय! ज़्यादा किताबें पढ़ने और बक बक करने से यही होता है। करना धरना कुछ नहीं, डींग सुन लीजिये लम्बी चौड़ी। ऐसे कायरों से कहाँ देश का बेड़ा पार लग सकता है!' घृणा से उसके माथे पर बल पड़ गये।

विनय के साथ ही उसे नसीम की याद आई तो इस घृणा का स्थान दया ने ले लिया। 'बेचारी कितनी भली लड़की है! उसके दिल में देश भक्ति की आग हर दम सुलगती रहती है। लेकिन ऐसे ढोंगी के चक्कर में आ फँसी है कि क्या बताया जाय!' संतोष साइकिल बढ़ाता अपने दल के दफ़्तर की ओर चला गया।

तमाम नागरिक बिस्तर से उठते ही रात में हुई किसी आश्चर्य-जनक घटना के बारे में सुनने के लिये उत्सुक हो, उत्कण्ठित हो अपने घरों की खिड़कियों से झाँक रहे थे, दरवाज़े के सहारे खड़े थे, चबूतरे पर टहल रहे थे। अख़बारों की फेरी करने वाले निकलते तो लोग झपट कर अख़बार लेते और बम्बई में क्या हुआ, दूसरे सूबों, शहरों में क्या घटना घटी यह जल्दी जल्दी पढ़ने लगते। एक, दो, चार आदमी इकट्ठे हो कर भविष्य की सम्भावनाओं का चर्चा करते! कल दोपहर

की गोलियाँ चलने वाली घटना ने सब को उत्तेजित कर रखा था। लड़कियों पर गोली चली ! ओफ़, अनर्थ हो गया। पाप का घड़ा भर गया। अब कुछ न कुछ होके रहेगा। बूढ़े कहते, "हमारी कुल लक्ष्मियों पर यह अत्याचार ! लड़कियों पर गोलियों की बौछार ! हाय भगवान, कब तक क्षीर सागर में सोते रहोगे ! आओ न, देखो, कितना भयानक पाप हो रहा है।" नौ जवान तरह तरह की डींगें मारते। यह होगा, वह होगा। "अबकी देख लेना जरूर कुछ न कुछ फ़ैसला हो जायेगा। खुल्लम खुल्ला जलूस में औरतों लड़कियों पर गोली चले यह पहिली बार हुआ है। इसका कुछ नतीजा ज़रूर निकलेगा।" इन नौ जवानों का अधिक समय इसी प्रकार की लम्बी चौड़ी बातें करने में व्यतीत होता। नतीजा निकलता-क्या हिटलर ने इससे ज़्यादा ज़ुल्म किया था ? क्या तोजो इससे ज़्यादा ज़ुल्म करेगा।

और, रात की गोदाम जलने वाली घटना ने सनसनी बढ़ा दी। आ गये क्रान्तिकारी लोग। ये बड़े बहादुर होते हैं। इन्हें अपनी जान की परवाह नहीं होती। ज़रूर ये लोग बदला लेंगे। मामूली दूसरे नौ जवानों की तरह चूड़ियाँ पहिनने वाले ये लोग नहीं हैं, सरफ़रोश हैं, दिलावर, हिम्मतवाले ! हथेली पर सर रख कर चलते हैं। इनका पेशा ही क्रान्ति करना, देश को स्वतन्त्र करना, उसकी आज़ादी के लिये जान दे देना है। ज़रूर ये लोग कुछ न कुछ कर गुज़रेंगे। वाहरे सफ़ाई, आग लगा के चल दिये और पहरेदारों तक को ख़बर न लगी ! जनता का हृदय आज़ादी और रोमांचक, भावुकतापूर्ण सम्भावनाओं की कल्पना से स्पन्दित हो उठा

शहर में पहरा और भी सख़्त हो गया। हर चौराहे पर चार चार सिपाहियों का पहरा। गली गली में लाल पगड़ी। जहाँ कहीं भी, जिस किसी भी मुहल्ले में कांग्रेसी कार्यकर्ता या खद्दर पहिनने वाले दिखाई दिये, फ़ौरन पकड़ लिये गये। तलाशियों, गिरफ़्तारियों की धूम मच गई। किसी को भी अपना भविष्य निश्चित नहीं मालूम पड़ता था। किसी न किसी रूप में सब के रिश्तेदार, नातेदार, सम्बन्धी-स्नेही, जान

पहिचान के एक न एक व्यक्ति कांग्रेसी थे। इसलिये सबको डर था कहीं पकड़ न जाँय, कहीं कुछ हो न जाय। चाहते स्वराज ज़रूर हो, ज़रूर होगा। लेकिन यह सोच कर कि कहीं वह ख़ुद पकड़ न जाँय भीगी बिल्ली बन, दुम दबा, घर में घुस जाते। कोरी सद्इच्छा, स्वर्ण कल्पना और सक्रिय कार्य-भार-वहन की क्षमता दोनों में कितना अन्तर है!

विनय घर से निकला तो चौराहों पर रोक उससे पूछ ताछ होती। यहाँ कुछ वहाँ कुछ बताता हुआ वह आगे बढ़ता जाता था। आज वह पैन्ट कमीज़ पहने, चश्मा लगाये, अपटूडेट नौजवान था। इसलिये बहुत दिक़त नहीं पड़ी। इधर उधर घूमते हुये उसका दिल उदास होता जाता। सड़क सूनी थी। एक्का, ताँगा, गाड़ी, मोटरों की धूम न थी। दफ़्तर के बाबू लोगों के सिवा दूसरे राही बहुत कम दिखाई पड़ते थे। गम्भीर शान्ति का यह वातावरण अमङ्गलकारी और अशुभ का द्योतक था। बाज़ारों में हड़ताल होने से चीज़ों का क्रय-विक्रय नहीं हो रहा था। सब से अधिक परेशान थे वे ग़रीब जो दिन भर मेहनत करते और शाम को पंसारी के दूकान से आटा ख़रीद, टिक्की बना, खा पीकर सो रहते। हड़ताल की वजह से उन्हें न मजूरी मिलती न शाम को आटे का बन्दोबस्त हो पाता। उनके पेटों में चूहे कूदने लगते। उनकी औरतें उदास हो पूछतीं, 'कुछ लाये' और नहीं में जवाब पा, रो कर कहतीं, "हे भगवान! यह दाढ़ीजार हड़ताल कब ख़त्म होगी। क्या हमारे बच्चे इसी तरह कलप कलप कर जान दे देंगे।" और बच्चे, "माई भूख लगी है, कुछ दे दे," कहते हुये रोते, ठनगन करते और कुलमुलाते हुये पेटों को अपने नन्हें नन्हें हाथों से दबा सो रहते। इन नादान बच्चों को, इन बेबस दुखिया माँओं को, इन सूखी हड्डियों वाले नर कङ्कालों को क्या पता था कि यह हड़ताल देश की स्वतन्त्रता के लिये ही हो रही है, वह स्वतन्त्रता जिसमें उनकी अवस्था निश्चय ही आज जैसी दयनीय, करुणाजनक नहीं रहेगी।

ग़रीब की आज़ादी और उनका स्वराज्य तो उसकी रोटी है। रोटी

मिल जाय तो वह सड़क के फ़ुटपाथों पर पड़ा हुआ भी अपने को किसी राजा महाराजा से कम नहीं समझता। लेकिन जब मेहनत करने के लिये तैयार होते हुये भी काम न मिले, काम न मिलने के कारण रोटी न मिले और उसके बीबी बच्चे भूख के मारे कुलमुला कर, तड़प कर, बेबस हो सो जायें तो उसकी छाती फटने लगती है, वह दुर्वचन बोलता है, शाप देता है अपनी अनगढ़ गवाँरू बोली में। कहता है, "नाश हो जाय ऐसे समाज का, जिसमें ग़रीब की रोटी के लिये कोई इन्तज़ाम न हो"—चाहे रोटी न मिलने का कारण स्वराज पाने के लिये की गई हड़ताल ही क्यों न हो! कहा न, ग़रीब का स्वराज तो उसकी रोटी है।

विनय चला तो उससे तरह तरह के सवाल किये जाते। जो लोग उसे जानते थे, पास आ धीरे से कहते, "भैया कब तक यह हड़ताल चलती रहेगी? हमारे बच्चे तो भूखों मर रहे हैं। उनका क्या इन्तज़ाम होगा?" तो विनय से जवाब देते न बनता। कैसे समझाता कि वह इस हड़ताल का विरोधी है। शायद सच्चे मानों में वह उसका विरोधी था भी नहीं। बड़े कामों के लिये छोटे कामों में हर्ज होता ही है। छोटी मोटी दिक़्क़तों के लिये बड़े बड़े सवालों को थोड़े ही छोड़ा जा सकता है। लेकिन विनय कैसे क्या समझाये लोगों को? सिर्फ़ यह कहने से कि, 'हड़ताल जल्दी ख़त्म होगी, वह स्वयं हड़ताल अब नहीं चाहता, लेकिन क्या किया जाय मजबूरी है' उनका पेट नहीं भरता था। विनय इधर उधर के जवाब देता आगे निकल जाता। उसका दिल भारी था। उसकी उदासी बढ़ती जा रही थी।

कुलियों पर उसे पूरा भरोसा था। वहाँ पर ऐसी घटना हो जायेगी इसकी उसे बिलकुल उम्मेद अथवा आशंका नहीं थी। अब उसकी आँखें साफ़ देख रही थीं कि युनियन पर ताला पड़ेगा, कुलियों में धर पकड़ होगी, उन पर तरह तरह की सख़्तियाँ की जायेंगी। युनियन छत बिछत हो जायेगा। उसके किये कराये पर पानी फिर जायेगा। स्टेशन पर पहुँच उसने वहाँ का दारुण दृश्य देखा। युनियन के अच्छे अच्छे कार्यकर्ता पकड़े जा चुके थे। दफ़्तर खुला पड़ा था। कागज़ पत्रों का

पता नहीं था। दो कान्स्टेबिल वहाँ पहरा दे रहे थे। विनय कुछ देर तक खड़ा सोचता रहा। फिर यह न निश्चय कर सकने के कारण कि आगे क्या किया जाय वह वापस लौट पड़ा। पार्टी के दूसरे साथियों से सलाह करके ही आगे क़दम बढ़ाया जा सकता था।

ग़रीबों की परेशानी बढ़ती जा रही थी। आज दिन भर फिर हड़ताल रही। त्राहि त्राहि मच रही थी सब तरफ़। रुपये की कमी के कारण काम में भी हर्ज हो रहा था। संतोष को इसकी चिन्ता थी। दिन भर छिप छिपकर वह रईसों, आढ़तियों के दरवाज़ों पर धरना देता रहा। लेकिन उसे सफलता बहुत कम मिली। परेशान होकर वापस लौटा अपने साथियों के बीच तो उसने सुझाव रखा, "अब आतंक से ही काम लेना पड़ेगा। अगर खाने पीने की दिक्क़त पड़ी, तो लोगों का 'मोराल' गिरने लगेगा। सबसे बढ़ कर परेशानी यह है कि ख़र्च कैसे आगे चलेगा। सैकड़ों रुपये ख़र्च होते हैं। आमदनी का कोई ज़रिया नहीं है। क्यों न जमुना प्रसाद से वसूल किया जाय?" लेकिन साथियों को जमुना प्रसाद से कुछ भी मिलने की आशा न थी। प्रस्ताव का समर्थन उन्होंने नहीं किया। संतोष ने समझाया, "माँगने से तो वह कुछ नहीं देगा। हाँ, लेने से मिल जायेगा काफ़ी, बहुत रुपया है उसके पास। हमारे हाँथ पाँव हिले डुले तो काम बन जाय और रोज़ की यह चिन्ता छूट जाय। तभी हमारा काम ज़ोरों से आगे बढ़ सकता है।" साथी फिर भी झिझके तो उसे ताव आगया, "कीजिये न आप ही लोग कोई इन्तज़ाम? मेरे किये नहीं होता कुछ। जो रास्ता मैं बताता हूँ वह आप को मंज़ूर नहीं। ख़ुद कोई रास्ता दिखाते नहीं। आप ही बताइये, अब काम कैसे चलेगा?"

साथी चुप रहे। उनकी समझ में संतोष का कहना ठीक होते हुये भी सम्भाव्य नहीं था। फिर भी उसकी बात मानने के सिवा कोई चारा नहीं था। प्रोग्राम बन गया। संतोष घटना स्थल पर न जायेगा। चार साथी पूरी तरह तैयार होकर जायेंगे। अपना काम ख़त्म कर रफ़ू चक्कर हो जायेंगे। विवरण सहित सारी बातें बता, सब कुछ ठीक ठाक

होने के बाद बैठक समाप्त हो गई।

अधिकार मादक होता है। मद में सूझ बूझ की कमी स्वाभाविक है। संतोष अपनी पार्टी का नेता था। साथियों को कुछ भी हुक्म दे देने का उसे अधिकार था। इस समय उसने अपने अधिकार का प्रयोग किया था। इसलिये वह गम्भीर था और सजग भी, कर्तव्य के प्रति उतना नहीं जितना अपने अधिकार के प्रति। संतोष बैठक से लौटा और अपने निवासस्थान पर पहुँचा। सोच रहा था, 'अब कल से कोई दिक्क़त नहीं होगी। अगर हमारे साथी सफल हो गये और सफ़ल ज़रूर होंगे वे, तो फिर क्या है? धड़ल्ले से सारा प्रोग्राम चल निकलेगा।' वह अपनी छोटी सी कोठरी में घुसा और भीतर से दरवाज़ा बन्द कर काग़ज़ों को देखने पढ़ने लगा। दिया की टिमटिमाती रोशनी में पढ़ना मुश्किल हो रहा था। फिर भी काम तो करना ही था। उसने सारे शहर की रिपोर्ट देखी, छान बीन की और उसके बाद कल के लिये बुलेटिन की तैयारी में लग गया। बुलेटिन लिखते समय उसका दिमाग़ माधोपूर और जमुना प्रसाद की ओर बार बार चला जाता। वह घबरा भी उठता था अक्सर। कभी यह ध्यान आता कि उसने यह प्रोग्राम नाहक़ बनाया। फिर सोचता, रास्ता ही क्या था। और अन्त में निश्चय करता बहुत अच्छा हुआ। साले जमुना प्रसाद को भी सीख मिल जायेगी। उसकी पुरानी प्रतिहिंसा की भावना जाग उठती और वह कह उठता, "बहुत ठीक। अच्छा प्रोग्राम बना है।"

अँधेरी रात में नत्थू एक और साथी को ले जमुना प्रसाद के घर की ओर चला। दोनों रास्ते में चुपके चुपके बातें करते जा रहे थे। नत्थू शातिर था और उसका साथी पुराना हथकण्डेबाज़। दोनों घुटे हुये थे। इसलिये किसी को कुछ सीखना न था। गाँव की सनसनी और लोगों के डर का पूरा फ़ायदा उठाना था। यानी, आज की रात ख़ाली न जाय इसका पूरा इन्तज़ाम करना था। नत्थू ने अपने साथी से राय लिया, "कहो उस्ताद, बात ठीक है न? साले जमुना प्रसाद को भी चर्का दिया जाय तो समझो कुछ हुआ।"

"यार, वह साला बहुत घुटा हुआ है। उसे चकमा देना टेढ़ी खीर है।" दूसरे साथी ने कहा।

"आदमी चुस्त है, दुनियाँ देखे हुये है। लेकिन है तो बनिया ही। उसमें हिम्मत कहाँ है? एक घुड़की में ठीक हो जायेगा।" कहते कहते दोनों जमुना प्रसाद के घर पहुँच गये।

जमुना प्रसाद इन्तज़ार ही कर रहा था। इन लोगों को साथ ले मकान के पीछे वाले बाग़ में चला गया। तीनों बैठे और खुसुर-फुसुर बातें होने लगीं।

"कुछ माल मता है नहीं बेकार मेहनत होगी।" नत्थू ने लापरवाही से कहा।

"है क्यों नहीं? अभी अभी शादी हुई है। धराऊ गहने तो होंगे ही। बर्तन वग़ैरह काफ़ी मिल जायेंगे। कोई रोक टोक भी नहीं है। अकेले बूढ़ा रामदीन क्या कर लेगा?" जमुना प्रसाद ने समझाया।

"आप का कहना ठीक है लेकिन आज मन नहीं होता। क्या जाँय ज़रा-ज़ुरू से माल के लिये। हाँ, लाला राम लाल की बात होती तो कोसिस भी करते।" दूसरे आदमी ने कहा।

"तो साफ़ यह कहो कि झूठमूठ वायदा कर गये थे तुम लोग। जाना नहीं था तो कहने की क्या ज़रूरत थी?" जमुना प्रसाद ने अकड़ दिखाई।

"जाना क्यों नहीं है? जाना नहीं था तो आये किस लिये? जाना था और जायेंगे। लेकिन सवाल यह है कि जाने पर मिलेगा क्या? जो कुछ मिलेगा सब इधर उधर हो जायेगा?" नत्थू ने प्रत्युत्तर दिया।

"क्या मतलब है तुम्हारा? तुम्हें कम हिस्सा मिलता है क्या? एक ही चौथाई तो मैं लेता हूँ। बाक़ी तीन तो तुम्हीं लोगों के पेट में जाता है। लेता हूँ एक चौथाई और ज़िम्मेदारी इतनी बड़ी!"

"और हम लोगों को कौन तीन चौथाई मिलता है? और भी देवता तो हैं। उनके पूजने में इस तीन चौथाई का आधा निकल आता

है, और हम लोगों को मिलता है ठेंगा। जान जोखिम में डालो और बाद में उल्लू बन जाओ। बाज आये ऐसे काम से। सरकार, हम से यह सब नहीं होगा।"

जमुना प्रसाद ने जब देखा कि सब मामला गड़बड़ाया चाहता है तो ज़रा ढीला पड़ा। "अच्छा, उन लोगों की भी ज़िम्मेदारी मैं लेता हूँ। एक चौथाई उन लोगों के लिये निकाल देना। मैं उनसे निबट लूँगा। अब तो राज़ी हो!"

"राजी ही हैं। राजी होना ही पड़ेगा। लेकिन अखर जाता है सरकार, आप कुछ ऐसा करें कि हमारा पेट भी भरे। हमारे भी तो बाल बच्चे हैं। उनके लिये ही तो यह सब कुकर्म करना पड़ता है।"

"तुम घबड़ाओ नहीं। आज का काम कर आओ। मैं सब ठीक कर लूँगा। उन ससुरों को क्या पता कि कितना माल मिला। जो कहा जायेगा वही मानना पड़ेगा। इसी हेर फेर में तुम्हारा काम बन जायेगा। कब जाओगे?"

"जाते हैं थोड़ी देर में। जरा दम लगा लें, बदन में जोर आ जाय," कहते हुये नत्थू ने चरस की चिलम निकाली और उसे ठीक करते हुये बोला, "सरकार, आज बदला लेने का मौका है। छुनिया अकेली है। सोचता हूँ क्यों न पार कर दिया जाय। बूढ़ा रामदीन क्या कर लेगा? साले का गला घोंट दूँगा अगर शोर करेगा। बहुत दिनों से कोई गुट्ठल माल मिला नहीं।"

"हाँ, हाँ और क्या? उसने गालियाँ दी थीं और तुमसे भिड़ गया था उस दिन। वह साला तो भागा है। अब यह छोकरिया अकेली है। उड़ा दो साली को।" बढ़ावा दिया जमुना प्रसाद ने।

चिलम तैयार हुई तो नत्थू ने दम लगाकर अपने साथी को दिया। दोनों ने कस कस के दम लगाये। मंत्र पढ़ा, कान छुये और बुदबुदाते हुये घर से निकले। जाने लगे तो जमुना प्रसाद ने फिर कहा, "दोनों काम कर के आना।"

वहाँ से चलकर दोनों एक दूसरे मकान पर पहुँचे और धीमे धीमे

किसी से बातें कीं। थोड़ी देर में दो अद्धे आ गये। दोनों ने चढ़ा लिया। वहाँ से उठकर फिर आगे चले। बदन में तेल लगाया एक पेड़ के नीचे। लँगोट कसके बाँधा। सेवरी कमर में लगाई और लाठी चूम कर आगे बढ़ गये।

छबिया शाम ही से डर रही थी। आज उसे सारा घर जैसे खाने को दौड़ रहा था। लेकिन दादा से वह बताना नहीं चाहती थी। दादा घबराने के सेवाय और क्या कर सकते थे। अपने मन की बात मन में ही रख वह चारपाई पर पड़ रही। रोज़ दिया बुझा दिया करती थी। आज उसने दिया बुझाया नहीं। सिरहाने के गौखे में रख दिया और पड़ी पड़ी मदन की बातें सोचने लगी। उसे घर अच्छा न लगता था। घर में और कोई था नहीं। सास ननद कोई होतीं तो उनसे ही बात-चीत कर अपने दुख के दिन बिता देती। घर में दूसरा कोई नहीं था और दादा बहुत बूढ़े आदमी थे। घुल घुल कर मरना पड़ता था बेचारी को। 'वह कहाँ होंगे, कैसे होंगे, क्या खाते पीते होंगे' यह सोच सोच कर उसका दिल रोया करता। कई बार आँखें सूजीं और ठीक हुईं। कई जून बिना कुछ खाये पिये रह गई। लेकिन पेट को पालना ही पड़ता है। रूखी सूखी डालकर अधम सरीर को घसीटे जा रही थी।

आज शाम को उसका जी बहुत घबरा रहा था। कहीं की कुछ खबर नहीं मिली। विनय बाबू के यहाँ से भी कुछ समाचार नहीं आया। "भगवान, कुशल से रखो इन सब लोगों को। हमारे सोहाग की रच्छा करो। हमारी बहिन नसीम के सोहाग की रच्छा करो—भगवान्।" मूक प्रार्थ यें और मंगल कामनायें करती छबिया आसमान की ओर देखती रही। उसका कलेजा धड़क रहा था। पत्तों की खरखराहट, पेड़ की डालियों का हिलना सभी कुछ उसके डरे सहमे दिल को और भी अधिक भयाकुल कर रहे थे। चारों ओर से जैसे उसे घेर कर बहुत से आदमी उसका गला घोटने चले आ रहे थे। वह डर के मारे सिकुड़ी जाती थी अपने ही भीतर।

बारह बज गये फिर भी उसे नींद नहीं आई। वह उठी। घड़े से

एक गिलास पानी निकाल के पिया और फिर अपनी चारपाई पर आ पड़ी। उसे मदन की याद आने लगी। 'हाय, कब आवेंगे ? कब दर्शन होगा उनका ? कैसे अकेले कटेंगी ये काली काली रातें ? क्या मेरी तड़पन, मेरी हूक उनके ऊपर कोई असर नहीं डाल सकती ? क्या अब मैं अकेली ही रहूँगी ? क्या मेरी दुनियाँ अब न बसेगी ?' छबिया सोचती जा रही थी। हवा सनसन कर रही थी। घना अँधेरा और पत्तों की खड़खड़ाहट, तेज़ हवा —छबिया बहुत डर गई। चाहती थी उठ के दादा के पास चली जाय उनको जगा दे। उसने आँखें खोलीं। सामने आदमी की छाया सी मालूम पड़ने लगी। जैसे कोई काला काला भूत लाल आँखें किये उसकी ओर बढ़ा आ रहा है खा जाने की नीयत से। परछाईं उसकी ओर बढ़ने लगी। छबिया सहम गई। उसने कसके आँखें बंद कर लीं। लेकिन इस प्रकार आँखें बन्द करने से छाया के आने में, उसकी ओर बढ़ने में कुछ भी बाधा न पड़ी। उसे किसी की साँसें भी सुनाई पड़ने लगीं। अब आँखें खोलने की भी हिम्मत उसमें नहीं रही। साँसें भारी हुईं। लगा जैसे कोई उसके पास ही खड़ा उसको घूर कर देख रहा है। जैसे कोई अपने दोनों हाथ उठा उसका गला घोंट देने के लिये तैयार है ! वह ऊपर नीचे इधर उधर किसी भी तरफ़ देख न सकी।

सहसा उसके शरीर को किसी ने छुआ। छबिया चीख़ पड़ी, लेकिन आवाज़ गले में ही फँस कर रह गई। हू, हू, करती छबिया काँपने लगी। उसकी आँखें खुलती ही न थीं। किसी ने धीरे से पुकारा "छबी रानी !"

छबिया चुप रही। आवाज़ तो मदन जैसी, स्नेहपूर्ण थी। लेकिन छबिया कुछ समझ न पाई, विश्वास न कर पाई।

"छबी रानी !" फिर आवाज़ आई साँय साँय !

छबिया का सारा शरीर सिहर उठा। उसका हृदय किसी अप्रत्याशित भय से काँप उठा। वह चुप पड़ी रही। निर्जीव, अडोल सी !

कान के पास धीमे से किसी ने कहा, "मदन !"

छबिया चौंक उठी। आँखें खोल उसने देखा मदन मुस्करा रहा था खड़ा खड़ा।

"देखो, मैं अभी चला जाऊँगा। बड़ी मुश्किल से बच बच के आ पाया हूँ। तुम्हें देखने की लालसा थी। अभी थोड़ी देर में चला जाऊँगा।" छबिया के सिरहाने बैठ, उसका सिर सहलाते हुये मदन ने कहा।

छबिया को अपने ऊपर, अपने कानों के ऊपर, अपनी आँखों के ऊपर विश्वास नहीं हो रहा था। उसने ध्यान से मदन की ओर देखा। फिर वह करवट ले मदन की जाँघ में सिर गड़ा सिसकने लगी।

मदन जल्दी ही जाना चाहता था। सिर्फ़ आँख भर देख लेने के लिये आया था। उसने छबिया को प्यार किया, कुछ इधर उधर की बातें की और जाने की इजाज़त माँगी। छबिया के दिल की धड़कन बहुत ज़्यादा बढ़ गई थी। वह किसी भी हालत में मदन को जाने देने के लिये राज़ी न थी। वह क्या करे, उसका दिल ही नहीं मानता था। लेकिन मदन ने जब दृढ़ता से कहा, "अब जा रहा हूँ।" तो जैसे उसका सपना टूट गया। जैसे अपनी भावुकता की लोल लहरियों में तैरती तैरती वह किसी कठोर शिला खण्ड से टकरा गई थी। वह ताकती ही रह गई, कुछ बोल न पाई।

मदन उठ के चलने लगा तो वह मदन के पैर पकड़ बोली, "थोड़ी देर और रुक जाओ। तुम्हें आँख भर देख लूँ," छबिया ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की। मदन बैठ गया। थोड़ी देर तक चुपके चुपके दोनों की बातें हुईं। मदन ने छबिया को समझाया, उसे हिम्मत बँधाई और चलने को तैयार हो उठ खड़ा हुआ। जाते जाते कह गया, "दादा से कहना वे घबरायें नहीं। मैं कुशल से हूँ। खाने पीने की तकलीफ़ नहीं है। विनय भैया सब इन्तज़ाम कर देते हैं। अच्छा, जाता हूँ।" कहता हुआ, छबिया का माथा चूम मदन ओझल हो गया।

छबिया बहुत देर तक अपनी चारपाई पर बैठी रही। मदन ने वायदा करा लिया था कि वह रोयेगी नहीं, खाना खायेगी और अपनी

तन्दुरुस्ती का ध्यान रखेगी। छबिया सोच रही थी कि यह सब क्या हो रहा है। अपने घर में, अपने आदमी नहीं रह सकते। यह कैसा क़ानून है ! अपने घर में चोरों की तरह आना पड़े और भीगी बिल्ली की तरह दुबक कर, ज़रा सा बोल-बातचीत कर अपराधी की भाँति भागना पड़े। यह कौन सा क़ायदा है, यह कहाँ का न्याय है ! लेकिन बस ही क्या है !' सोचती-सोचती छबिया ऊँघने लगी।

रात के दो बजे थे। शाम ही को खा पी कर सो जानेवाले गाँव के लोग रात में देर तक नहीं जाग सकते। अभी तक छबिया जगी थी इस लिये उसका जी डर रहा था, परेशानी के मारे उसे नींद ही नहीं आ रही थी। अब मदन से मिल लेने के बाद जैसे उसके दिल और दिमाग़ का सारा बोझ उतर गया था। वह क्षणिक सुख, क्षणिक आनन्द जिसका अनुभव उसके भोले हृदय ने अभी किया था फिर अस्थिरता और आशंका की बोझिल अनुभूति से अवसाद और निराशा के लिये स्थान रिक्त करने लगे। जैसे उसके सिर पर पत्थर का एक बहुत बड़ा टुकड़ा आ पड़ा हो और वह उसके नीचे दबती जा रही हो। जैसे चारों ओर से पानी उठता आ रहा हो, उठते उठते उसके गले तक आ पहुँचा हो और वह उसमें डूबने वाली हो। छबिया की अलसाई आँखों की पलकें और भी बोझिल होने लगीं। वह अर्ध निद्रित सी अपनी चार-पाई पर पड़ रही।

नथुआ और उसका साथी दोनों घर में घुसे पीछे की ओर से। उन्हें यह पता था कि चौधरी रामदीन के घर में इस समय छबिया के अलावा और कोई नहीं था। चौधरी बाहर ही सोते हैं यह उन्हें मालूम था। इसलिये पीछे से घुस आना ही सब से अच्छा था। आँगन में आ उन दोनों ने देखा छबिया अपनी चारपाई पर पड़ी है और सिरहाने गोखे में दिया जल रहा है। चुपके चुपके वे आगे बढ़े। नत्थू ने बढ़कर जल्दी से छबिया का गला दबा उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। उसके साथी ने उसके हाथ पैर बाँध दिये। छबिया छटपटा कर रह गई डर के मारे उसकी जान ही जैसे निकल गई। उसे भीतर कितनी

घबराहट हो रही थी, उसके दिल में क्या हो रहा था, इसका अन्दाज़ लगाना कठिन है। लेकिन थोड़ी देर में वह बेहोश हो गई यह निर्विवाद है। उसकी आँखें टँग गईं थीं।

उधर उन दोनों ने सामान ढोना शुरू कर दिया। एक एक कर चार बक्से और सभी बर्तन बटोर वे आँगन के पार हो गये। पीछे की ओर उन्होंने संदूक खोल डाले और उसमें के ज़ेवरात और अच्छे कपड़े बटोर एक सन्दूक में रख, बर्तनों के गट्ठर बाँध चलने को हुये।

नत्थू का नशा ज़ोर पर था। सामान सब उसके हाँथ लग चुके थे। अब उसका दिमाग़ दूसरी ओर जाने लगा। उसे याद आया, मदन ने उसे पीटा था। उसे याद आया, छबिया अकेली चारपाई पर पड़ी है। वहाँ कोई नहीं है। उसे याद आया, वह कितनी भोली, कितनी चटकीली—गुट्ठल माल है। नशा बढ़ रहा था और नत्थू की काम वासना भी। उसके बदन में एक स्फूर्ति, एक ताज़गी आ गई। उसके अंग अंग फड़कने लगे। उसने सोचा भगवान का दिया यह मौक़ा है, चूकना बेवकूफ़ी है, नामर्दी है। और उसकी दुर्भावना दृढ़ होने लगी। सोचा, चलो बहती गंगा में हाथ धो लें। बहुत दिन की भूख है मिट जाय तो क्या बात है। नत्थू अपने साथी से फ़ुसफ़ुसाया। सामान एक ओर छिपा कर रख दोनों वापस लौटे। साथी पीछे रह गया। नत्थू आगे बढ़ा।

छबिया ने देखा अधपके बालों वाला एक काला देव उसकी ओर बढ़ा आ रहा है। उसके मुँह में कपड़ा ठूँसा हुआ था। छटपटा कर उसने हाँथ पाँव के बन्धन ढीले तो कर लिये थे लेकिन वे टूटे नहीं थे अभी तक। छबिया ज़ोरों से छटपटाने लगी। नत्थू और आगे बढ़ा। उसकी साँस ज़रा ज़ोरों से चल रही थी। मुँह से कच्ची शराब की दुर्गन्ध उड़ रही थी। आँखें लाल थीं, जैसे किसी क़ातिल की हों। छबिया काँप गई। उसे मालूम पड़ा, आगे उसका काल खड़ा है। उसे लगा, वह भूत अभी एक छिन में उसका गला दबा देगा। उसने चाहा, पुकारे दादा को। लेकिन मजबूर थी। उसने चाहा, हाथ पाँव खोल ले, लेकिन

असफल रही । नत्थू ने एक दो क़दम और आगे रखे । छबिया के प्राण सूख गये । उसे फिर बेहोशी आने लगी । वह मूर्छित होने लगी । कलेजे की धड़कन बढ़ गई थी, बहुत ज़्यादा । आँखों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । घर, चारपाई सभी घूम रहे थे, उसकी आँखें बन्द हो गई थीं । नत्थू आ उसकी चारपाई के पास पहुँच गया । चारपाई पर झुक कर उसने छबिया के दोनों बाज़ू दबाना चाहा जैसे ख़ुद मौत ज़िन्दगी के पुतले को निगलने के लिये झुकी हो, जैसे पाप विकराल मुँह बाये पावनता की प्रतिमूर्ति को उदरस्थ करने जा रहा हो, जैसे क़साई गाय की गर्दन पर छुरा रखने वाला हो, जैसे मानवता पाशविक वृत्तियों के कल्मष पूर्ण साये में निष्प्राण, परवश पड़ी अपनी मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही हो, जैसे सृष्टि की सारी कल्पना, सौंदर्य, आनन्द की देवी निस्पन्द पड़ी आख़िरी साँस से ले रही हो !

नत्थू ने छबिया के बाज़ू जोरों से दबाये । छबिया काँपी । सहमी । उसकी लाल आँखें खुल गईं । जाने कहाँ से उसके शरीर में अपार बल, असीम शक्ति आ गई । एक बार साँस खींच कर छबिया ने झटका दिया । बन्धन खुल गये । वह झपट कर खड़ी हो गई । और यह सब हुआ पलक भाँजते । नत्थू नशे में चूर था, डबल नशे में—शराब का नशा, पाप का नशा ! ताकता रह गया वह । कुछ न कर सका ! चोर का दिल आधा, पापी का दिल चौथाई ! छबिया झपटी और उसने सिल का लोढ़ा उठा लिया । नत्थू की समझ में अब आ गया कि कुशल नहीं है । छबिया ने लोढ़ा चलाया । नत्थू चम्पत हो गया । छबिया चिल्ला पड़ी —'बापू-बापू—दौड़ो—चोर !'

रामदीन भाग कर घर में आये । देखा छबिया प्रतिहिंसा की मूरत सी, लाल आँखें किये खड़ी है । उसके ओठ काँप रहे हैं । हाँथ पैर काँप रहे हैं । छबिया ने अपने बापू को देखा । 'कहाँ ! क्या है ?' कहते सुना । वह बापू की गोद में दौड़ गई । रामदीन ने छबिया को अपनी बाँहों में ले लिया । हाँफती छबिया फिर धीरे धीरे अपनी चेतना खोने लगी । लालटेन के क्षीण प्रकाश में चौधरी रामदीन अपनी पुत्र-बधू

को अपने कलेजे से चिपकाये खड़े रहे। सुध-बुध खो, मूढ़ से वे छबिया को देख रहे थे। छबिया की गर्दन लटक गई थी उनके कन्धे पर। जैसे आशा आश्वासन के सहारे टँगी हो!

नत्थू छलाङ्ग मार कर बाहर आ गया और सन्दूक उठा, गट्ठर ले, दोनों साथी निकल गये। रामदीन ने चोर चोर का शोर किया। गाँव वाले इकट्ठे होने लगे। चारो तरफ़ से चोर चोर की आवाज़ें आने लगीं। ज्यों ज्यों आवाज़ बढ़ती जाती थी नत्थू और उसके साथी के क़दम भी बढ़ते जाते थे। वे भागते जा रहे थे, भागते जा रहे थे! इधर से उधर कतरा कर निकलते ये लोग बढ़े जा रहे थे कि सामने से चार आदमी आते हुये दिखाई दिये। नत्थू ने समझा पुलिस वाले हैं। उन लोगों ने क़दम तेज़ी से बढ़ाये! नत्थू मुड़ना चाहता था। लेकिन मुड़ना नामुमकिन था। गाँव वाले शोर मचा कर इकट्ठे हो रहे थे। सामने ये लोग आ रहे थे। एक के सिर पर गट्ठर और दूसरे के सिर पर सन्दूक! भागने में भी दिक़्क़त हो रही थी। सामने वाले ललकार रहे हैं ऐसा मालूम पड़ा नत्थू को।

पीछे शोर गुल हो रहा था। लगता था कि बहुत से लोग उन्हें पकड़ने के लिये दौड़े चले आ रहे हैं। लगता था कि वे अभी चारों ओर से घिर जायेंगे और लोग उन्हें गिरफ़्तार कर लेंगे। नत्थू ने क़दम बढ़ाना चाहा। लेकिन किधर जाये। पीछे गाँव वाले आगे चार आदमी। पुलिस की सीटी बज रही थी। नत्थू ने सोचा क्यों न इन्हीं लोगों में घुस कर निकल जायें? कौन ये पीछा करके हमें पकड़ सकते हैं। नत्थू ने निश्चय किया वह और उसका साथी दोनों तीर की तरह चीरते हुये निकल जाँय। दोनों ने कदम बढ़ाया।

वे और नज़दीक आये। नत्थू की आँखों ने साफ़ देखा वह पुलिस वाले नहीं थे। उसकी हिम्मत बढ़ी। दोनों और नज़दीक आ गये। दोनों के सिर पर बोझ था। बहुत तेज़ भाग भी नहीं सकते थे। पास पहुँचते पहुँचते नत्थू को लगा वह लोग घेर घार कर नत्थू और उसके साथी को पकड़ लेना चाहते हैं। नत्थू और उसके साथी ने हिम्मत की। सामान

किनारे डाल जुट गये मार पीट करने में ! नत्थू ने पहिला वार किया। लाठी उनमें से एक के कन्धे पर गिरी। वह आदमी ज़मीन पर लेट गया। दोनों ने फिर लाठियाँ सम्भाली। उनमें से एक ने पिस्तौल निकाली और इसके पहिले कि वार पड़े गोली छूट गई। नत्थू चक्कर खा कर ज़मीन पर आ गया। गोली उसके माथे से निकल गई थी।

नत्थू का गिरना था कि उसका साथी उल्टे पाँव भाग निकला और मकानों के आड़ में होता हुआ लापता होगया। बक्स और गठरी पड़ी रह गई। तीनों साथियों ने अपने बेहोश साथी को उठाया और उसे लेकर धीरे धीरे अँधेरे में ग़ायब हो गये।

कुछ मिनटों बाद जब रात में पहरा देने वाली पुलिस और गाँव के कुछ लोग उधर आये तो देखा एक बड़ी गठरी में बर्तन बँधे पड़े हैं। बग़ल में एक सन्दूक है और पास ही में मुर्दा नत्थू पड़ा है। उसके सिर से ख़ून की धारा बह कर ज़मीन में सूख रही थी। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। चोरी का माल पड़ा था। नत्थू स्वयं मरा पड़ा था, उसके आसपास न और कोई आदमी था न और कोई चिन्ह। किसी की समझ में यह नहीं आ रहा था कि चोरी के सामान के साथ नत्थू की लाश यहाँ क्यों पड़ी हुई है। लोगों को कुछ कुछ यह ख़्याल आया कि शायद हिस्सा-बाँट में झगड़ा हो जाने से नत्थू की मौत हुई। लोग आपस में बातें करते हुये तरह तरह का अन्दाज़ भिड़ा रहे थे। असलियत का पता किसी को न लग सका।

नत्थू की मौत से दुख कम ही लोगों को हुआ। राहत अधिक लोगों को मिली। शायद गाँव की बहू बेटियों की इज्ज़त आबरू अब कम ख़तरे में रहेगी।

थोड़ी देर में घटना स्थल पर कोतवाल, दारोग़ा आदि पहुँच गये और लाश तथा सामान आदि लेकर कोतवाली वापस गये। इन अधिकारियों की राय में यह साधारण घटना न थी। इसके पीछे कोई गंभीर षड्यन्त्र था। नत्थू की मौत लाठी से नहीं हुई थी। देखने से ही मालूम पड़ता था कि उसे गोली लगी है। बदन पर और कोई घाव

न था। कहीं कोई चोट न थी। पुलिस की शंका बढ़ गई और गाँव वालों में भी सनसनी फैल गई। अगर साथी चोरों में झगड़ा हुआ होता तो वे सामान छोड़कर क्यों भाग जाते? नत्थू को मारपीट कर आसानी से सारा सामान ले वे रफ़ूचक्कर हो सकते थे।

तीनों आदमी अपने घायल साथी को ले फ़ौरन ही निकल गये थे। उन्हें मालूम था कि ज़रासी ढिलाई में ग़ज़ब हो सकता था। इसलिये वे बहुत तेज़ी से निकल गये और जल्दी ही गाँव से बहुत दूर अपने दफ़्तर के नज़दीक पहुँच गये। सबेरा होने में अभी बहुत देर थी। इसलिये उसे आराम से लिटा, पानी वानी का प्रबन्ध कर, टिंचर उसके कन्धे पर पोत अपने एक साथी को वहीं छोड़, वे संतोष के पास चले गये।

संतोष के पास ख़ाली हाथ ये लोग पहुँचे तो वह चिन्तित हुआ। एक साथी ने बताया, "हम लोग जमुना प्रसाद के मकान के पास पहुँचे ही थे कि कुछ शोर होता सुनाई दिया। यह पता लगाने के लिये कि मामला क्या है हम लोग रास्ता काट दूसरी ओर हो गये। सोचा कि जब पूरा अन्दाज़ लग जाय कि परिस्थिति क्या है और जमुना प्रसाद के यहाँ जाना उचित है या नहीं तो आगे का प्रोग्राम पूरा किया जाय। इतने में दो आदमी सिर पर सामान रखे भागते आते दिखाई दिये। हम निश्चय भी न कर पाये कि क्या किया जाय कि उनमें से एक ने हमारे साथी के कन्धे पर लाठी का वार किया और वह गिर पड़ा। तब उसके ऊपर गोली चलाना लाज़िमी हो गया। शायद वह ज़मीन पर गिर गया था। फ़ौरन ही हम लोग वहाँ से चम्पत हो गये।"

संतोष ने सारी बातें ध्यान से सुनीं। वह परिस्थिति की गंभीरता को समझ गया। मामूली चोट आ जाती तो कोई बात न थी लेकिन अगर उसकी मौत हो गई है तो मामला बहुत तूल खींचेगा। गोली की चोट का पता शव-परीक्षा से लग जायेगा। पुलिस इस मामले की छान बीन करेगी। गाँव वाले इसमें तबाह और बर्बाद हो जायेंगे। उसने पूछा, "चोरी किसके घर हुई थी कुछ पता है?"

"इसके बारे में हमें कुछ पता न लग सका। वहाँ हम लोग रुक ही नहीं सकते थे। पता कैसे लगता ?"

"हूँ, अच्छा हुआ। यह भी अच्छा रहा। लेकिन भाई, अब क्या होगा ?" अत्यन्त चिन्तित हो संतोष ने पूछा।

सब साथी एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। संतोष का ध्यान दो तरफ़ बँटा हुआ था। कभी वह सोचता, 'आगे का खर्च कैसे चलेगा ? सख़्ती दिनों दिन बढ़ती जा रही है। लोगों पर आतंक छाता जा रहा है। जो कुछ अपने साधन थे, उनको तो इस्तेमाल किया जा चुका है, अब क्या होगा ?' कभी उसे ध्यान आता माधोपूर का। 'जमुना प्रसाद खूब हथकन्डे दिखा रहा होगा। उससे बदला लेना और उसके बेई-मानी से कमाये हुये रुपये को अच्छे काम में लगाना भी चाहा तो विघ्न पड़ गया। अब गाँव में क़त्ल हो जाने से वहाँ ज़ुल्म-ज़्यादती, मारपीट होगी। यों ही पहरा चौकस रहा करता था अब तो और भी कड़ाई की जायेगी। उधर अब जाना किसी भी तरह ख़तरे से ख़ाली नहीं है। मदन फ़रार हैं। चौधरी रामदीन, मतई, कन्हई, बा० रामलाल सभी इस समय कितने परेशान होंगे ! छबिया बेचारी की क्या दुर्दशा हो रही होगी !' संतोष सोचता रहा, सोचता रहा।

बहुत देर तक बैठे बैठे सभी साथी सलाह मशविरा करते रहे। उधर पौ फटने को आई तो लोगों ने अपने अपने डेरों पर बिखर जाने की सोची। जाने लगे तो संतोष ने कहा, "आप लोग सोच कर आइयेगा कि अब क्या किया जाय। उधर माधोपर की भी ख़बर रखनी है। देखना है कि वहाँ के लोगों के साथ क्या सुलूक हो रहा है। जमुना प्रसाद के कारनामों का भी ध्यान रखना है।" सभी साथियों ने सन्तोष की बातें सुनीं। लेकिन बिना कुछ उत्तर दिये सिर नीचा कर वे धीरे धीरे चले गये।

उनके जाने के बाद संतोष उलझन में पड़ा रहा। संतोष को याद आया कि कप्तान अस्पताल में पड़ा हुआ है। उसके खाने पीने का प्रबन्ध करना होगा। दूसरा साथी भी घायल हो गया। उसके दवा दारू

का इन्तज़ाम करना होगा। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आता। विद्यार्थियों से अधिक उम्मेद रखी नहीं जा सकती। और कोई रास्ता है नहीं। सोचते सोचते उसके सिर में चक्कर आगया। वह लेट गया। उसकी दिमाग़ी परेशानी बढ़ती जा रही थी। बाहर उषा की प्रथम स्वर्ण रश्मियाँ ताना बाना बुनतीं, अपना जाल फैलातीं, चली आ रही थीं। खिड़की खोल कर संतोष ने बाहर झाँका। राही बटोही आने जाने लगे थे। खिड़की के सहारे सिर रखे वह सोचता रहा। दिमाग़ में एक बात आई। क्यों न विनय से कहूँ। वह दूसरी चीजों में मदद न करे लेकिन कप्तान के फल वग़ैरह के लिये तथा घायल साथी की दवा के लिये तो वह इन्तज़ाम कर ही सकता है। लेकिन उसे फ़ौरन ही ख़्याल आया विनय नहीं कर दे तब! उसका क्या ठिकाना!

संतोष विनय की बात सोचते ही उद्विग्न होने लगा। 'आज हम कितनी मुसीबतों में फँसे हैं, कितनी परेशानियों का सामना कर रहे हैं, और विनय मौज कर रहा है। बड़ा देश भक्त, क्रान्तिकारी बना फिरता था। आज जब चारो ओर आग लगी है, लपटें उठ रही हैं, वह चैन की बंसी बजा रहा है! ऐसे आदमी से मदद माँगना ही बेइज़्ज़ती है। ऐसे पवित्र क्रान्तिकारी काम के लिये इस देशद्रोही की सहायता मैं हरगिज़ स्वीकार नहीं कर सकता। हमारा उसका साथ ही क्या है! चाहिये तो यह था कि वह इस समय हमारी मदद करता, हमारे प्रोग्राम में साथ देता। लेकिन जब मैं हड़ताल कराने की कोशिश करता हूँ तो वह हड़ताल बन्द कराता है। जब मैं जलूस निकलवाने की कोशिश करता हूँ तो वह कहता है हमें जलूस निकलवाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये, गोलियाँ चल जायँगी, लोग मारे जायँगे। कायर, समझता है देश भक्ति आसान है। आज़ादी जैसे कोई रसगुल्ला है! आज़ादी की क़ीमत जान नहीं तो और क्या है? जान के डर से भागने वाले भी कहीं आज़ादी पा सकते हैं?' संतोष ने घृणा से ओंठ बिचका लिये। बाहर से सबेरे की ठंढी हवा भीतर आ रही थी। नवीन जागरण की नवल वेला थी। चारो ओर नवजीवन का वातावरण था। लेकिन संतोष

को यह हवा अच्छी न लगी। यह वातावरण न सुहाया। उसने एक बार बाहर देखा और तड़ से खिड़की के पल्ले बन्द कर लिये। उसे बाहर की रोशनी और हवा दोनों ख़राब लग रही थी।

और यह सबेरा माधोपुर के लिये काल बन कर आया। पुलिस अधिकारियों ने छबिया और रामदीन चौधरी के बयान लिये। बयान लेने के बाद गालियाँ भी सुनाईं। पुलिस को शक कुछ और था। नत्थू ने चोरी की थी लेकिन उसे इस प्रकार जान से किसने मारा? ज़रूर गाँव वालों की साज़िश रही होगी। नत्थू और रामदीन में दुश्मनी थी। रामदीन के लड़के मदन ने नत्थू को पीटा था। मदन इस समय फ़रार था। रामदीन और कन्हई-मतई समधी थे। इन लोगों की साज़िश न होती तो हथियार इस्तेमाल करके नत्थू को कौन मारता? उन्हीं लोगों ने लाला राम लाल की मदद से पञ्चायत बनाई थी। पञ्चायत छिपे छिपे काँग्रेस का काम करती थी, इसलिये यही लोग इसका भेद जानते होंगे। जमुना प्रसाद का यह सुझाव पुलिस अधिकारियों की समझ में आगया। ला० रामलाल, मतई, कन्हई, रामदीन सभी हिरासत में ले लिये गये। छबिया अपने घर में रोती बिलखती रह गई। लेकिन गाँव का एक आदमी भी उसे पूछने न आया। आतङ्क छा गया सभी तरफ़। गाँव में एक भी जवान आदमी दिखाई नहीं देता था। जैसे चिड़ियों की तरह सब कहीं उड़ गये हों।

विनय गाँव में पहुँचा तो वह स्वयं घबरा गया। चारों ओर जैसे उल्लू बोल रहे थे। पहिले की चहल पहल का पता न था। छोटे छोटे बच्चे भी जैसे डर से मारे घरों में अपनी माँओं के आँचल में दुबक गये थे। एक भयानक नीरवता और शान्ति का साम्राज्य था। विनय किसी किसी तरह छबिया के घर पहुँचा। देखा दरवाज़ा भेड़ा हुआ है। धीरे से दरवाज़ा खोला, भीतर गया डरते, डरते। छबिया चारपाई पर पड़ी सिसक रही थी। उसके पास जाने की हिम्मत विनय को नहीं हो रही थी। ओंठ दबाये थोड़ी देर तक वह दरवाज़े पर ही खड़ा रहा। फिर आँगन में आया और साँस खींच, सारी हिम्मत बटोर, बरामदे की ओर

बढ़ा, पैर दबा कर !

परवश, अबला, उजड़ी छबिया को चारपाई पर पड़ी देख विनय का दिल उमँड़ आया। उसकी सारी सहन शक्ति, उसका सारा धैर्य जैसे हृदय से उमड़ते करुणाश्रु के प्रबल प्रवाह में बह जाने वाला था। विनय स्वयं इस समय अपने को कितना कमज़ोर, कितना असहाय अनुभव कर रहा था। संयम और कर्मठता का पुतला विनय पीड़ा, ठेस, ग्लानि और करुणा से अभिभूत हो अपने को धिक्कार रहा था। और युवकोचित, भावुकतापूर्ण कल्पना की सजीव तसवीर छबिया सिसकियाँ भर रही थी। क्या यही स्थल है जहाँ पुरुष अपने पौरुष को धिक्कारता है? शायद! क्या यही अवसर है जब नारी को अपने अबलापन का कड़ुवा एहसास होता है? शायद! पुरुष और नारी, कभी-कभी दोनों लाचार हो जाते हैं!

विनय ठिठका खड़ा रहा। छबिया की ओर बढ़ने की उसकी हिम्मत नहीं होती थी। वह मूढ़ हो गया था, पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहा। छबिया का गला सूख गया था रोते रोते। औंधी पड़ी जाने कब से अपने भाग्य को रो रही थी। थक कर उसने करवट लिया और विनय दिखाई दिया। छबिया उठ बैठी। सिर की साड़ी सँभाल, खड़ी हो वह विनय की ओर झपटी और उसके पैर पकड़ धाड़ें मार कर रोने लगी। विनय जैसे सोते से जाग गया। झुक कर, ज़ोर लगाकर उसने छबिया को उठा लिया और ले जाकर चारपाई पर लेटा दिया।

"भैया," कहती छबिया ने अपना मुँह विनय की जाँघों में छिपा लिया।

"बहिन," इतना ही कह सका विनय और उसकी आँखें बन्द हो गईं। उसकी उँगलियाँ छबिया के सिर के बिखरे बालों में चलती रहीं। अभी तक लजीली, शर्मीली, गाँव की रहने वाली, अनपढ़, छबिया अतल सागर में अपने को डूबते हुये पा रही थी। पति नहीं, ससुर नहीं, घर में कोई नहीं! अब विनय को पाकर उसे तिनके का सहारा मिला। लाज-शर्म की याद ही न रही। शान्ति और सान्त्वना की आवश्यकता

लाज-शर्म के कल्पनात्मक बन्धनों को तोड़ देती है। छबिया विनय में माँ, भाई, बहिन, पति सब की उपस्थिति का अनुभव कर रही थी। उसका सिसकना धीरे धीरे कम हुआ और थोड़ी देर में विनय की जाँघ पर ही उसे नींद आ गई। आत्मीयता और ममतापूर्ण स्नेह-संसर्ग झुलसते हृदय और उमड़ते आँसुओं को शीतलता प्रदान कर सकते हैं। विनय की जाँघ पर सोई छबिया ऐसी लग रही थी जैसे निर्भय, निःसंशय, निरापद तरिणी शांत लहरों की छाती पर आ टिकी हो।

विनय चुपचाप वैसे ही बैठा रहा। ज़रा भी हिलने डुलने से छबिया की नींद खुल जाती और उसका ज़ार ज़ार रोना शुरू हो जाता। बिना हिले डुले विनय कभी छबिया की ओर देखता कभी बरामदे में इधर उधर। छबिया के ओठों पर कभी मृदु मुसकान की रेखायें दौड़ जातीं, कभी ये सिकुड़ जाते दृढ़ता, निश्चय और आवेश प्रकट करने के लिये। इतने निकट से, ऐसी मनोदशा में, विनय ने एक तरुणी को आज पहले पहल देखा था। उसका हृदय धड़कने लगा। उसके शरीर में, बाज़ुओं में स्फूर्ति का संचार होने लगा। उसने देखा छबिया बेखटके खर्राटे ले रही है।

बहुत देर तक विनय छबिया को इसी तरह लिये बैठा रहा। मन में तरह तरह के भाव उठते और विलीन हो जाते। उसे लगा कि आज ज़िन्दगी में पहिली बार उसे कोई ऐसा सुख, ऐसी शान्ति मिल रही है जिसका अनुभव उसे आज से पहिले कभी नहीं हुआ था। 'बहिन,' ओफ़! कितने स्नेह से इस लड़की ने मुझे 'भैया' कहा है! लेकिन क्या मैं सचमुच ऐसी बहिन का भाई होने लायक़ हूँ? क्या मैं भाई होने का दुर्वह भार वहन कर सकता हूँ। क्या मुझ में इतनी क्षमता, इतनी सामर्थ्य है? अन्तर्मुखी विश्लेषणों में लीन विनय न जाने कब तक इसी प्रकार बैठा सोचता रहा।

११

नसीम के घाव यों तो भर गये थे लेकिन दो तीन दिन और वहीं अस्पताल में रह कर आराम करने के लिये डाक्टर ने सलाह दी थी। इसलिये वह तीन दिन और रुक गई। आज उसके डिस्चार्ज का दिन था। बाबा तो पहिले ही पहुँच गये थे अस्पताल। विनय एम्बुलेन्स कार के चक्कर में गया। कार मिल गई तो उसी में बैठ वह अस्पताल पहुँचा। यों तो कार की रफ़्तार काफ़ी तेज़ थी। लेकिन विनय की भावनायें भी कम तेज़ न थीं। वह कल्पना के आसमान में उड़ रहा था। उसका हृदय हर्षोल्लास से विह्वल था। चाहता था कार ज़्यादा तेज़ी से चले, उसकी रफ़्तार कुछ और बढ़ जाय। वह सोचता ही जा रहा था। कार बढ़ती जा रही थी। वह अस्पताल पहुँच गया।

डाक्टर वापस जा चुका था। नसीम का सारा सामान तैयार था। विनय के पहुँचने की देर थी। विनय पहुँचा तो नूरजहाँ ने उसका स्वागत किया। इस समय वही ड्यूटी पर थी। पिछले दिनों में नसीम और नूरजहाँ में काफ़ी घनिष्ठता हो चुकी थी। कप्तान भी बातचीत करने लगा था। इन लोगों के पहुँचने के दूसरे ही दिन इन्हें दो अलग कमरों में रख दिया गया। नूरजहाँ दोनों की सेवा सुश्रुषा किया करती। अब जब चलने की बारी आई तो नसीम का जी भारी होने लगा। यों अस्पताल का वातारण कभी भी स्वस्थ और सुखद नहीं होता। उससे जी ऊबना स्वाभाविक है। कौन नहीं चाहता कि उसका पिण्ड छूटे ऐसी जगह से? लेकिन नसीम को ख़ुशी न थी। अभी कप्तान जो पीछे रह गया है। उसके अच्छे होने में अभी पन्द्रह दिन की देर थी। दोनों ने साथ साथ गोली खाई। दोनों साथ साथ अस्पताल में दाख़िल हुये। लेकिन नसीम पहले अच्छी हो गई इसलिये अब वह अपने घर वापस जा सकती थी। कप्तान का घाव ज़्यादा गहरा था। वह अभी वापस नहीं जा सकता था। नसीम को अकेले जाना अखर रहा था। उसे सच्ची ख़ुशी न थी।

अकबर सामान ले जाकर मोटर में रखने लगा। नसीम, नूरजहाँ और विनय कप्तान के पास चले। नसीम विनय के कन्धे पर हाँथ रखे सहारा लिये धीरे-धीरे जा रही थी। नूरजहाँ ने आगे बढ़ चिक उठा लिया और नसीम तथा विनय कमरे में दाख़िल हुये। इनको देख कप्तान मुस्कराया और उसने हाथ जोड़कर नमस्ते किया। अभिवादन का उत्तर दे दोनों कुर्सियों पर बैठ गये। नूरजहाँ भी आगई। वह नसीम की कुर्सी के हाथ पर बैठ गई। कप्तान ने विनय की ओर देखा और धीरे से पूछा

"कैसे हैं आप ?"

"ठीक हूँ, अच्छा हूँ, आपकी तबीयत कैसी है ? देखने से तो आप बहुत अच्छे मालूम पड़ते हैं।" विनय ने हँसकर कहा।

"हाँ, पहिले से तो अच्छा ही हूँ। सब इनकी मेहरबानी है।" कप्तान ने नूरजहाँ की ओर इशारा किया। विनय और नसीम दोनों की आँखें साथ ही नूरजहाँ की ओर उठ गईं। कृतज्ञता और सङ्कोच से नूरजहाँ का चेहरा लाल हो गया। वह कुछ बोली नहीं। सिर नीचा कर लिया केवल।

विनय मुस्कराता जा रहा था। नसीम ऊपर से ख़ुश बनने का प्रयत्न कर रही थी, लेकिन कप्तान को देख उसका दिल रो रहा था।

नसीम ने कहा, "मैं आपको देखने आती रहूँगी। किसी बात के लिये परेशान मत होइयेगा ? वैसे नूरजहाँ तो है ही। क्यों ?" नसीम ने नूरजहाँ की ओर देखा।

"जैसा आपका हुक्म।" नूरजहाँ ने कहा। उसने उड़ती हुई नज़रों से कप्तान की ओर देख लिया।

"भई कप्तान, मानना पड़ता है दोस्त! बहादुरी इसी को कहते हैं। हम लोगों का सिर झुक जाता है आप जैसे वीरों के आगे।" विनय उल्लास में था।

नूरजहाँ का चेहरा फिर लाल हो गया। उसने नीची पलकों से नसीम की ओर देखा। दोनों की आँखें मिल गईं। कप्तान चुप रहा।

अपनी प्रशंसा किसको अच्छी नहीं लगती लेकिन प्रशंसक पर उसे व्यक्त नहीं करना चाहिये। कप्तान कुछ न बोला। उसे याद आया, 'नसीम ने भी तो बहादुरी की थी। उसे भी गोलियों का सामान करना पड़ा था। उसे भी तो गहरे घाव लगे थे।' उसे याद आया—'नसीम ने जलूस का विरोध किया था। अन्त तक मना करती रही। लेकिन जब गोली चलने का समय आया तो वह आगे डट गई। विनय मेरी तारीफ़ कर रहे हैं लेकिन उन्हें नसीम की वीरता का अन्दाज़ नहीं है। मैं तो आवेश में था। आवेश में नतीजे का ध्यान कहाँ रहता है! कमज़ोरी तो नतीजे का ध्यान करने पर आती है। लेकिन नसीम जलूस को ही ग़लत समझ रही थी। उसे पता था कि गोलियाँ चलेंगी। उसके दिल में जोश नहीं था, परेशानी और चिन्ता थी। फिर भी कितनी बहादुरी से गोली खाने के लिये झपट कर सामने आ गई!' कप्तान की आँखों के कोरों पर आँसू के बूँद लुढ़क आये। वह सोचता रहा, 'यह लड़की है या देवी! मैंने इसे धक्का दिया, डाँट भी दिया, लेकिन गोली मुझे न लगे इसके लिये इसने गोली अपने बदन पर ले ली। विनय इसको पा कर सचमुच धन्य है।' कप्तान ने विनय की ओर देखा।

"हमारे कप्तान की जान बचाने में नूरजहाँ का कितना बड़ा हाथ है, जानते हो विनय?" नसीम ने पूछा।

विनय ने सिर उठाया तो नसीम ने बताया, "अपना डेढ़ पाव ख़ून दिया है नूरजहाँ ने कप्तान को। आपरेशन के बाद जब गोलियाँ निकल गईं तो कप्तान की हालत ख़राब थी। उसी वक़्त डाक्टरों ने ख़ून माँगा। ज़िद्द करके नूरजहाँ ने अपना ख़ून दिया।" प्रशंसा की नज़रों से नूरजहाँ की ओर देख नसीम ने कहा।

विनय मुस्कराया। "तो दोनों का ख़ून मिल गया, क्यों कप्तान!" विनय ने मज़ाक किया।

नूरजहाँ शरमा गई। कप्तान भी झेंप के कारण चुप ही रहा।

अकबर को आते देख विनय ने कहा, "अब चलना चाहिये। देर

ही रही है। फिर हाज़िर होऊँगा। आप जैसे बहादुरों से क्या कहना है। जो सीना खोलकर गोली खा सकता है वह अस्पताल की मुसीबतों को भी ख़ुशी ख़ुशी झेल सकता है। अच्छा, चियरियो!"

"चियरियो," कप्तान ने हाथ उठाया।

नसीम ने कप्तान को ध्यान से देखा। आँसू भर गये थे आँखों में। वह चुपके ही बाहर चली आई। साथ ही साथ नूरजहाँ भी बाहर निकली। धीरे धीरे तीनों कार के पास पहुँचे। कार में आराम से लेट नसीम ने नूरजहाँ से विदा माँगी और घर आने का उससे वायदा ले लिया। कार चल पड़ी।

वापस लौट नूरजहाँ कप्तान से बोली, "कितनी अच्छी जोड़ी है! दोनों एक से एक अच्छे!"

"हाँ नूरी, ऐसी जोड़ी भाग्य से ही मिलती है। विनय बहुत गंभीर है। नसीम भी बहुत गहरी है। और दोनों भावुक हैं, कर्मठ हैं। मेरे दिल में इन लोगों के लिये बहुत जगह है। आज हमारी इनकी लड़ाई है। ये हमारे आन्दोलन को ग़लत समझते हैं और उसका विरोध करते हैं। इससे हमें ग़ुस्सा आता है। हम ग़ुस्से में इन्हें देशद्रोही, ग़द्दार सभी कुछ कह डालते हैं। लेकिन बर्दाश्त का माद्दा बहुत है इनमें। अपने विश्वास में ये अटल हैं। इसलिये हमारी गालियों को ख़ुशी ख़ुशी सह लेते हैं। अगर इनका रास्ता सही होता और ये भी जी जान से हमारा साथ देते तो निश्चय ही हमारी जीत हो जाती। लेकिन क्या बताया जाय! ऐसे बेमौक़े इन्होंने हमारा विरोध करना शुरू किया कि हम इन्हें शायद क्षमा नहीं कर सकते। राजनीति के मैदान में हमारा मेल इनसे शायद कभी भी नहीं हो सकता। फिर भी इनकी हिम्मत और कर्मठता की तारीफ़ हमें करनी ही पड़ेगी।" कप्तान भावावेश में बोल रहा था। वह हाँफने लगा।

नूरजहाँ ने उसे पानी पिलाया और शान्त रहने का इशारा करती हुई बोली, "विरोध भी करते हैं, और गोली भी खाते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। ख़ैर, अगर विरोध करते भी हैं तो क्या हुआ?

आदमी कितने नेक हैं !"

"सवाल नेक और बद होने का नहीं है। मैं तो ख़ुद मानता हूँ कि ये बहुत नेक हैं। लेकिन आज जब इन्क़लाब का मौक़ा है, जब कि हममें से हर एक को अधिक से अधिक त्याग करके आज़ादी हासिल करने की कोशिश करनी चाहिये ये लोग हमारा सक्रिय विरोध करते है। साथ न दें तो कम से कम चुप ही होकर बैठ जाँय। हमारा काम बिगाड़ कर, हमारे प्रोग्राम में बाधा पहुँचा कर ये लोग शासकों का साथ देते हैं। यह पल्ले दर्जे की ग़द्दारी है। व्यक्तिगत रूप से हम इन्हें पसन्द नापसन्द कर सकते हैं लेकिन राजनीति में हमारा इनका साथ नहीं हो सकता। जिसे हम क्रान्ति समझते हैं उसे वे ग़द्दारी समझते हैं जिसे हम ग़द्दारी समझते हैं उसे वे क्रांति समझते हैं। फिर हमारा इनका मेल कैसा ? हाँ, यों नसीम बहुत अच्छी लड़की है और विनय भी बहुत शीलवान है !" कप्तान संयत रहा।

नूरजहाँ की समझ में ये उलझी हुई बातें नहीं आईं। वह दोनों को साथी सहयोगी, सहकर्मी समझती थी। दोनों के लिये उसके मन में बहुत इज़्ज़त थी। उनमें से एक ग़द्दार भी है यह समझ सकना उसके लिये असम्भव था। वह बैठी बैठी कप्तान की ओर ख़ाली आँखों से ताकती रही।

"क्या देख रही हो नूरी ?" स्नेह से कप्तान ने पूछा।

"कुछ नहीं, आपकी बात समझ में नहीं आई। लेकिन फिर कभी बताइयेगा। अभी आप थक गये होंगे।" नूरजहाँ ने कहा।

कप्तान मुस्करा कर रह गया। नूरजहाँ ने उठकर उसे मिक्सचर पिलाया और टेम्परेचर चार्ट की ओर देखने लगी। इधर कई दिनों से कप्तान का टेम्परेचर नार्मल था। नूरजहाँ ने सोचा अगर घाव इसी तरह भरते गये तो ये बहुत जल्दी अच्छे हो जायेंगे।

"नूरी, कुछ बोलो, तुम्हारा बोलना मुझे बहुत अच्छा लगता है।" कप्तान ने आग्रह किया।

"क्या बोलूँ ? मेरी समझ में ही नहीं आता कि क्या कहूँ।"

"बताओ, तुम्हें घरवालों की याद आती है ?" कप्तान ने पूछा।

"हाँ, कभी कभी।"

"उनसे मिलने को जी चाहता है ?"

"क्यों नहीं, कभी कभी तो यहाँ तबीयत बिल्कुल उचट जाती है। जी करता है कि घर भाग जाऊँ।"

"तो फिर जातीं क्यों नहीं ?"

"ऐसे ही।"

"यानी ?"

"घर वाले मुझे नीची निगाह से देखते हैं। मुझे बहुत ख़राब समझते हैं।"

"क्यों ?"

"मैं नर्स जो हूँ।"

"इसमें क्या बुराई है ?

"इसे तो वहीं जानें।"

कुछ देर रुक कर कप्तान ने फिर पूछा, "यहाँ जी घबराता है तो क्या करती हो ?"

"करती क्या हूँ ? कभी कभी इधर उधर घूम आती हूँ। जब जी बहुत घबराता है और उदासी बहुत ज़्यादा मालूम होती है तो अपना कमरा भीतर से बन्द करके ख़ूब रोती हूँ, जी भर। रो लेने के बाद तबियत हल्की हो जाती है फिर अपने कामों में लग जाती हूँ।" उदास हो नूरजहाँ ने कहा।

कप्तान चुपचाप उसकी ओर देखता रहा।

नूरजहाँ ने आगे कहा, "कप्तान, कितनी विचित्र बात है। जिन मरीज़ों की हम लोग इतनी सेवा करते हैं, इतना आराम पहुँचाते हैं वे और उनके घर वाले हमें नीच, पापी, चरित्र भ्रष्ट, फ़ाहिशा समझते हैं। जब मैं यह सोचती हूँ तो परेशानी ज़्यादा बढ़ जाती है। आज मैं आपकी सेवा कर रही हूँ। मैंने आपको जल्दी अच्छा करने के लिये अपना ख़ून भी दिया। लेकिन मैं जानती हूँ कि डाक्टर, कम्पाउन्डर,

दूसरे मरीज़ सभी उसके बहुत से माने निकालते होंगे। मैं यहाँ की ज़िन्दगी से ऊब गई हूँ कप्तान।"

"तब ?"

"अब क्या करूँ समझ में नहीं आता। यहाँ आकर मरीज़ों की सेवा करके पेट पालने को सोचा था। यहाँ का वातावरण इतना गंदा है कि मेरा जी यहाँ से भाग जाने को करता है। अब कहाँ जाऊँ ?" नूर-जहाँ की आँखों से चिन्ता, उलझन और निराशा टपक रही थी।

कप्तान समझ न सका कि क्या कहे। लेकिन जब नूरजहाँ ने पूछा, "क्या आप कोई रस्ता बता सकते है ?" तो वह और भी उलझन में फँस गया।

"रास्ता, क्या रास्ता बताऊँ नूरी ? बड़ी कठिन समस्या है।" कप्तान ने जवाब दिया।

"तभी तो आपसे पूछा। मामूली बात होती तो आपसे पूछने की क्या ज़रूरत थी ? आप मेरी मदद नहीं करेंगे ?" नूरजहाँ ने कप्तान की आँखों में अपनी आंखें डालकर कहा।

कप्तान सकपका गया। कह देना पड़ा उसे, "हाँ हाँ, बताओ मेरे लायक़ काम। मैं जो कुछ भी कर सकता हूँ उसके लिए तैयार हूँ।"

"सच ?" ख़ुश होकर नूरजहाँ बोली।

"हाँ, सच कहता हूँ नूरी ! तुम मेरे ऊपर भरोसा रख कर कहो। भरसक कोई काम उठा न रखूँगा।" कप्तान ने आश्वासन दिया।

"तो मुझे आप अपना बना लीजिये।" प्रार्थना की नूरजहाँ ने।

कप्तान थक् होके रह गया। ऐसी बात सुनने के लिये वह बिल्कुल तैयार नहीं था। उसके होश उड़ गये। सिर में चक्कर सा आ गया। कप्तान कुछ बोल न सका।

"बोलिये, आप चुप क्यों हो गये ? कहिये न, आप मुझे अपनी बनायेंगे ? बोलिये।" विह्वल हो नूरजहाँ ने कहा।

कप्तान फिर भी चुप रहा। उसकी चेतना जैसे क्षीण होने लगी हत बुद्धि और हतप्रभ सा वह नूरजहाँ की ओर देखता रहा। फिर उसने

आँखें बन्द कर लीं।

नूरजहाँ की ज्योतिपूर्ण आँखें और धड़कता दिल कप्तान के उत्तर का इन्तज़ार करते रहे, जिस प्रकार विद्यार्थी परीक्षा फल का इन्तज़ार करते हैं, जैसे जुआड़ी दाँव का इन्तज़ार करता है, जैसे आशा, आश्वासन की राह देखती है।

कप्तान निश्चय न कर सका कि वह क्या कहे। उसका क्रान्तिकारी जीवन, अनिश्चित भविष्य नाना प्रकार की सम्भावनाओं से परिपूर्ण, 'वह कैसे क्या कह सकता है? आग के शोलों पर चलने वाले, फाँसी के तख्ते का इन्तज़ार करने वाले प्रणय और स्नेह के जाल में कैसे फँस सकते हैं? मुझसे ऐसा प्रस्ताव करके इस भोली लड़की ने ग़लती की। अभी उस दिन इसने मेरी जान बचाई अपना ख़ून देकर। आज मैं अकृतज्ञ कैसे हो जाऊँ? लेकिन मेरा क्या क़सूर है? मैं कर भी क्या सकता हूँ?' कप्तान सोचता रहा। उसका हृदय चाहता था 'हाँ' कह दे। मस्तिष्क चाहता था 'नहीं', और दोनों के मंथन में उसकी आन्तरिक पीड़ा बढ़ती जा रही थी।

नूरजहाँ अपनी कुर्सी से उठी और कप्तान के पास आ, उसके माथे पर हाँथ रख कर पूछा, "कैसी तबियत है? चेहरा क्यों इतना पीला हो गया? क्या बात है?"

"कुछ नहीं, सब ठीक है," कहते हुये कप्तान ने अपना हाथ नूरजहाँ के हाथ पर धर दिया। कप्तान काँप उठा, इस स्पर्श से। उसने आँखें बन्द कर लीं। बन्द आँखों के कोरों से आँसू के कण टप, टप निकल रहे थे।

नूरजहाँ समझ गई कप्तान किसी उलझन में फँस गया है। उन्माद और आवेश में उसने अपना प्रस्ताव रख दिया था। लेकिन यह प्रस्ताव एक भारी समस्या बन जायेगी इसकी आशंका उसे न थी। उसने चाहा कप्तान के हाथ के नीचे से अपना हाथ खींच ले, लेकिन वह असफल रही। कप्तान ने उसका हाथ दबा लिया था ज़ोरों से। नूरजहाँ वैसी की वैसी खड़ी रह गई।

थोड़ी देर बाद कप्तान ने कहा, "नूरी, आओ सामने बैठो। कुर्सी खींच लो।"

नूरजहाँ कुर्सी खींच कर कप्तान के पास बैठ गई। कप्तान ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। नूरी ने कप्तान का हाथ अपने हाथों में ले लिया और उसकी ओर देखने लगी।

"नूरी, दिल पर पत्थर रख कर तुमसे कुछ कहने जा रहा हूँ। ग़लतफ़हमी में मत पड़ना। मैं अपनी पार्टी का एक सिपाही हूँ। मैंने अपनी ज़िन्दगी अपनी पार्टी के हाथों में दे दिया है। अब अपने ऊपर मेरा बस नहीं है। मेरा शरीर, मेरी जान सब कुछ पार्टी की है। हमारे लीडर संतोष हैं। उनके हुक्म के बग़ैर हम कुछ नहीं कर सकते। शादी ब्याह का तो चर्चा ही अभी नहीं उठता। तुम देखती हो, रोज़ ही तो हम लोगों की जान पर बनी रहती है। शायद मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार न कर सकूँगा।" कप्तान ने संयमशीलता का प्रमाण दिया।

नूरजहाँ न हिली न डुली। चुपचाप बैठी रही। कप्तान की हथेली पर उसकी पतली पतली उगँलियाँ चल रही थीं। वह उदास अथवा निराश थी या वह कुछ भी नहीं सोच रही थी—कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसकी मुखाकृति किंचित मात्र भी नहीं बदली। वह वैसे ही कप्तान की ओर देखती रही।

कप्तान उसकी ओर देख कर भी देख नहीं पा रहा था। कहने को उसने कह दिया। लेकिन उसने सही रुख़ लिया, सही जबाब दिया, इस पर उसे विश्वास न था। बाहर से वह संयम का पुतला मालूम पड़ रहा था, लेकिन उसके माथे की बूदें, उसके हृदय की धड़कन, उसके ओठों का रह रह कर हिलना-डुलना, उसके चेहरे का पीलापन सभी बता रहे थे कि कप्तान मन में रो रहा है, वह अत्यन्त दुखी और पीड़ित है।

उसकी व्यथा दूर करने के लिये नूरजहाँ ने कहा, "अच्छी बात है। जाने दो। मेरी बातों को मेरी नासमझी और अबोधता का फल समझ कर उसे भूल जाओ। मैंने ग़लती की। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।

ऐसे समय तुमसे इस तरह की बातें कह कर मैंने बहुत बुरा किया। कप्तान, मुझे क्षमा कर दो।"

"नहीं नूरी, क्षमा की कोई बात नहीं है। तुमने कोई अपराध नहीं किया। तुमने वही किया जिसकी आशा भावुक, कोमल, तरुण हृदय से की जा सकती है। तुमने वही किया जो अपने ख़ून से किसी की प्राणरक्षा करने वाली कोई भी तरुणी कर सकती है। तुमने बिल्कुल ठीक किया। तुमने अपना अधिकार माँगा। अपना अधिकार माँगने का हर एक व्यक्ति को हक़ है। लेकिन मेरी नूरी, हम लोग अब इन्सान नहीं रहे। हमारे इन्सानी जज़्बे समझ लो ख़त्म हो चुके हैं। हम पत्थर हो गये हैं। अपनी पार्टी में दाख़िल होते समय हमने शपथ ली थी कि संसार में हम किसी को प्यार नहीं करेंगे सिवाय अपने देश के, हम किसी की पूजा नहीं करेंगे सेवाय स्वतन्त्रता के, हम किसी के आगे सिर नहीं झुकायेंगे सिवाय अपनी पार्टी के। नूरी यह हमारी प्रतिज्ञा है, इसे पूरी करना हमारा कर्तव्य है। तुम इसमें मेरी मदद करो, मेरी नूरी!" कप्तान ने उस घायल की तरह जो मर्मान्तिक पीड़ा के कारण हिल डुल न सकता हो फिर भी आगे बढ़ने का प्रयत्न किये जा रहा हो, थकी और झुकी आँखों से विनीत हो नूरजहाँ की ओर देखा, अपराधी की भाँति।

"तो अपना फ़र्ज़ पूरा करो कप्तान! मैं तुम्हारे रास्ते का रोड़ा नहीं बनना चाहती। मैं कमज़ोर हूँ, लड़की हूँ, नासमझ हूँ। तुम अग्निपुत्र हो। दहकते अंगारे हो। तुम्हारी आँच में मेरी पापी वासनायें जल कर खाक हो जायें इसका आशीर्वाद दो, कप्तान!" हाथ जोड़ कर नूरजहाँ ने कहा। उसके होंठ काँप रहे थे। रोयें भरभरा गये थे। सारा शरीर हिल रहा था। झंझा के थपेड़ों में हिलती नाव की तरह नूरजहाँ की अस्थिरता, चञ्चलता और आवेग बढ़ते जा रहे थे। वह कप्तान से आँखें न मिला पाती।

"तुम मेरी प्रशंसा कर रही हो, या मुझे प्रताड़ित कर रही हो नूरी! मेरा हृदय कमज़ोर तो हो ही चुका है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारी

पूजा करता हूँ, तुम्हारे सामने सिर भी झुकाता हूँ। इसे तुम जानती हो। मेरी हार तो पहले ही हो चुकी है। अब केवल रीति निभाने की बात है। उसमें तुम मदद करो। तुमने वचन भी दिया है सहायता का। तुम्हारे सहारे, तुम्हारे बल पर मैं अपना फ़र्ज़ दुनियाँ के सामने पूरा करता जाऊँ यही कामना है। नूरी, सच जानो, विश्वास करो, मेरा दिल रो रहा है। हमारी ज़िन्दगी भी क्या है! हम क्या हो चुके हैं? हमारे अन्दर के सहज स्वाभाविक मानवीय गुण भी समाप्त हो रहे हैं धीरे, धीरे। लेकिन मैं सोचता हूँ नूरी, जो अपनी ग़ुलामी के के अभिशाप को समझते हैं, जो आज़ादी के कण्टकाकीर्ण मार्ग पर अनवरत गति से चलते जाना चाहते हैं, जो अपनों की, स्वजनों की माया जाल से मुक्ति पाकर आगे बढ़ते ही जाना चाहते हैं वह बहादुर और त्यागी हैं, लेकिन अगर ध्यान से देखो तो वे पल्ले दर्जे के कायर और भगोड़े भी हैं। आज मैं तुम्हारे आगे अपनी हार इसीलिये मान रहा हूँ क्योंकि दुनिया के सामने मैं वीर हूँ, नेता हूँ, कप्तान हूँ। मगर सच जानो नूरी, मैं अपनी आँखों में पापी हूँ, कायर हूँ, दोषी हूँ। मैं अपने को क्षमा नहीं कर सकता।"

नूरजहाँ अवाक, चकित, विस्मित, कप्तान को देखती रही। उसने चाहा था कि किसी तरह कप्तान चुप हो जाय। उसके ऊपर बहुत ज़ोर पड़ रहा है। लेकिन कप्तान अपने दिल के घावों को खोलकर रख देना चाहता था। वह थक गया था बहुत अधिक। नूरजहाँ ने उठ कर उसे फिर मिक्सचर दिया और प्रार्थना की, "अब सो जाओ कप्तान, तुम्हारे ऊपर बहुत ज़ोर पड़ रहा है।"

"सो जाऊँगा नूरी, अभी सो जाऊँगा। बहुत थक गया हूँ, लेकिन वायदा करो तुम मेरे मन का काँटा दूर करोगी, तुम मेरे मन की उलझन दूर करोगी। तुम मुझे सहारा दोगी।" दया की याचना सा करता कप्तान नूरी की ओर देखता रहा।

"वायदा करती हूँ।" नूरजहाँ ने कह दिया। ये शब्द उसके गले से बड़ी कठिनता के बाद निकले थे।

कप्तान ने आँखें बन्द कर लीं। वह थक गया था। उसका पीला मस्तक स्वेद बिन्दु मण्डित था, जल कण से सजे पीले कमल दल की भाँति। कप्तान सो गया वहाँ की भावुकतापूर्ण आलोड़ित उर्मियों के बीच। उसके चेहरे पर ओज न था, दीप्ति न थी, जैसे हारा हुआ, थका हुआ सिपाही हो। नूरजहाँ खड़ी कप्तान को एक टक देखती रही। उसका अनुभवहीन, अबोध हृदय कप्तान की बातें न समझ सका। कप्तान उसके लिये गूढ़ समस्या बन गया था। 'एक ओर वह उत्साही, वीर, प्राणाहुति देने वाला कप्तान था, दूसरी ओर अपनी कमज़ोरियों का शिकार अदना प्राणी! जब वह मुझसे स्नेह करता है, मुझे अपनाने के लिये तैयार है तो वह इस बात को खुलकर दुनिया के सामने क्यों नहीं कह सकता? क्या मनुष्य के दो व्यक्तित्व होते हैं? क्या मनुष्य के दो प्रकार के चरित्र होते हैं—सामाजिक और व्यक्तिगत! और क्या दोनों में इतना भेद होता है?' नूरजहाँ सोचती रही। वह कमरे में पैर दबाकर टहलती रही। 'कप्तान ने शपथ ली है कि वह किसी व्यक्ति से प्रेम नहीं करेगा। यह भी क्या शपथ है? प्रेम करना तो स्वाभाविक चीज़ है? क्या क्रांतिकारी बनने के लिये स्वाभाविकता भी छोड़ देनी पड़ती है? क्या क्रांतिकारी बनने के लिये आदमी को पत्थर और बैल बनना ज़रूरी है। उँह, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। जो हो, कप्तान मेरा हो चुका और मैं उसकी। वह मुझे ठुकराना चाहे तो ठुकरा ले। मैं तो उसे प्यार करूँगी ही।' नूरजहाँ टहल टहल कर बड़बड़ा रही थी।

सोते सोते कप्तान कभी काँप उठता, कभी उसके चेहरे पर हल्की स्मित की रेखायें दौड़ जातीं; कभी गंभीर दृढ़ता मालूम पड़ती, कभी निराशा, थकावट और उलझन! नूरजहाँ उसकी मुखाकृतियों और रेखाओं का अध्ययन ध्यानपूर्वक कर रही थी। कभी कभी उसे लगता कि स्वयं उसके हृदय की भावनायें कप्तान के चेहरे पर मूर्त रूप धारण कर क्रीड़ा कर रही हैं। वह चाहती धीरे से पास जा झुक कर वह कप्तान का माथा चूम ले। लेकिन वह जग जाय तो?

नसीम घर पहुँची तो विनय और अकबर उसे कुर्सी पर बिठाकर ऊपर ले गये और आराम कुर्सी पर लेटा दिया। इतने से ही वह थक गई थी। अकबर ने उसे एक गिलास दूध पिलाया और विनय को चाय दी। चाय पीकर सिगरेट फूँकता विनय फिर आदत के अनुसार कमरे में टहलने लगा। अब नसीम घर वापस आ चुकी थी। उसे सारी परिस्थिति बताई जा सकती थी। विनय नसीम को अपनी परेशानियाँ बताकर अपने दिल का बोझ हल्का कर लेना चाहता था। लेकिन संकोच हो रहा था उसे। नसीम अभी भी बहुत कमज़ोर थी। भयानक से भयानक घटनायें हो चुकी थीं। उनको सुनकर नसीम उन्हें बर्दाश्त कर सकेगी इसमें विनय को शक था। इसीलिये वह उलझन में फँसा टहल रहा था।

नसीम ने विनय को बुलाया। विनय आ गया। नसीम ने पूछा, "क्या उलझन है विनय? परेशान से क्यों दीखते हो? कोई ख़ास बात है?"

"नहीं, कोई ख़ास बात नहीं है। मैं बहुत उदास हूँ। मुझे आत्म-विश्वास की कमी का अनुभव हो रहा है। लगता है जैसे मुझ से अब कुछ हो नहीं सकता।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"क्या हुआ? क्या नहीं हुआ? जिस बात के लिये मैं डर रहा था, जिस चीज़ के लिये घबरा रहा था वही हुआ। रेलवे के गोदाम में आग लगाई गई। नतीजा यह हुआ कि कुली युनियन के दफ़्तर पर ताला पड़ गया। वहाँ की फ़ाइलें और काग़ज़ात सब ग़ायब हैं। दफ़्तर पर पुलिस का पहरा है। कुली युनियन के सभी अच्छे अच्छे कार्यकर्ता जेल के भीतर हैं।

"माधोपुर में तो और भी गज़ब हो गया। मदन तो तुम्हारे ही सामने फ़रार हो गया था। छबिया के घर चोरी हुई और उसे बेइज़्ज़त करने की कोशिश की नत्थू ने। वह सामान लेकर एक साथी चोर के साथ भाग रहा था कि सामने से किसी ने उस पर गोली चलाई। नत्थू

वहीं काम आ गया। उसकी लाश पुलिस ले गई। शव-परीक्षा से पता चला कि नत्थू गोली खाकर मरा है। पुलिस को गाँव के पंचायत वालों पर शक हुआ। मतई, कन्हई, रामदीन और बा० रामलाल सभी हिरासत में ले लिये गये। इस घर में छुनिया रोती बिलखती रह गई, उस घर में उसकी माँ। सारा गाँव उजड़ गया है। आतंक छाया हुआ है। गाँव के नौजवान और अच्छे तगड़े बदन वाले लोग भाग गये हैं। किसी की ज़िन्दगी, किसी की जानमाल ख़तरे से खाली नहीं है। मेरा भी बाहर निकलना, आना जाना कठिन हो रहा है। मदन अभी फ़रार ही है। शहर में एक भी कांग्रेस का कार्यकर्ता नहीं बचा है। आम लोग भी अपने को महफ़ूज़ नहीं समझते। कोई भी इस समय सुरक्षित नहीं है। जब मैं शहर से गुज़रता हूँ तो ऐसा लगता है जैसे सबकी आंखें मुझे घूर घूर कर देख रही हैं। सबकी आंखों से सन्देह, खीझ, निराशा टपकती रहती है। मुझे लगता है कि सारा शहर एक उजाड़ ग्राम हो गया है जिसमें निर्जीवता, निष्प्राणता और निराशा का बोलबाला है।" विनय फिर टहलने लगा।

नसीम ने सिर उठा विनय की ओर देखा। विनय सिगरेट का धुआं छोड़ता बाहर की ओर एक टक ताकता रहा। कुछ देर बाद लौट कर फिर उसने कहा, "अपनी कमज़ोरी मुझे खल रही है। हम लोगों की तायदाद कम है। हम जनता को सक्रिय नेतृत्व नहीं प्रदान कर पा रहे हैं। रातों दिन मरने कुढ़ने के बाद आग लगाने वाले आग लगा ही रहे हैं। तोड़ फोड़ का दौर दौरा है। संतोष के साथी ग़ज़ब ढा रहे हैं। हम अपने मज़दूरों में, कुछ हद तक थोड़े से विद्यार्थियों में सफलता-पूर्वक काम कर रहे हैं। लेकिन आम जनता हमारी बात मानने के लिये तैयार नहीं है। हम उससे अपनी बात मनवा नहीं पा रहे हैं। अभी तक मैं अपने को पत्थर का चट्टान समझता था जिस पर पानी की बूँदें असर नहीं कर सकतीं। लेकिन अब मुझे लगता है कि जैसे मैं बालू की भीत बन गया हूँ। वर्षा की हल्की सी फ़ुहार मुझे ढहा सकती है।"

"लेकिन यह ग़लत बात है विनय। तुम्हें अपने ऊपर भरोसा होना

इस समय उसी की धूम है। वह लोगों का 'हीरो' हो रहा है। उसका काफ़ी असर है शहर में इस समय। उसके साथी धुआँधार मचाये हुये हैं। उसकी बुलेटिन भी रोज़ निकलती है।"

"अच्छा! बुलेटिन भी निकलती है!" आश्चर्य से पूछा नसीम ने।"

"इनका संगठन अच्छा मालूम पड़ता है। पुलिस हैरान है लेकिन उसे न तो प्रेस का पता चल रहा है न उन आदमियों का जो बुलेटिन छापते और बाँटते हैं।"

"इसके माने यह हुये कि वह लोग अपना काम काफ़ी कामयाबी के साथ चला रहे हैं। क्यों?"

"हाँ, चला तो रहे हैं। इस समय जनता का पूरा सहयोग उन्हें मिल रहा है। न पैसों की कमी है न आदमियों की। जिस किसी पार्टी के साथ जनता होती है उस पार्टी का काम धड़ल्ले से चलता ही है। हमारी दिक़्क़त सच पूछो तो आज यही है। हमें जनता की भावुकता का विरोध करना पड़ता है और तर्क के सहारे उसे अपनी विचार धारा समझाना पड़ती है। आम तौर से लोग तर्क से कम काम लेते हैं, भावुकता से ज़्यादा। संतोष की तथाकथित सफलता का यही कारण है।" विनय ने नसीम को फिर ध्यान से देखा। "तुम्हारी तबीयत ठीक तो मालूम पड़ती है। हाँ, कमज़ोरी बहुत है।"

"मुझे लगता है कि अभी काफ़ी दिनों मुझे इसी तरह पड़ा रहना होगा। इसका मुझे अफ़सोस है। तुम इतनी सारी मुसीबतें झेल रहे हो और मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर पाती, इसका मुझे सदमा है। मजबूर हूँ, क्या करूँ?" नसीम उदास हो बोली।

विनय थोड़ी देर अपने बायें हाँथ की हथेली पर दाहिने हाथ की उँगलियाँ घुमाता रहा सिर नीचा किये। फिर कुछ सोच उसने कहा, "मैं सोचता हूँ नसीम तुम घर हो आओ। वहाँ तुम्हें हर तरह का आराम मिलेगा। घर की बात ही और है। यहाँ तुम्हारी देख भाल नहीं हो सकती। मैं भूत की तरह भागा भागा फिरता हूँ। कब यहाँ

रहूँगा इसका कुछ ठीक नहीं है। अकेले अकबर के ऊपर तुम्हें छोड़ने की हिम्मत नहीं होती। घर चली जाओगी तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा।"

"और मैं तुम्हें यहाँ किसके भरोसे छोड़ जाऊँ? कैसे रहोगे अकेले तुम?"

"मेरा क्या? हो जायेगा कोई न कोई इन्तज़ाम। खाने के लिये किसी होटल में इन्तज़ाम हो जायेगा। सोया करूँगा यहाँ। क्या राय है तुम्हारी?"

"मैं नहीं जाना चाहती। यह वक्त घर में जाकर आराम करने का नहीं है। तुम्हारी परेशानियों का मुझे अन्दाज़ है। हर तरफ़ से नाउमेदी और नाकामियाबी का सामना तुम्हें करना पड़ रहा है। ऐसे वक्त तुम्हें छोड़ कर जाना मैं बिलकुल ग़लत समझती हूँ।"

"नसीम, ज़िद न करो। मैं किसी वजह से तुमसे ऐसा कह रहा हूँ। मैं ख़ुद अपने को महफ़ूज़ नहीं समझता। अभी तक मैं बचा रहा। लेकिन माधोपुर और कुली यूनियन की घटनाओं के बाद मुझे यक़ीन सा हो रहा है कि एक न एक दिन मैं भी धर जाऊँगा। उस वक्त तुम्हें बड़ी तकलीफ़ होगी। मेरी ग़ैरहाज़िरी में तुम क्या क्या करोगी इसका मुझे अन्दाज़ है। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि तुम चली जाओ और कुछ आराम कर लो।"

"मुझे तुम्हारे ऊपर रहम आती है विनय! तुम मुझे या तो बिलकुल कम हिम्मत, कमज़ोर औरत समझते हो, या पल्ले दरजे की मतलबी। मैं दोनों में से एक भी नहीं हूँ। मैंने कह दिया कि मैं आज की हालत में तुम्हें एक मिनट के लिये भी छोड़ने को तैयार नहीं हूँ। घर जाकर क्या होगा? वहाँ मेरा है ही कौन। वहाँ जाकर वीरान जंगल की ज़िन्दगी की तरह अपनी ज़िन्दगी मैं बनाना नहीं चाहती। वहाँ, बूढ़े पापा हैं। वह सरकार बरतानिया के साये में पलने और जय मनाने वाले दक़ियानूसी ख़याल के ज़मींदार हैं। मेरी उन लोगों से बिलकुल नहीं पटती। पुराने तरीक़े से रहना सहना मुझे पसन्द नहीं।

उन्हें बात बात पर शर्की खानदान की नाक कटने का डर रहता है। बस चले तो मुझे बुर्क़ा भी ओढ़ा दें। तुम जानते हो, यहाँ रहकर पढ़ने के लिये मुझे कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। मेरे वालिद मेरा साथ न देते तो मेरी पढ़ाई लिखाई मिट्टी में मिल गई होती। किसी तरह से उनकी कोशिशों से एन्ट्रेंस पास किया। जब कालेज में पढ़ने का सवाल उठा तो उनकी भी हिम्मत टूट गई। उसके बाद ज़बरदस्ती लड़ झगड़ कर मैं यहाँ आई। मेरे वालिद तो अब नहीं रहे। जब तक वह ज़िन्दा रहे मेरी पूछताछ होती रही। अब मैं उनकी आँखों का ख़ार हूँ। पापा मुझे देखना भी पसन्द नहीं करते। और अब जब वह सुनेंगे कि मैं तुम्हारे साथ रहती हूँ और गोलियों का मुकाबिला कर चुकी हूँ तो वह मुझे एक मिनट भी वहाँ नहीं रहने देंगे। सोचो मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी। अम्मी जान मुझे बहुत चाहती हैं। लेकिन पापा के आगे उनकी एक भी नहीं चलती। इसीलिये अगर मैं वहाँ गई और मेरे साथ बदसलूकी की गई तो मेरी अम्मी को बहुत तकलीफ़ होगी। विनय, मुझे वहाँ भेजने की ज़िद न करो, मुझे यहीं रहने दो अपने पास।" नसीम आज पहिली बार अपने बारे इतनी सारी बातें विनय से कहीं।

विनय निरुत्तर हो गया। लेकिन उसके मन का बोझ और भी ज़्यादा भारी हो गया। उसने चाहा था कि कम से कम नसीम को तकलीफ़ न होने पावे। लेकिन शायद उसकी यह मंशा भी पूरी न हो सकेगी।

"क्या सोच रहे हो विनय?" नसीम ने पूछा।

"यही कि अब क्या किया जाय।"

"क्या किया जाय? जो करने से पार्टी का काम आगे बढ़े, प्रोग्राम कामियाब हो, वही किया जाय, और क्या?"

विनय गद्‌गद् हो गया। हर मौक़े पर नसीम कितनी चुस्त, कितनी तेज़ रहती है! विनय की आँखें मुसकरा रही थीं। उसने स्नेह से नसीम की ओर देखा।

"क्यों क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, सोचता हूँ, औरतें भी कितनी बहादुर हो सकती हैं ! तुमने बहुत बड़ा काम किया नसीम, गोलियों के सामने डट जाना मामूली बात नहीं है।" भावुक हो विनय ने कहा।

"इसमें क्या शक है, मुझसे बढ़कर बहादुर और कौन औरत हो सकती है ! लेकिन जनाब, आप मेरी तारीफ़ करके मुझे ख़राब क्यों कर रहे हैं ?" हँस पड़ी नसीम।

"अच्छा, तारीफ़ से लोग ख़राब हो जाया करते हैं ? ख़बर ताज़ा है ! किस अख़बार में छपी थी यह ख़बर ?"

दोनों खिलखिला पड़े।

उसी समय अकबर भागता आया सीढ़ियों पर से। घबराकर बोला, "भैया, पुलिस ने मकान घेर लिया है। बाहर बहुत से हैं वह लोग।"

"क्या ?" विनय चौकन्ना हुआ।

"हाँ, लगता है वे आपको पकड़ने आ रहे हैं। आसपास यह फ़ुस-फ़ुसाहट हो रही थी। मैं सिगरेट वाले से सुनकर आ रहा हूँ।"

"अच्छा नसीम, तिड़ी हो जाऊँ ?"

"हाँ, ज़रूर, लेकिन कैसे ? किधर से ?" घबराहट में नसीम ने कहा।

"यह लो, चला।" कह विनय ने लम्बे डग भरे ही थे कि आवाज़ आई, "मि० विनय, रुकिये, आपसे काम है !"

सामने शहर कोतवाल खड़े थे खुली पिस्तौल हाथ में ताने। उनके आसपास भीड़ थी दारोग़ा और पुलिस वालों की।

"इधर तशरीफ़ लाइये।" कोतवाल ने फिर कहा।

विनय ठिठका, फिर चुपचाप कोतवाल के सामने आकर खड़ा हो गया, "कहिये !"

"आपके घर की तलाशी लेनी है।"

"शौक़ से।" शान्ति और दृढ़ता से विनय ने कहा।

कोतवाल साहब अब तक काफ़ी नज़दीक आ चुके थे। पीछे पीछे

दारोग़ा, कुछ कान्स्टेबिल और दो तीन सादे कपड़ों में खुफ़िया भी। सिर्फ़ मेरे घर की या इनके घर की भी ?" विनय ने नसीम की ओर इशारा करते हुए कहा।

"क्या मतलब ? क्या आप का अलग कोई मकान है ?"

"जी नहीं, मकान तो मेरा यही है। हाँ, कमरा दूसरा है।"

कोतवाल आधा मिनट रुक कर फिर बोले, "मुझे इस पूरे मकान की तलाशी लेनी है।"

"अच्छा, यानी इनकी मेरी दोनों की तलाशी लेंगे आप ? ख़ैर, आप लोग जो महाशय तलाशी के लिये अन्दर आना चाहें मेहरबानी करके अपनी तलाशी दे दें," कहता हुआ विनय कोतवाल की ओर बढ़ा। पांच मिनट में सबकी तलाशी हो गई। वह लोग भीतर घुसे।

ढाई घण्टे तक विनय और नसीम के कमरों की तलाशी होती रही। बर्तन-भाड़े, जूते, कपड़े सभी अच्छी तरह परखे गये लेकिन कहीं कुछ न मिला। हां, काग़ज़ात, फ़ाइलें, किताबें बहुत सी उठा लीं उन्होंने।

लौटकर कोतवाल ने कहा, "मि० विनय, मुझे अफ़सोस है कि मुझे आपको गिरफ़्तार करना पड़ेगा। मैं अपनी ड्यूटी से मजबूर हूँ।"

"क्या, वारण्ट है गिरफ़्तारी का ?" चौंक पड़ी नसीम। अभी तक वह अपने को सँभालते हुये कुर्सी पर पड़ी थी। अपने से उठ कर इधर उधर चल सकना उसके लिये असम्भव था। वारण्ट का नाम सुनते ही वह झपट कर खड़ी हो गई। फिर उसका शरीर कांपने लगा। सिर में ज़ोर का चक्कर आया और सँभालते सँभालते भी वह अपनी आराम कुर्सी पर आ गिरी। बदन पसीने से भीग रहा था। माथे पर पसीने की मोटी मोटी बूँदें झलक रही थीं।

दौड़कर विनय ने पानी लाकर उसका मुँह धुलाया। टेबुल फ़ैन सामने लगाया तो कुछ मिनटों के बाद उसके धीरे धीरे होश आने लगा। विनय उसकी परिचर्या कर रहा था। अकबर के ओठ जैसे सिल गये थे। घबराहट, परेशानी, डर सब ने उसकी आवाज़, उसके शरीर के

अवयवों की गति रोक दी थी। वह काठ का हो गया था।

नसीम की तबीयत कुछ सँभली तो विनय ने कहा, "जाता हूँ नसीम! घबराना मत! हो सके तो घर चली जाना। यहाँ तुम्हें तकलीफ़ होगी।"

अकबर की ओर देखकर विनय ने कहा, "बाबा, जाता हूँ मैं। अब तुम देखना इन्हें। जल्दी ही इन्हें लेकर घर वापस जाना। अब तुम 'बिटिया' को ही अपना 'भैया' समझना—अच्छा, सलाम।"

अकबर एक टक विनय की ओर देखता रह गया। उसकी आँखें सजल थीं। निचला ओठ दाँत से दबा हुआ था। कुछ झुका झुका सा करुणा की सजीव मूर्ति अकबर विनय की ओर देखता रहा।

विनय ने नसीम की ओर देखा, उसकी पीठ थपथपाई, मुट्ठी बांध कर 'लाल सलाम' कहा और चल पड़ा। नसीम का घूँसे वाला हाथ उठा का उठा रह गया। ओठ हिले और हिलकर रह गये। वाणी नहीं फूटी। नेत्र सजल न थे। बदन में हरकत न थी। खामोश तमाशाई की तरह चित्रपट पर होता हुआ यह नाटक नसीम देखती रही, जैसे उसमें उसका कोई पार्ट ही न हो।

विनय चला गया तो अकबर धम् से ज़मीन पर बैठ गया, वहीं नसीम के पास। दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा वह सुबकने लगा। नसीम फिर भी न बोल पाई। बैठी बैठी अकबर को देखती रही—आत्म करुणा, आत्मरुदन और आत्मप्रताड़ना की जीवित प्रतिमा को। अकबर और नसीम, ओफ़! दोनों जैसे अनाथ हो गये। नसीम का विनय और अकबर का 'भैया'—उनसे छीन लिया गया।

"बाबा, पानी पिलाओ एक गिलास।" करुण, कोमल स्वर में नसीम ने कुछ देर बाद कहा, "गला सूख रहा है।"

"लाता हूँ बेटा" कहते हुये अकबर उठा और पानी वाले कमरे की ओर चला गया धीरे धीरे।

नसीम ने सुना, हिचकियों की आवाज़ आ रही थी। वह काँप उठी। रोमांच हो आया नसीम को। उसे विश्वास हो गया विनय अब

उसके पास नहीं है, वह चला गया है, उससे दूर—बहुत दूर—सीख़चों के अन्दर।

नसीम ने पानी पिया, गिलास अकबर के हाथों में दिया और उसी ओर ध्यान से देखती रही।

"बिटिया," अकबर की आवाज़ फूटी।

"हाँ बाबा," नसीम इतना ही बोल सकी।

"अब?" अकबर ने पूछा। उसकी ओर से फिर आँसू छलछला आये। ओंठ दबाये झिलमिल नज़रों से वह नसीम की ओर देखता रहा।

"अब?" अकबर ने फिर पूछा।

"क्या बताऊँ बाबा! अब तो वे पकड़ गये हैं।" भीतर के अन्धड़ तूफ़ान, सैलाब, और तुग़ियानी को ज़बरदस्ती रोकने का प्रयत्न करती हुई नसीम बोली, "वे पकड़ गये बाबा।"

नसीम ने आँखें नीची कर लीं। वह किसी तरह सब कुछ ज़ब्त कर लेना चाहती थी। "बाबा के सामने ज़ज़्बों को उभार नहीं देना चाहिये। इससे बाबा को तकलीफ़ होगी," विनय ने यही कहा था। नसीम कोशिश कर रही थी उसकी भावुकता बाँध न तोड़ दे। उसका दिल आंखों और ओठों पर न आ जाय। वह कोशिश करती रही।

विनय की गिरफ़्तारी की ख़बर शहर में आंधी की तरह फैल गई। संतोष के साथियों को भी यह समाचार मिला। सबके हृदय में यही बात आई, 'चलो अच्छा हुआ, काँटा दूर हुआ। अब हम आज़ादी से अपना प्रोग्राम चला सकते हैं।' संतोष को भी यह समाचार दिया गया। 'अयँ' करके वह रह गया। 'यह बुरा हुआ' निकल पड़ा संतोष के मुँह से। साथियों को विस्मय हुआ। संतोष का उदास होना उनकी समझ में नहीं आया, आश्चर्य से वे उसकी ओर देखते रहे।

संतोष ने अपने साथियों की ओर देखा तो उनके मन के भावों को अच्छी तरह समझ गया। मुस्करा कर बोला, "साथियो, आपको इस ख़बर से ख़ुश नहीं होना चाहिये। विनय से हमारी राजनैतिक लड़ाई है। हम उसे ग़द्दार, दुश्मन समझते हैं। लेकिन उसकी गिरफ़्तारी

में हमारी जीत नहीं है हमारी हार है। यह तो साफ़ हमारे दुश्मनों की जीत है। कुछ भी हो, अपने अपने ही हैं—ग़ैर ग़ैर ही। विनय का मेरा बहुत दिनों का साथ है। मैं उसे ख़ूब जानता हूँ। आज वह जेल चला गया है। मुझे इसका दुख है।"

सन्तोष के साथियों को उसकी बातें समझ में नहीं आईं। 'जो ग़द्दार है, दुश्मन है, उसका रास्ते से हट जाना ही श्रेयस्कर है। विनय गिरफ़्तार हो गया तो क्या बुरा हुआ? रास्ते का रोड़ा हट गया।'

"अपने लोगों को भी अब अधिक होशियार रहने की ज़रूरत है। एक एक क़दम फूँक कर रखना है," संतोष ने फिर कहा। "रुपयों के लिये अब क्या होगा?" उसने पूछा।

साथियों की उदासी का कारण सामने उपस्थित हो गया। वे मुँह लटका कर बैठे रह गये।

संतोष ने गंभीर होकर कहा, "अब आगे काम चलना असम्भव है। बिना रुपये के एक दिन भी काम नहीं चलेगा। कोई न कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा। हाँथ पर हाँथ धरे बैठे रह कर कुछ नहीं किया जा सकता। ज़रा दिमाग़ पर ज़ोर डालिये। यों उदास होने से क्या काम होगा?"

"दिमाग़ काम नहीं करता," उनमें से एक ने कहा, "हाँथ पाँव मारने की कोशिश की तो इधर उधर। लेकिन कोई भी कोशिश कामियाब नहीं हो रही है।"

"क्यों न जमुनाप्रसाद के लिये फिर कोशिश की जाय?" दूसरे साथी ने पूछा।

"इसमें बहुत ख़तरा है। गाँव के सब लोग गिरफ़्तार हो चुके हैं। वहाँ एक क़त्ल भी हो चुका है। आज विनय भी पकड़ गया। मेरे पीछे पुलिस बुरी तरह पड़ी हुई है। ऐसी हालत में उस गाँव की ओर रुख़ भी करना बेवक़ूफ़ी होगी। आप लोग और रास्ता सोचिये। अगर आप कोई रास्ता नहीं निकालते तो मजबूर होकर मुझे ख़ुद बाहर निकलना पड़ेगा।" संतोष ने गंभीर हो चुनौती सी देते हुये कहा।

साथी सहम गये। 'चाहे जैसे भी हो संतोष ऐसा ख़तरा उठावे इसकी इजाज़त वे नहीं दे सकते थे। अगर संतोष धर गया तो सारा काम ठप हो जायेगा। वही तो पार्टी का नेता है, उसका दिल है, दिमाग़ है,' सब के दिलों में एक साथ यही विचार आया। साथियों ने एक दूसरे की ओर देखा। संतोष के माथे पर बल पड़ गये। आँखें चौड़ी कर घूरता सा उसने अपने साथियों की ओर देखा, "कहिये, क्या राय है?"

"ऐसा नहीं हो सकता। हम आपको ऐसा ख़तरा नहीं उठाने देंगे।" स्नेह से एक साथी ने कहा।

"आप ख़ुद कुछ करेंगे नहीं, मुझे भी नहीं करने देंगे, तो क्या होगा?" संतोष झल्ला उठा।

साथियों में सब से छोटा लड़का बोल उठा, "आप इजाज़त दें तो मैं कुछ कहूँ।"

"हाँ, हाँ, बोलो, इजाज़त की क्या बात है?"

"मैं अपने घर से रुपये लाऊँगा, नानी का सन्दूक तोड़ कर।" लड़के ने कहा।

इन्टर मीडियेट क्लास में पढ़ने वाले इस भोले तरुण की ओर संतोष ने स्नेह से देख कर कहा, "तुमने ठीक सोचा। लेकिन अभी इसकी ज़रूरत नहीं। तुम छोटे हो, अभी इन बातों को अच्छी तरह नहीं समझते। घर से इस तरह रुपये लाने से पार्टी की बदनामी होगी और तुम्हारा भी घर में रहना मुश्किल हो जायेगा। मैं ख़ुद अब निकलूँगा और रुपयों का इन्तज़ाम करूँगा। हम छिप कर बैठे रहें और पार्टी का काम ठप हो जाय, इससे अच्छा यह है कि हम गिरफ़्तार हो जाने के ख़तरे का सामना करें।"

संतोष की यह बात साथियों की समझ में नहीं आई। वे अब भी संतोष से सहमत नहीं थे। लेकिन संतोष के निश्चयों को वे टाल नहीं सकते थे। उन्हें मालूम था कि संतोष के दिमाग़ में एक बात एक बार आई तो वह निकल नहीं सकती थी। डरते दिलों से मौन हो उन

लोगों ने संतोष का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। साथियों के चले जाने पर संतोष अपने कमरे में टहल टहल कर अपना प्रोग्राम सोचता रहा। बहुत सी बातें सोचीं उसने, बहुत सी तरकीबें सोचीं लेकिन इनमें से कुछ भी उसे पूर्णतया सम्भाव्य न लगा। वह उदास होने लगा। उसने अपने साथियों के चेहरों पर निराशा और उत्साहहीनता की रेखायें देखी थीं। वह समझ गया था कि उनमें पहिले जैसा अदम्य उत्साह और जीवट नहीं है। अब वे बहाने ढूँढ कर अपनी निष्क्रियता पर पर्दा डालना चाहते हैं। अभी जुट कर ये लोग चन्दा जमा करने लगें तो काफ़ी रुपये मिल सकते हैं। फिर किस बात की दिक़्क़त होगी? लेकिन इन साथियों के कमज़ोर दिलों की थाह संतोष को मिल चुकी थी। वह बहुत चिन्तित था। ऐसे मौक़े पर जब कि अपनी शक्ति का एक एक बूँद ख़र्च कर देना चाहिये, साथी नौजवानों की बहाने बाज़ी की बातें सुन कर सन्तोष आपे में न रहा। लेकिन उसे रोकना ही पड़ा अपनी ज़बान को।

साथियों के चले जाने के बहुत देर बाद तक संतोष को शान्ति नहीं मिली वह उद्भ्रान्त और उद्विग्न हो अपने कमरे में चहलक़दमी करता ही रहा। टहलते टहलते उसने अपनी बाई हथेली पर दाहिने हाँथ का घूँसा मार कर दाँत पीसते हुये कहा, 'नान सेन्स'!

मदन को विनय की गिरफ़्तारी का पता शाम को चला। अब वह अपने को सँभाल न सका। विनय के रहते मदन का दिल घबरा कर, गुस्सा हो कर शांत रह जाया करता था। लेकिन अब उसके बर्दाश्त की सीमा आ गई। फ़रारी हालत की परेशानियाँ, चौबीस घण्टे की बेकारी, हृदय का मन्थन और मस्तिष्क की उड़ान सब ने उसे उद्-भ्रान्त बना दिया। ऊब रहा था इस दशा से वह। फिर ख़बर मिली चोरी की। उसे क्रोध आया। लेकिन नथुआ मर ही गया था इसलिये उसने कहा था, "जाने दो, साले की क्या बात करबा, वह तो मर ही गया है।" फिर यह भी पता चला कि उसके बापू, मतई चाचा, उसके ससुर कन्हई और बा० रामलाल सभी हिरासत में ले लिये गये

हैं। इससे उसको बहुत धक्का लगा। उसको यह भी पता चला इन लोगों की शिकायत जमुनाप्रसाद ने की थी और उसी ने सब को फँसवाया था। उसने दाँत पीस कर कहा था, "उससे बदला मैं लूँगा। विनय और सन्तोष यों ही कटकटा कर रह गये। अब मैं उसे उसके पाजीपन का मजा चखाऊँगा। बदला न लिया तो अपने बाप का असल बेटा नहीं।" लेकिन विनय ने उस दिन समझाया था और उसकी बात मान वह चुप रह गया था। आज विनय की गिरफ्तारी की ख़बर देने वाला व्यक्ति आया था। उसने और ही बातें बताईं। सुन कर मदन का ख़ून खौल रहा था। बर्दाश्त और ज़ब्त की एक सीमा होती है। आज वह सीमा भी पार हो गई।

उस व्यक्ति ने कहा था कि, "नथुआ का साथी गिरफ़्तार हो गया। पिये हुये पड़ा था सराय में। उसने पुलिस में बयान दिया। बयान इस प्रकार था, 'मैं नथुआ के साथ उस रात को था। जमुनाप्रसाद हम लोगों को अपने घर के पीछे वाले बाग में ले गये। वहाँ तय हुआ कि थोड़ी देर बाद चौधरी रामदीन के मकान में हम लोग चोरी करने जायेंगे। जमुना प्रसाद ने चौथाई हिस्सा अपने लिये माँगा। हम लोग तैयार हो गये। पी खा कर करीब डेढ़ बजे रात को हम लोग पीछे की ओर से चौधरी के घर में घुसे और झपट कर छबिया के मुँह में कपड़ा ठूँस कर उसे चारपाई से बाँध दिया। इसके बाद तीन सन्दूक और एक गट्ठर बर्तन लेकर हम लोग बाहर आये। बाहर नत्थू को याद आया कि एक काम और बाकी रह गया।

'नत्थू फिर घर में वापस गया। मैं भी उसके पीछे पीछे गया। उसकी नीयत खराब थी। यही जमुना प्रसाद ने उसे सिखाया भी था। नशा उसका तेज था। वह सीधे छबिया की चारपाई के पास पहुँच कर झुका ही था कि छबिया यकायक झपट कर उठ गई। उसने पास ही में पड़ा सिल का लोढ़ा उठा कर चलाया मारने को। नथुआ भाग निकला। मैं पहिले ही चम्पत हो गया था। बाहर आ सामान लेकर हम लोग भगे ही थे गाँव में शोर होने लगा। पुलिस की सीटी

बजने लगी। हमारी जान सूखने लगी। हम लोग भागे तो भागते ही गये। सामने से चार आदमी आते दिखे। अब और भी कठिन मौक़ा आया। न आगे रास्ता न पीछे। सिर पर बोझ। पास पहुँचे तो दिखाई दिया कि वह लोग पुलिस वाले न थे। सहर के बाबू लोगों जैसे थे। सोचा चीर कर निकल जायँ, लेकिन पास पहुँच कर सामना हो गया। सामान रख हम लोग जुट गये। एक लाठी नत्थू की उनमें से एक के कन्धे पर पड़ी। वह तो वहीं ढेर हो गया। तब तक नत्थू के माथे में एक गोली लगी। वह भी ज़मीन पर आ गया। मेरी जान चुटिया में आ गई। सब सामान वहीं छोड़ मैं उल्टे पाँव भागा और घरों के पीछे खेतों में से होकर किसी तरह निकल आया। वहाँ से निकल जमुना जी के किनारे रात बिताई और भोर होते ही सराय में पहुँच गया। उसके बाद का किस्सा आप जानते ही हैं।'

"उसने सारी बातें काफ़ी पिटाई पड़ने पर क़बूल दी थीं। लेकिन इसका कौन सा हिस्सा नोट किया गया और कौन सा छोड़ा गया, यह किसी को नहीं मालूम। सुना, जमुना प्रसाद ने भारी थैली लुटाई है।"

मदन ने यह वृत्तान्त सुना। वह धैर्य और संयम दोनों को खो चुका था। उसने ज़मीन पर थूका, फिर पैर ज़मीन पर पटका, फिर घूंसे बाँधे और मन ही में क़सम खाई, "अब की बदला न लिया तो हिजड़ा हूँ, मरद नहीं। अपने बाप का असल बेटा हूँ तो जमुना मैया की सौंह, जमुना प्रसाद को जीते जी न छोड़ूँगा। विनय भैया, बुरा मानें या भला, जब अपने घर की लुगाई की आबरू पर ही बन आई तो रह क्या गया? लानत है ऐसी मरदूमी पर!"

मदन ने अपने मन में सारी बातें कहीं। मुँह से उसने कुछ नहीं कहा। जब वह व्यक्ति जाने लगा तो मदन ने उसे सहेजा कि वह अकबर के पास जाय और उसे निर्दिष्ट स्थान पर नौ बजे मिलने के लिये कह दे। वह व्यक्ति चला गया। मदन गुमसुम बैठा रहा। उसके ओठ रह रह कर हिल उठते। भौं गुथे हुये थे। माथे पर बल पड़ गये थे। सूखी आँखें कभी ज़मीन की ओर घूर कर देखतीं कभी आकाश में शून्य

की ओर। कभी उसकी मुट्ठियाँ बँध जातीं, कभी वह अपनी जाँघों पर हाँथ पटकने लगता। उसकी हालत विक्षिप्त पागलों जैसी थी। वह आज तक विनय की बातें आँख मूँद कर मानता चला आया था। लेकिन आज विनय के प्रति उसकी आस्था डिगने लगी। "विनय ने छबिया वाली बात क्यों छिपाई? क्या यह भी छिपाने की बात थी? मैं ग़ुस्से में आकर कुछ कर न बैठूँ इसके लिये इतनी भयानक घटना भी वह गोल कर गये!" वह बड़बड़ाया।

उसे विनय के ऊपर सन्देह होने लगा। "इतने मामले हो गये, इतनी घटनायें घट चुकीं, लेकिन वे अब भी चुप बैठे रहने को ही कहते जाते हैं। क्या नहीं हुआ, घरबार, इज़्ज़त आबरू सब तो चली गई। ऐसी ज़िन्दगी पर लानत है। ऐसी बातों के बर्दाश्त करने से अच्छा है कि आदमी कुछ कर गुज़रे और मर जाय। आज मैं नसीम के पास कहलवा दूँगा अकबर से कि, 'ख़ता माफ करें अब मैं चुप बैठ नहीं सकता। जो जी में आवेगा करूँगा, नतीजा जो कुछ हो।" मदन ने निश्चय कर लिया।

लेकिन उसके दिल में दर्द हो रहा था। निश्चय तो वह कर ही चुका था, जमुना जी की शपथ ले चुका था, क़दम पीछे तो हटा नहीं सकता था। लेकिन वह अपने निश्चय पर ख़ुश न था। अत्यन्त पीड़ा और व्यथा के बाद प्रतिहिंसा के लिये जब आदमी निश्चय कर लेता है तो उसके दिल का बोझ उतर आता है और वह हल्कापन अनुभव करने लगता है। लेकिन मदन के दिल का बोझ नहीं उतरा; वह भारीपन जैसे बढ़ गया था।

उसे याद आया उसने क़सम खाई थी कि वह हमेशा विनय के आदेशों को मानेगा। 'लेकिन आज वह अपनी क़सम तोड़ने वाला है। आज वह उन तमाम कामों को करेगा जिसके लिये विनय ने हमेशा उसे रोका। वह जमुना प्रसाद से बदला लेगा, ज़रूर लेगा, ख़ूब अच्छी तरह लेगा। विनय, नसीम, पंडित जी सभी को आश्चर्य होगा, पीड़ा होगी, दुख होगा। लेकिन बदला लेना ही है। आज बापू, कन्हई, मतई चाचा

की बेइज़्ज़ती का बदला लेना है। आज छबिया की बेइज़्ज़ती का बदला लेना है। आज, हाँ, आज ही बदला लेना है।' उसने फिर क़सम खाई। उसने छबिया की, उसकी जवानी की, उसके सोहाग की क़सम खाई। उठकर उसने अपने छोटे से कमरे में टहलना शुरू किया। खाना पड़ा था, उसे सुध न रही। उसके कान जैसे सुन रहे थे, हवा, अँधेरा, दीवारें सभी जैसे चीख़ कर कह रही थीं—"बदला, मदन बदला।"

मदन ने घर के बाहर झाँका। बाहर का दृश्य वह देख न सका। खिड़की बन्द कर ली। वह मौन हो कर बैठ गया। उसे विनय की याद आई। लगा कि कोने में छाया की तरह विनय खड़ा है और कह रहा है, "मदन, सोच लो, भयानक काम करने जा रहे हो। नतीजा बुरा होगा। मेरे लिये, अपने बापू के लिये, अपनी छबिया के लिये ऐसा मत करो। मान जाओ मदन, मदन मान जाओ।" मदन की आँखें बन्द हो गईं। उसे लगा कि वह छाया और पास आकर फिर कह रही है, "मदन, याद है तुम्हें अपना वायदा! आज तुम्हें चुनना है, चाहो मुझे चुनो, चाहो सर्वनाश—तुम्हें. अपने वायदे की क़सम—अब भी मान जाओ, इतनी जल्दी न करो।" मदन छाया की बातें बर्दाश्त न कर सका। मदन को छाया की बातें अच्छी न लगीं। वह प्रण कर चुका था। प्रण पूरा करना मरदों का काम है। वह हड़बड़ा कर उठा, ज़ोर ज़ोर से कहने लगा, "नहीं भैया, अब नहीं रुक सकता। माफ़ करो, आज तुम्हारी आज्ञा के विरुद्ध काम करने जा रहा हूँ। पहिली बार और शायद अन्तिम बार! अब मैं नहीं रुक सकता" कहते कहते मदन कमरे के बाहर आ गया। कमरा बन्द करने की भी याद उसे न रही। वह भागा, ऐसे भागा जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो।

अकबर मिला तो मदन ने उससे कहा, "बाबा, एक बात कहने के लिये तुम्हें बुलाया था। नसीम बहिन से कहना मुझसे वह हाथ धोलें। मैं ऐसा कुछ करने जा रहा हूँ जिससे उन्हें अफ़सोस होगा, बहुत ज़्यादा अफ़सोस। लेकिन मैं मजबूर हूँ। मैं मजबूर हूँ बाबा। कहना नसीम बहन से, मदन अपनी सुध-बुध खो चुका है। उसका होश

हवास गुम है, उसका दिल पत्थर का हो गया है, उसका दिमाग़ ठस हो गया है। कहना मदन पागल हो गया है। मदन बदला लेने जा रहा है।"

"क्या कह रहे हो मदन भैया ? यह सब क्या कह रहे हो मेरे लाल ? तुम्हें क्या हो गया है मेरे बेटे !" घबराकर अकबर ने पूछा।

"कुछ नहीं बाबा ! हो रहा नहीं, हो चुका है। अब होना क्या बाकी है। सुना है तुमने, पाजी जमुनाप्रसाद ने नथुआ को भेजा था मेरी छबिया की इज्जत उतारने के लिये। छबिया ने तो बहादुरी दिखाई और नथुआ को भागना पड़ा। उसे अपनी ज़िन्दगी से हाथ धोनी पड़ी। लेकिन जमुना प्रसाद का अभी बाल भी बाँका नहीं हुआ। उससे मुझे बदला लेना है। बदला लेने जा रहा हूँ मैं। बाबा, आशीष दो, मैं बदला ले सकूँ।" कहता हुआ मदन चलने को तैयार हो गया।

अकबर ने रोकना चाहा। हाथ जोड़े, बिनती की, लेकिन वह नहीं माना, चला ही गया कहते, कहते, "माफ़ करना बाबा, बहिन से कहना मुझे माफ़ करें, मुझे भूल जाँय। मैं उन्हें मुँह दिखाने लायक़ नहीं हूँ। मैं बदला लेने जा रहा हूँ।"

मदन चला गया। अँधेरे में ओझल हो गया। उसकी छाया भी दिखाई न पड़ी तो अकबर भागा भागा नसीम के पास आया। नसीम मदन का हाल जानने के लिये उत्सुक थी। अकबर के आते ही पूछा, "कहो, कैसा है मदन ?"

अकबर ने बताया, "बीबी, वह तो पागल हो रहा है। बँहकी बँहकी बातें कीं और दो मिनट बाद ही निकल गया। कहता था 'नसीम बहिन से कहना मुझे माफ़ करें। मैं जमुना प्रसाद से बदला लेने जा रहा हूँ।' उसका दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया है जैसे। मैंने रोकने की लाख कोशिश की। लेकिन वह निकल गया। जाने क्या करने वाला है।"

नसीम 'हूँ' करके रह गई। सारी बातें समझने में उसे एक मिनट भी न लगा। "आख़िर करता क्या बेचारा ? कितनी बेइज़्ज़ती बर्दाश्त

करे। विनय इन्सान तो है नहीं। वह तो देवता हैं। वह चाहे जितना बर्दाश्त कर लें, चाहे जितना झुक लें। लेकिन मामूली आदमी तो उनके जैसा हर वख़्त नहीं रह सकता। मदन का पागल हो जाना सौ फ़ीसदी सही है। कोई भी आदमी जिसका घर, जिसकी ससुराल, जिसके अपने सभी लोग इस तरह बरबाद कर दिये गये हों, चुप नहीं बैठ सकता। मदन का पागल हो जाना और इस पागलपने में कुछ भी कर डालना अस्वाभाविक नहीं है।" नसीम ने मदन के काम को, उसके रुख़ को सही समझा। लेकिन नतीजा क्या होगा यह सोच कर इसका दिमाग़ घूमने लगा, दिल घबराने लगा। "छबिया की बेइज़्ज़ती का बदला लेने में कहीं मदन छबिया के माँथे का सिन्दूर न पोछ दे।" नसीम काँप गई।

अकबर खड़ा नसीम को देखता रहा। उसकी धूमिल आँखें नसीम के चेहरे के रंगों को आते जाते न देख सकीं। नसीम के दिल के भावों को वह बिलकुल न समझ सका। वह घबरा रहा था खड़ा खड़ा। उसकी परेशानी की इन्तहा न थी, उस वख़्त विनय गिरफ़्तार हुआ। इस वख़्त मदन ने ऐसी बातें कहीं। नसीम की तबियत ठीक नहीं। दिन भर से गुमसुम पड़ी है। "या अल्लाह, क्या होने वाला है? मेरी बिटिया को कहीं कुछ हो न जाय। "या ख़ुदा, रहम कर।"

नसीम सोचती रही—"विनय ने ठीक ही किया था। मदन से इस हादसे को छिपा कर उसने अच्छा ही किया था। जब आदमी के सिर पर ख़ून सवार होता है तो वह आगा पीछा, मौत ज़िन्दगी कुछ नहीं सोचता। वह पागल हो जाता है। विनय इसी बात को बचाता था। लेकिन इन्सान इन्सान ही है। वही मदन जो विनय के इशारों पर नाचता था आज वह काम करने जा रहा है जिसे विनय ने हमेशा मना किया है। मदन मजबूर है। मैं मदन की जगह पर होती तो शायद मैं भी यही करती। और विनय—शायद वह भी यही करता—तब मदन ने ठीक ही किया। तो, विनय भी ठीक, मदन भी ठीक—लेकिन दोनों ठीक कैसे हो सकते हैं, ओफ़, कुछ समझ में नहीं आता।" नसीम

अपने ऊपर झुँझला रही थी। उसका दिमाग़ ख़राब हो रहा था।

मदन आगे बढ़ा। वह चला जा रहा था अपने धुन में मस्त। उसके पैर तेज़ी से बढ़े जा रहे थे माधोपुर की ओर। विक्षिप्त सा, पागल सा वह चला जा रहा था। क्या करने यह वह नहीं जानता था। कैसे करने यह भी वह नहीं जानता था। क्यों—शायद इसका उसे कुछ एहसास था। और वह बढ़ा जा रहा था। उसके शरीर में बिजली का ज़ोर था—बिजली की चाल से वह आगे निकला चला जा रहा था।

अँधेरे में, उजाले में, अँधेरे उजाले के झिलमिल मेल में उसकी छाया भागती जा रही थी उसके पीछे पीछे। वह अपने को इस समय बहुत लम्बा, चौड़ा, मज़बूत महसूस कर रहा था। आज वह अपनी प्राण प्यारी की बेइज़्ज़ती का बदला लेने जा रहा था। आज वह छबिया के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने, अपनी मर्दानगी का सबूत देने, मरद कहलाने लायक़ अपने को बनाने जा रहा था। वातावरण से, हवा से, ज़मीन से, आसमान से चारों तरफ़ से जैसे यही ध्वनि आ रही थी—'बदला! हाँ, मदन!' और मदन बढ़ता ही गया। विनय की याद आई, वह हँस पड़ा, एक सूखी हँसी, 'विनय भैया मुझे हिजड़ा बनाना चाहते थे, कायर। कितना अच्छा होता वे बाहर होते और देखते मुझे—अपने मदन को—इस हालत में, कमर कस कर बदला लेने के लिये आगे बढ़ते हुये।' मदन हँसा, अबकी और ज़ोर से। पेड़ों से, लैम्प-पोस्टों से, आस पास के मकानों से टकरा कर उसकी हँसी की प्रति-ध्वनि वापस आ रही थी।

सहसा किसी ने दबी आवाज़ में पुकारा "मदन!"

मदन ने सामने देखा। साइकिल से साहबी ठाठ में एक गोरा चिट्टा आदमी उतर रहा है, उसकी ओर देख कर मुस्कराते हुये। मदन ठिठका, फिर चलने को हुआ कि उस आदमी ने फिर कहा, "मदन, तुमने मुझे पहिचाना नहीं? मैं हूँ, संतोष।"

"अरे, संतोष भैया! ख़ूब मिले आप।" मदन ने ख़ुशी से विह्वल हो कर कहा।

"चुप, बोलो नहीं ज़ोर से। आगे मोड़ पर अँधेरे में मिलना मैं वहीं चलता हूँ, आओगे न?" धीमे से सन्तोष ने कहा।

"हाँ, आऊँगा, आता हूँ।" मदन ने कहा और संतोष आगे बढ़ गया।

पाँच मिनट बाद दोनों मिले। संतोष ने मदन की भावुकतापूर्ण उलटी सीधी बातें सुनीं। उसे ख़ुशी थी, मदन आज इतने कटु अनु-भव के बाद सीधे रास्ते पर आया तो।

"तो अब विनय का चक्कर छूट गया, क्यों?" उसने पूछा।

"यह सब बातें न पूछो भैया, बस बदले की बात करो। बोलो करते हो मदद?" मदन ने फ़ौरन कहा।

"हाँ, हाँ, ज़रूर, पूरी मदद। आज ही तो तुमने मेरे मन की कही। आज तक तुम विनय के जादू के असर में थे। आज तुमने देख लिया कि असलियत कुछ और ही है। आख़िर, क्या फ़ायदा हुआ योंही बैठे बैठे गिरफ़्तार हो जाने से। कुछ करके जाता तो वह भी एक बात थी। मुझे परेशान किया। मेरी पार्टी के रास्ते में रोड़े अटकाये। देश के साथ दग़ा की और जेल में चला गया।" संतोष ने फिर यही दोहराया।

मदन झुँझला उठा, "संतोष भैया, मैं कह रहा हूँ कि विनय बाबू की खिल्ली उड़ाने का यह समय नहीं है। मैं जमुना प्रसाद से बदला लेने जा रहा हूँ, अभी, इसी वक़्त। आप मेरी मदद करते हैं? बोलिये।"

संतोष सँभल गया। मदन के मस्तिष्क की अवस्था का ज्ञान उसे हो गया। एक दो मिनट सोच कर उसने कहा, "बताओ, क्या मदद चाहते हो, जानते हो, गाँव में सख़्त पहरा है। रातो दिन चौकसी रहती है। काम ऐसे करना है कि कामयाबी मिले।"

"पहरा वहरा कुछ नहीं, अभी चलते हो मेरे साथ? मैं अभी जाना चाहता हूँ। मैं रुक नहीं सकता।"

"अरे भाई, कुछ सोच विचार लो। इतना बड़ा काम इतनी उता-वली में करना ठीक नहीं।"

"तो आप नहीं चलना चाहते मेरे साथ? कोई बात नहीं, मैं जाता हूँ।" कहता हुआ मदन फिर चलने को उद्यत हुआ।

संतोष ने उसका हाथ पकड़ लिया। "नहीं मदन, तुम नहीं जा सकते। इस दीवानगी की हालत में मैं जिन्दा ही तुम्हें मौत के मुँह में नहीं जाने दूँगा। तुम मौत के साथ खेलना चाहते हो, यह नहीं हो सकता।"

मदन ने हाथ छुड़ाना चाहा। लेकिन संतोष ने उसे कस कर दबा दिया। मदन छटपटाने लगा। दोनों में खींचा तानी होने लगी। संतोष अपनी पूरी शक्ति लगा कर मदन को पकड़े हुये था और मदन सारा ज़ोर लगा कर अपने को छुड़ाना चाहता था।

उधर दूर से इक्के की आवाज़ सुनाई पड़ी। रबर टायर इक्का, बढ़िया घोड़ा—तड़तड़ टाप सुनाई दे रही थी। आवाज़ नज़दीक से आ रही थी। संतोष ने कहा, "मदन और इधर आ जाओ। इक्का आ रहा है।" क्षण भर के लिये दोनो का संघर्ष बन्द हो गया। दोनों गहरे अँधेरे में दुबक गये। इक्का शान से तड़तड़ाता चला आ रहा था।

अँधेरे को चीरते हुये संतोष की आँखों ने देखा जमुना प्रसाद शान से अकड़ा हुआ चला आ रहा है। हर्ष विह्वल हो कह उठा, "मदन, जमुना प्रसाद।"

"सच," मदन ने ध्यान से देखा, जमुना प्रसाद शान से अपने गहरे बाज़ एक्के पर बैठा चला आ रहा है। मदन गंभीर हो गया। "जमुना प्रसाद की मौत उसे मेरी ओर खींचे लिये आ रही है।" मदन बड़बड़ाया।

एक्का नज़दीक आया। संतोष ने कहा, "इक्का मैं रोक लूँगा, तुम जुट जाना।" मदन ने कहा, "अच्छा।" इक्का और नज़दीक आया।

मोड़ पर पहुँचते ही आवाज़ हुई "रोको इक्का।"

घबराहट में इक्केवान ने रास खींच ली। इक्का रुक गया। जमुना प्रसाद ने देखा दो आदमी उसके ऊपर झपट रहे हैं। वह चिल्लाना चाहता था कि एक ने उसका गला पकड़ लिया। उसकी साँस रुकने

लगी। वह बेहोश होने लगा। दो हाँथ इक्केवान पर पड़े। बूढ़ा था, वह वहीं बदहवास होकर गिर पड़ा। जमुना प्रसाद पर पचलत्ती पड़ने लगी। मारते मारते मदन थक गया तो उसकी छाती पर चढ़ बैठा, उसके मुँह पर थूक दिया और हाँफता हुआ उठ आया।

संतोष ने उसकी जेब की तलाशी ली और नोटों के गड्ड अपनी पाकेट में डाले। बेहोश जमुना प्रसाद को दो ठोकर लगाई। "नाला-यक़, कमीना" संतोष बुदबुदाया।

"बदला ले लिया भैया," चीत्कार की हँसी हँस कर मदन ने कहा।

"हाँ मदन, मैंने भी, कलेजा ठंढा हुआ। कुत्ते को आज पता चला कि दूसरों की बहू बेटियाँ ताकने का नतीजा क्या होता है।"

"लेकिन इसकी तो साँस अभी चल रही है भैया।" मदन फिर जमुना प्रसाद के पास जाकर बोला।

"जाने दो मदन, इसकी बीबी बच्चों के लिये इसे छोड़ दो। जीने दो साले को कुत्तों की ज़िन्दगी, माफ़ कर दो।"

मदन ने घृणा से बेहोश जमुना प्रसाद को एक बार फिर देखा और मुँह बिचका लिया।

"चलो मदन, चलें। तुम साइकिल के पीछे बैठ जाना। अब रुकना ठीक नहीं।"

संतोष ने साइकिल सँभाली और दोनों रफ़ूचक्कर हो गये।

हवा अब भी वैसे ही चल रही थी। लैम्प पोस्ट से चिपका हुआ बल्ब अब भी ज्योतित किरणें बिखेरे जा रहा था। ऊपर आसमान के तारे विद्रूप की सी हँसी हँस रहे थे। चारो ओर भयानक नीरवता और घने अँधकार का साम्राज्य था। और दोनों व्यक्ति कोचवान और जमुना प्रसाद बेहोश पड़े थे। कोचवान अर्ध-मूर्छित था दहशत की वजह से। जमुना प्रसाद की भी साँसें चल रही थीं। घोड़ा रह रह कर हिनहिना उठता।

१२

जेल में विनय का जिस प्रकार स्वागत हुआ था उससे उसके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा। अपने साथियों और सहकर्मियों ने उसका सामाजिक बहिष्कार सा कर दिया था। सभी सशंक दृष्टि से उसकी ओर देखते। इसके पहले राजनैतिक मतभेदों के बावजूद भी कोई आँख उठाकर उसकी ओर नहीं देख सकता था। जो लोग उससे बाहर राजनैतिक शिक्षा लिया करते थे, जो उसकी सम्मतियों को क़ीमती समझा करते थे, जो उसके पास बैठना उठना अपना सौभाग्य समझा करते थे वे ही उसे नीची निगाह से देखते थे। सीना फुलाये, कनखियों से उसकी ओर देखते ऐसे निकल जाते जैसे वे छूत की बीमारी से अथवा किसी अस्पृश्य पदार्थ से अपनी जान बचा कर निकल जाना चाहते हों।

दो चार विद्यार्थी जो इधर उधर से पकड़ पकड़ा कर आ गये थे अपने को भारतीय क्रान्ति की बहुत भारी ज़िम्मेदारी के बोझ से दबा हुआ अनुभव करने के कारण गंभीर मुद्रा बनाये, मितभाषी बने, बाल बिखेरे घूमा करते। विनय का सामना पड़ता तो कतरा कर निकल जाते। विनय की हवा से उन्हें परहेज़ था। कहाँ इस वर्तमान युग के सब से बड़े जनक्रान्ति के नेता और मार्ग प्रदर्शक, कहाँ यह जवानों का नाम बदनाम करने वाला देशद्रोही! दोनों में मेल कहाँ, दोनों में समानता क्या? विद्यार्थी विनय को अपने साथ बैठने लायक़ नहीं समझते थे—क्योंकि वे क्रान्तिकारी थे और विनय देशद्रोही!

विनय अपनी टोली में रहा करता। मतई चाचा, कन्हई, रामदीन चौधरी, बा० रामलाल और कुली युनियन के तीन कुली कार्यकर्ता विनय के ये सात साथी थे। इन्हीं के साथ उठना बैठना होता था उसका। मेस भी विनय का अलग ही था। सात ये लोग एक विनय और एक पं० नरोत्तम प्रसाद। नौ आदमियों का चौका साथ था। जो भी राशन आता सभी मिलजुल कर बनाते खाते। मतई चाचा विनय

का सबसे अधिक ध्यान रखते थे। राशन इतना कम मिलता था कि सबका पेट भरना मुश्किल हो जाता। यों तो सभी चुपचाप जो मिले बना खाकर अपना समय काट लेते लेकिन कभी कभी मतई चाचा की आँखों में आँसू की बूँदें झलक उठतीं। वे जानते थे कि विनय इन सब बातों का आदी है और इस हालत में भी उसकी तन्दुरुस्ती ठीक रहेगी। लेकिन पिता का हृदय कोमल होता ही है। जब मिट्टी मिले आटे की रोटी किटकिटाती और विनय का मुँह बन जाता, उसके रोंगटे खड़े हो जाते, वह गिनगिना उठता तो मतई चाचा बर्दाश्त न कर पाते। लेकिन यह सोचकर कि बर्दाश्त करना ही होगा वे ज़ब्त कर लेते। कभी कभी आँसू के बूँद उनके हृदय की पीड़ा बता देते।

चौधरी रामदीन और कन्हई विनय के पास बहुत कम उठते बैठते। विनय को देखते ही उन्हें मदन और छबिया की याद आने लगती। हृदय फटने लगता। लेकिन विनय को तकलीफ़ न हो, उसे उनके दर्द का पता न चले इसलिये वे विनय से दूर दूर ही रहा करते। चौधरी का समय रामनाम में कटता और कन्हई का बैरक बैरक घूमने में। घूमते समय अगर विनय की बुराई कहीं सुनाई पड़ती तो कन्हई का क्रोध अपनी बाँध तोड़ने को तैयार हो जाता। मतई कन्हई के क्रोधी स्वभाव को जानते थे, इसलिये वे कन्हई पर निगाह भी रखा करते थे।

बा० राम लाल गंभीर व्यक्ति थे। जनम भर ज़िमींदारी ठाट से रहे और आराम की ज़िन्दगी बसर की। किसी भी चीज़ की कमी उनको न थी घर में। लेकिन देश प्रेम उनके अन्दर बचपन से ही था। सन् २१ के ज़माने से ही वे अपने को कांग्रेसी समझा करते थे। हर तरह से कांग्रेस की सहायता करना उन्होंने अपना धर्म बना लिया था। बस एक ही कमी उनमें रह गई थी। वह थी जेल यात्रा। अब की वह कमी भी पूरी हो गई। बुज़ुर्ग आदमी थे। सख़्तियाँ कभी बर्दाश्त नहीं की थीं। अब की उनके ऊपर जो यह मुसीबतों का पहाड़ टूटा तो डरे कि कहीं विचलित न हो जाँय। लेकिन बार बार अपने को सँभाला और अपने गाँव वालों तथा पं० नरोत्तम प्रसाद को अपने पास पा अपने

को सान्त्वना देते रहे। अक्सर वे पंडित जी से ज्ञान चर्चा करते, उपदेश सुनते, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ते और किसी तरह अपना समय काट देते। मितभाषी थे और गंभीर। जेल की आपसी तू तू मैं मैं से घबराते थे, इसलिये अपनी बैरक में ही पड़े रहते।

कुली यूनियन के कार्यकर्ता उद्धत स्वभाव के मज़दूर थे। किसी की परवाह न करते। सब को दिखा कर आपस में घूँसे बाँध 'लाल सलाम' करते चाहे कोई कितना भी चिढ़े। विनय उनका नेता था। उसकी शिकायत वे सुनने को तैयार न थे। लोग इन कुलियों को जानते थे, इसलिये जब कभी ये आते दिखाई देते तो विनय की शिकायतें बन्द हो जातीं और इधर उधर की बातें होने लगतीं। ये मज़दूर बैरकों में और चक्कर में इस तरह घूमते मानों विनय की शिकायत करने वालों को ढूँढ रहे हों भिड़ने के लिये। इसलिये इनका काफ़ी दबदबा था। कहीं ये लोग भिड़ न जाँय इसकी फ़िक्र विनय को बहुत थी।

पं० नरोत्तम प्रसाद अपने सहकर्मियों से ऊब गये थे। खाने पीने की चीज़ों के लिए झगड़ा उन्हें नापसन्द था। ज़रा-सी चीनी और दूध के लिये अच्छे अच्छे लोगों को झगड़ते देख उनका मन ग्लानि से भर उठता और और वे उदास हो सिर नीचा कर लेते। उनके चौके से वे निकल भागना चाहते थे। जब विनय और इन लोगों का चौका अलग बना तो पण्डित जी फ़ौरन उसमें शामिल हो गये। जिस समय अपना टाट फट्टा ले पंडित जी विनय की बैरक में आये थे, कोहराम मच गया था सभी ओर। पंडित जी की यह हरकत किसी को न सुहाई। सभी आवाज़ें कसते, बोलियाँ मारते। ढोंगी और पाखण्डी की टाइटिल भी मिली। लेकिन सहनशील पंडित जी अचल रहे।

इस प्रकार इन नौ आदमियों का एक गुट सा बन गया जो अपना अधिकतर समय खाने पीने, पढ़ने और बातचीत करने में व्यतीत करता। विनय और पंडित जी की बातचीत होती तो और लोग ध्यान से सुनते और समझने की कोशिश करते। बातों बातों में गर्मा गर्मी भी हो जाती लेकिन सबको यह पता था कि यह गर्मा गर्मी क्षणिक है।

थोड़ी देर में दोनों एक हो जाते और फिर खाना, पीना, घूमना शुरू हो जाता। इन लोगों का जीवन निश्चय ही जेल के अन्य बन्दियों से अच्छा, संयत और सहयोगी था।

इस गंभीर और अवसाद पूर्ण वातावरण में बंगाली बाबू की वजह से कुछ अन्तर आ जाता। उनको पार्टी बन्दी से मतलब न था, न आपस की गाली गलौफ से कुछ नाता। दिन भर बैरक बैरक घूमना और सिगरेट पीना यही काम था उनका। प्रकाण्ड विद्वान थे, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पूर्ण पंडित। प्रोफ़ेसर थे, पढ़ाई लिखाई अच्छी लगती। अक्सर विनय और पंडित जी की गोष्ठी में शामिल हो जाते और सब से ज़्यादा खुद बोलते। विशाल शरीर, विशाल माथा, विशाल छाती और उसके नीचे विशाल हृदय, किसी की बुराई भलाई में नहीं पड़ते थे। पहिले पहिल जेल आये थे। कष्ट असह्य था लेकिन सहे जा रहे थे। राशन बहुत कम मिलता था, चावल तो और कम। बंगाली बाबू को जेल वालों से अगर कोई शिकायत थी तो यही कि, "साला ने पकड़ तो लिया, अब मारना भी चाहता। हम भात नहीं पाता, कैसा जियेगा? हम भूखा तो नहीं रहने सकता। बाबा रे, साला लोग रिवेंजफुल (प्रतिहिंसक) हो गिया है।" दिन भर में कई बार यही बात उनके मुँह से निकलती। आमतौर से लोग उनकी इस बात से आनन्द लिया करते थे। लेकिन जब कभी कभी गुस्से से उनकी आँखें लाल हो जातीं और परवशता तथा अपमान से आँसू आ जाते तो साथी बन्दी भी दुखी हो मन में कहने लगते, 'कहाँ से आगया बेचारा यह प्रोफ़ेसर! कहाँ विश्वविद्यालय का उत्फुल्ल, स्वस्थ वातावरण, कहाँ जेल की ऊँची दीवारें!'

रोज़ ही नये नये क़ैदी आते। कोई लूट मार की ख़बर लाता, कोई दमन की। शहर और देहात के तरह तरह लोग, अजीब अजीब शक्ल बनाये चले आ रहे थे। इनमें से कितने सच्चे देशभक्त थे, अपना सब कुछ मिटाकर आज़ादी पाने के लिये जूझे हुये थे यह बताना कठिन है, लेकिन ऐसे लोग ज़रूर बहुत आ गये थे जो निहायत सफ़ाई से साबुन,

टुथ ब्रश और तौलिये उड़ाकर बाहर भेज देते और बैठे बैठे रुपये सीधे करते थे। ऐसे कर्मठ राजबन्दियों पर नाज़ शायद ही किसी को होता हो। जो सच्चे देशभक्त थे, जिनका चरित्र तपे हुये सोने की भाँति जाज्वल्यमान था, उनकी संख्या कम थी। उन्हें इन ख़ून लगाये हुये शहीदों की करनियों पर पछतावा होता, शर्म से गर्दन झुक जाती थी उनकी। लेकिन वे अपना नैतिक असर भी इस्तेमाल न कर पाते। जेल जो था। यहाँ जो आता है काँटों का ताज पहिनकर। उनकी आँखों से ज्योति निकलती रहती है—अग्निस्फुलिङ्ग। उनकी वाणी में प्रलय और तूफ़ान रहते हैं। उनको शिक्षा देना, उनको बदफेलियों और बुरी हरकतों के लिये रोकना इन नेताओं के बस की बात न थी। जेल में सभी स्वतन्त्र थे। भूखों मरने से लेकर मक्खन दूध चुराने तक की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। कोई किसी से कम न था, कोई किसी से दबता क्यों? सभी तो आये थे स्वतन्त्रता के हवन कुण्ड को अधिक प्रज्वलित करके। सभी तो आये थे प्राणार्पण की शुभ वेला में अपना रक्त दान करके। सभी तो आये थे आज़ादी की देवी का माथा चूमने की साध में। फिर कोई किसी से कम क्यों?

और इस सर्वजनीन अराजकता की पुआल में उस समय आग लग जाती, जब जेल अधिकारी अपनी कुचेष्टाओं, कूटनीतियों और कुप्रवृत्तियों का संगठित प्रदर्शन करते। ऊपर से लेकर नीचे तक जैसे प्रतिहिंसा की धारा बहती रहती। बात बात में अपमान करना, रद्दी खाना, रद्दी कपड़ा देना, मौक़ा निकाल निकाल कर तङ्ग करना उनका शेवा हो गया था, जैसे इसी का उन्हें आदेश मिला हो। रोज़ 'पगली' होती, सीटी बजती, घंटा बजता। रोज़ 'फ़ालिन' होता। तड़ा तड़ लाठियाँ बोलतीं। काल कोठरी भर गई, अस्पताल में जगह न रही, रंगे पानी ने दवाओं का रूप लिया, सख़्त से सख़्त बीमार भी 'रागिया' माना जाने लगा। जेलर और डाक्टर का भेद मिट गया।

इस अराजकता और प्रतिहिन्सा की मुठभेड़ में सुहृद, सुलझे नेताओं की फ़ज़ीहत हो गई। रोज़ ही 'नो, लाकअप' के नारे लगते।

कोई दूध फेंकता, कोई खाने का सामान। 'जेल कमेटी' की दुर्दशा हो गई! कहने वालों की ज़बान पर क्या ताला? कहने लगे, "हमारे ये आदमी भी जेल वालों से मिले हुये हैं। हमें इन पर विश्वास नहीं।" रोज़ लड़ाई होती, रोज़ समझौता होता और इसी प्रकार रो-धो, हँस, खेल, लड़, भिड़ कर जेल जीवन चलता जा रहा था।

भीतर की अराजकता बाहर की अराजकता का छोटा रूप थी। बाहर से कुछ न कुछ उथल-पुथल की ख़बरें रोज़ आतीं। जो आता सार्वदेशिक क्रांति की ख़बर लेकर आता। बातें बढ़ाकर कहने में जैसे होड़ लगी हुई थी। भीतर के बन्दी इन शुभ समाचारों को सुनकर हर्ष विह्वल हो उठते। उत्फुल्ल मन और प्रसन्न वदन हो भविष्य की सम्भावनाओं का अन्दाज़ लगाते। कहते, "भारतीय क्रान्ति का तीसरा स्टेज है! अब की बेड़ा पार है।" दूसरे कहते 'जनता के हाथों में क्रान्ति की बागडोर चली गई है। अब उसका दमन नहीं हो सकता। अब आज़ादी मिल के ही रहेगी।" और वे ख़ुशी से, गर्व से फूल उठते।

लेकिन जब उत्साह के आवेश में पंडित नरोत्तम प्रसाद इसी प्रकार की बातें करते तो विनय उदास हो जाता। इसलिये कि उसकी आँखें साफ़ देख रही थीं कि यह आन्दोलन अब आतंकवादी और व्यक्तिगत होता जा रहा है। जब वह बाहर था तभी जनता की घबराहट, परेशानी और पस्त हिम्मती वह देख चुका था। इक्की दुक्की घटनाओं से अवश्य ही थोड़ी बहुत हलचल मच जाती, लेकिन तुरन्त ही भयानक नीरवता और मुर्दनी का साम्राज्य छा जाता जैसे तालाब के बन्द, गति हीन पानी में ढेला फेकने से होता है। इंढे अवसरों पर पण्डित जी विनय की बातें मान भी लेते थे। लेकिन उनका हृदय यह मानने के लिये तैयार न था कि "इस तथाकथित क्रान्ति के असफल होने की प्रक्रिया शुरू हो गई है और अब शासक खुल खेलेंगे। जनता का कचूमड़ निकल जायेगा, जन जीवन नष्ट हो जायेगा, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक संगठन टूट फूटकर बिखर जायेगा।" विनय की यह बातें उनके कानों को खटकती थीं। वे इन बातों का सुनना

गवारा कर लेते थे यही क्या कम था ? इन राजनैतिक समस्याओं पर दोनों में मतभेद था। गहरा और बहुत गहरा। दोनों को लगता कि शायद विचारों का यह भेद मिट नहीं सकता।

उस दिन विनय के सामने कठिन समस्या आ गई थी। जेल की मुसीबतों और परेशानियों से उसका शरीर कमज़ोर हो गया था। पेट ख़राब हो जाने से भूख बन्द हो गई थी जिससे स्वभाव में चिड़-चिड़ापन आ गया था। पंडित नरोत्तम प्रसाद यह सब अपनी आँखों से देखते समझते भी लाचार थे। उनका बस न चलता। विनय का पक्ष लेने के कारण वे सब की आँखों के ख़ार बन चुके थे। इधर विनय से भी झड़प हो जाती तो वे व्यग्र और उदास हो जाते।

यों तो जेल जीवन में शिथिलता आने लगी थी। लोग अपने कमरों में ही पड़े रहना अधिक पसन्द करते थे। झगड़ों की भी संख्या काफ़ी घट गई थी। लोग शान्तिप्रिय होने लगे थे। नावगन्तुकों की संख्या काफ़ी घट गई थी। दूसरे तीसरे एक दो राजबन्दी आ जाते तो कुछ हो हल्ला हो जाता। छूटने वालों की तायदाद बढ़ रही थी। दुनिया भर के ऐरे गैरे जो भर गये थे वे धीरे धीरे बाहर जाने लगे। बाहर की उथल पुथल की कमी का भी असर धीरे धीरे पड़ रहा था। लेकिन ख़ाली दिमाग़ शैतान का घर होता है। उसमें तरह तरह की ग़ैर ज़िम्मेदाराना स्कीमें पका करती हैं। विनय को सबेरे ही पता चला कि उसकी पार्टी की 'हाय हाय' कराई जायेगी। उसे चिढ़ाने के लिये उसकी पार्टी का जनाज़ा निकाला जायेगा। उसके क़मरे के सामने उसे फूँका जायेगा। अगर वह बोलेगा तो उससे झगड़ा भी किया जायेगा। इसलिये उस दिन विनय उद्विग्न हो रहा था।

जब ख़बर पक्की हो गई तो विनय ने अपने गुट वालों को इकट्ठा किया और सलाह मशविरा करना शुरू किया। मतई चाचा, बा० रामलाल और रामदीन चौधरी की राय हुई कि कुछ बोला ही न जाय। लेकिन कन्हई और कुलियों की राय हुई कि अगर वे इधर

आवें तो उनकी ख़ूब ठोकाई की जाय। अन्त में मतई चाचा की बात मानी गई। हल निकला कि उनके स्वागत की तैयारी की जाय। अगर कमरे में वे लोग आते हैं तो मारपीट के बजाय उन्हें शर्बत पिलाई जाय। जब जनाज़ा जल जाय तो उनमें से एक आदमी जाकर उसकी राख श्रद्धा से उठा ले और उसे माथे पर लगा कर वापस चला आवे। यह स्कीम सब को मंज़ूर थी और यही हुआ भी। नतीजे में जलूस निकालने वालों को झेंपना पड़ा। उनका मंसूबा पूरा न हुआ। लड़ाई न हो सकी।

सब कुछ योंहीं शान्तिपूर्वक समाप्त हो जाने पर विनय ने पंडितजी से कहा, "देखा आपने, यह है इन लोगों की देश भक्ति और भाई चारे का व्यवहार। जब जेल खाने में क़ैदी रहते हुये इनका यह हाल है तो बाहर शक्ति सम्पन्न होने पर ये लोग जाने क्या करने लगेंगे। क्या राजनैतिक विरोध हम लोगों को इतने नीचे गिरा सकता है?" विनय का आवेश उसके काँपते ओठों से टपक रहा था।

पंडित जी उदास थे ही, टालने की नीयत से बोले, "जाने भी दो विनय। क्या रखा है इन बातों में? आज के इस प्रोग्राम के पीछे क्या था? लोगों का दम्भ, ढोंग और असहिष्णुता का प्रमाण और कुछ नहीं। प्रतिहिंसात्मक होकर—और वह भी, अपने भाइयों से—राजनैतिक काम को सफलता पूर्वक कहीं चलाया जा सकता है? लेकिन इन लोगों का क्या? यही सब सिखाया गया है इन लोगों को इनके स्कूल कालेजों में। जब ज़रा भी कष्ट सहिष्णुता का अवसर आया ये अधखिले फूल सचाई के इस जाज्वल्यमान अंगारे में झुलसने लगते हैं। जेल जीवन का कष्ट पूर्ण अनुभव इनके ढोंग के खोल को उतार रहा है और देखना, कुछ दिन इन्हें और रहना पड़ा तो रोने गिड़-गिड़ाने की नौबत आ जायेगी। आज़ादी की लड़ाई का स्वांग बनाने वाले ये तरुण क्या समझें कि सौदा क्या है, मूल्य क्या है आज़ादी का। मैं कोई पहिली बार जेल नहीं आया। तुम भी अनुभवी हो, जेल की मनोदशा को जानते हो। मैं तो कहता हूँ कि मध्यम श्रेणी के इन

भावुक पानी के बगूलों के सहारे स्वराज का सपना देखना कोरी मूर्खता है। क्रान्ति-यज्ञ की दहकती भट्ठी में जिस चरित्र और दृढ़ता की आवश्यकता है उसका लेश मात्र भी जब इन सुख की सेज पर सोने वालों में नहीं है तो इनसे गम्भीर कार्यशीलता की आशा क्यों की जाय? अभी का प्रदर्शन इनकी भावुकता, उच्छृङ्खलता और ढोंग का प्रमाण है। विनय तुम्हें चाहिये कि इन्हें क्षमा कर दो।"

विनय के क्रोध को जैसे बर्फ़ की चादर ने ढक लिया। लेकिन उसकी उदासी और भी ज्यादा बढ़ गई। कहने लगा, "पंडित जी, मैं साफ़ देख रहा हूँ कि बाहर की सर्वजनीन उदासी और विघटन का पूरा असर हमारे जेल जीवन पर पड़ रहा है। मैं बड़े बड़े सिद्धान्तों की बात नहीं कर रहा, न मैं इस समय अपनी नीति की सफ़ाई दे रहा हूँ। लेकिन मैं अपने मन की बात साफ़ कहना चाहता हूँ, वह यह कि आन्दोलन ग़लत समय पर चलाया गया। शासकों का हाथ इससे मजबूत हुआ। दमन और ज़ुल्मों की बौछार में जन जीवन की मिट्टी पलीद हुई और हरैली मनोभावना ने जापानी मिथ्या आश्वासनों की ओर लोगों को अभिमुख किया। यह सब इस लिये हुआ कि हमारी ग़लतियों से शासकों को खुल खेलने का मौक़ा मिला। अब आप देख रहे हैं कि आन्दोलन चले चन्द महीने भी नहीं बीतने पाये कि आज़ादी के तथा कथित अलमबरदार उस महाक्रान्ति की बातें छोड़ कीचड़ उछालने और गाली गलौझ में लग गये हैं। मैं तो यह भी साफ़ देख रहा हूँ कि हालाँ कि हमने जो भी कहा था वह सही निकला, फिर भी हम लोगों को ही दोषी ठहराया जायेगा और सम्भव है कि बाहर चलने पर ये लोग हमारे साथ और भी सख्ती से पेश आयें। हार की खीझ और झूठी आशा की निर्मूलता इनको अन्धा बना देगी और कर्तव्या-कर्तव्य का ध्यान न रख ये लोग बदला लेने की फ़िराक में घूमेंगे। ख़ैर, इसकी चिन्ता यों मुझे न होती लेकिन इसका असर क्या होगा यह सोच कर जी डरता है। हमारे देश के राजनैतिक जीवन में जो घुन लग गया वह उसे अन्दर ही अन्दर खाये जा रहा है। बाहर निकल

कर आप देखेंगे पंडित जी कि चारो ओर टूट फूट और विघटन ही चल रहा है। राष्ट्र की नौका इसी भँवर में पड़ी रह चक्कर खाया करेगी। शासकों के लिये इससे बढ़ कर खुशी की बात और क्या होगी? उनकी तो पूरी कामियाबी हो गई।" विनय ने सिर नीचा कर लिया।

पंडित जी कुछ न बोले। सभी लोग बैठे बैठे एक दूसरे को ताका किये। विनय ने सिगरेट जलाया। धुँआँ फूकते हुये ऐसा लगा मानो वह अपने दुख और अवसाद को धुँयें की तरह उड़ाने की कोशिश कर रहा है। उसका चेहरा उतना देदीप्यमान न था जैसा पहिले था, उसकी आँखों में वह ज्योति अब न थी जो पहिले थी। इतने दिनों में ही उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। पेट ख़राब हुआ तो अन्दर ही अन्दर बोख़ार सा रहने लगा। उसे न खाना अच्छा लगता न घूमना टहलना। अपने कमरे में इसी तरह कभी कभी पंडित जी से बातें कर लिया करता।

विनय अपने कमरे में लेटा हुआ था चिन्तनशील सा। उसी समय कुछ लोगों ने शोर मचाया कि दो आदमी गिरफ़्तार होकर आये हैं। दोनों काफ़ी घायल हैं। शायद अस्पताल में रखे जायेंगे। विनय काँप उठा। लगा कि जैसे उसका कोई आत्मीय, कोई अपना ही आया हो। हड़बड़ा कर उठा और कमरे के बाहर आया। देखा कि लोग अस्पताल की ओर बढ़ते जा रहे हैं। सब के साथ साथ वह भी हो लिया। रास्ते में ही पता चला कि संतोष और मदन घायल अवस्था में गिरफ़्तार करके लाये गये हैं। वह सन्न रह गया। हाथ पाँव की गति रुक गई। न उसे कुछ सुनाई पड़ता था न दिखाई। लोग तेज़ी से क़दम बढ़ाये चले जा रहे थे। विनय वहीं स्तम्भित सा खड़ा रह गया।

अस्पताल में लोगों ने देखा सिर, हाथ, पैर सब जगह पट्टियाँ बाँधे दोनों व्यक्ति अपनी अपनी चारपाई पर पड़े हैं। तरह तरह की बातें कही गईं। टीका टिप्पणियाँ हुईं और सब के चेहरे क्रोधोन्माद और आवेश से लाल हो गये। पता चला कि संतोष और मदन दोनों गोलियों का सामना करते हुये घायल हुये थे। माधोपूर के कंधौ-गढ़ों

के टोले में ये लोग छिपे पड़े थे। किसी ने ख़बर दे दी। दलबल के साथ अधिकारी आगये। बचने का रास्ता न देख दोनों भिड़ गये और अब घायल होकर यहाँ आये हैं। मदन और संतोष आज के 'हीरो' बन गये। आँखे फाड़ फाड़ लोग इन दोनों को देखते रहे। कुछ की आँखों में आँसू आये, कुछ के होंठ काँपे। लेकिन सभी शान्त रहने की कोशिश कर रहे थे। ऐसी अवस्था में ज़्यादा बोलना ठीक न था।

मतई ने आगे बढ़ मदन के सिर पर हाथ रखा। मदन ने आँखें खोलीं। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। धीमे धीमे उसने कहा, 'चाचा!'

"हाँ भैया, लेटे रहो," मतई चाचा का गला रुँध गया था। सभी लोगों की आँखें सजल थीं। कन्हई मतई के पीछे से झाँक रहा था। पैर की ओर बा० रामलाल और पं० नरोत्तम प्रसाद कमर पर हाथ टिकाये खड़े थे। रामदीन चौधरी दूर दरवाज़े के पास रह गये थे।

विनय ने संतोष को स्पर्श किया। उसका हाथ अपने हाथों में लेकर चूम लिया। फिर उसे दबा कर झुका हुआ खड़ा रहा। संतोष ने आँखें उघारीं। काफ़ी कोशिश के बाद देख पाया कि विनय सामने खड़ा था। उसकी आँखें सतेज हो गईं। घृणा और दर्द से उसके ओठ बिचक गये। फिर उसके ओठ हिले। विनय के कानों ने साफ़ सुना, संतोष ने कहा था, 'ग़द्दार, देश द्रोही!' और उसने आखें फेर लीं। विनय का हाथ ढीला पड़ गया। जैसे उसे किसी ने मुँह पर ज़ोरों का थप्पड़ लगा दिया हो। आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह लड़खड़ा कर गिरने वाला ही था कि कन्हई ने उसे सँभाला। अर्ध बेहोशी में विनय ने मदन की ओर देखा। मदन की आँखें बन्द थीं। लेकिन बन्द पलकों से भी राह निकाल कर मानो आँसू बाहर ढुलक कर बह ही गया। बोलने की क्षमता न थी मदन में। मूक आँसू अपनी सफ़ाई न दे सके। सफ़ाई देते भी तो विनय समझ न पाता। वह होश में न था।

× × ×

घर में ताला डाल छबिया और उसकी माँ को ले नसीम अपनी

माँ के पास चली गई। अकबर से बड़े मियाँ को सारा हाल मालूम हुआ। डर, ग़ुस्सा और बेइज़्ज़ती ने उन्हें मजबूर कर दिया कि वे नसीम से कुछ न बोलें। नसीम एक बार पापा के पास गई, अदब से सलाम किया, कुछ देर तक खड़ी रही और वापस चली आई। न उन्होंने नसीम की ओर देखा, न उससे बातें कीं। उनके लोहित नयन बता रहे थे कि नसीम के कृत्यों से उन्हें मर्मान्तक पीड़ा पहुँची है। वह नसीम की सूरत से नफ़रत करते थे।

नसीम को यह अपमान बर्दाश्त न था। वह अम्मी की गोद में मुँह डालकर सिसकने लगी। उसका दिल टुकड़े टुकड़े हो चुका था। उसका सब कुछ नष्ट हो चुका था। वह जली, झुलसी, पिटी, निराश, माँ के सुखद कक्ष में शान्ति पाने आई थी। दिन भर का धूप में झुलसा पंछी शाम को अपनी नीड़ में बसेरा लेता है। लेकिन उसकी तिनकों वाली नीड़ में भी कोई आग लगा दे तो? नसीम की वही दशा थी। सोचा था पापा नाराज़ हैं तो क्या हुआ? खून तो उन्हीं का है। मुझे वे ज़रूर माफ़ कर देंगे। अब्बा नहीं हैं; अब वही तो हमारे सब कुछ हैं, बुज़ुर्ग और निगहबान। लेकिन पापा का व्यवहार कड़ुआ था। पत्थर का कलेजा था शायद उनका। नसीम अपनी माँ की गोद में फूट फूट कर रो रही थी।

माँ माँ ही है। नसीम के गर्म आँसुओं में उनका क्रोध, उनकी ग्लानि सब बह गये। नसीम को सीने से चिपका, टोढ़ी दबाती हुई प्यार से बोली, "कोई बात नहीं बेटी, बड़े मियाँ नाराज़ हैं तो रहा करें। मैं ज़िन्दा हूँ मेरी लाड़िली! तू घबरा मत।" अम्मी अपने आँसुओं को दिल खोलकर बहा रही थीं।

"अम्मी, अब मैं यहाँ न रहूँगी। मेरे लिये अब कहीं जगह नहीं है। मेरा सब कुछ लुट चुका है। मिट चुका है। अब मुझे मरी समझो, मुझे जाने दो अब!" नसीम ने दोनों हाथों को छुड़ाते हुये कहा।

"बेटी, मैं तेरी माँ हूँ, माँ। मेरे कलेजे के टुकड़े, तू अपनी माँ की अकेली औलाद है। तू मुझे छोड़कर कहाँ जायगी?" अम्मी ने

नसीम का माथा चूमा, ओंठ चूमे, गाल चूमे। नसीम उनकी गोद में पड़ी सिसकती रही।

अकबर ने छबिया और उसकी माँ के ठहरने के लिये कमरा ठीक कर दिया और उसमें उन लोगों का सामान पहुँचा कर ख़ुद खाने पीने का इन्तज़ाम करने चला गया। लुटे बंजारों की भांति इन दोनों ने उस कमरे प्रवेश किया। सामान ठीक से रखा और माँ बेटी सिर नीचा किये बैठी रहीं।

अम्मी के साथ नसीम भी कमरे में आई। अम्मी ज़मीन पर ही सब के साथ बैठ गईं। छबिया उनको देखते ही भरभरा आई। उसका कलेजा दहला, ओंठ काँपे और विह्वल हो वह अम्मी की गोद में सिसकने लगी। अम्मी को सारा क़िस्सा मालूम था। नसीम और छबिया दोनों के दुर्भाग्य की लोहित रक्त-कथा! पगली की तरह छबिया की माँ सब कुछ देखती रही। नसीम अपने दुपट्टे में मुँह ढाँके बैठी थी। छबिया अम्मी की जाँघों पर सिर डाले पड़ी सुसुक रही थी। अम्मी छबिया के माथे पर बार बार हाँथ फेरती जैसे उसके अमर सोहाग का आश्वासन दे रही हों। दो अभागिनी माँयें और दो अभागिनी बेटियाँ! चारों का संसार उजड़ा हुआ, ख़ज़ाना लुटा हुआ, भविष्य अंधकार पूर्ण। माँयें, आश्वासन और आश्रय की प्रतिमा, बेटियाँ आलोड़ित ऊर्मियों और प्रबल झंझावात के तूफ़ानी वातावरण की शिकार तरुणी-तरंगिणियाँ! क्या होगा? तूफ़ान थमेगा? लहरें समतल होंगी? अमा-निशा की छाती पर स्वर्ण रश्मियाँ चमकेंगी? नियति की कृति! भाग्य की विडम्बना! क्या होगा?

और दिन बीतने लगे। समय गहरे से गहरे घावों को भी भर देता है। नसीम और छबिया को कुछ कुछ शान्ति और सान्त्वना मिलने लगी। उनकी दिनचर्या भी ठीक ठीक चलने लगी। कभी वे गोमती में नौका विहार करतीं, कभी पुरानी मस्जिदों, मीनारों, खण्डहरों को देखने जातीं। घूमने घामने, बातचीत में अपना दिन काटे जा रही थीं ये दोनों।

जुमा का दिन था। नमाज़ियों की भीड़ ज़्यादा थी। सभी इस पवित्र दिन पर नमाज़ अदा करने बड़ी मस्जिद में आया करते। नसीम भी छबिया को लेकर बड़ी मस्जिद गई। उसने नीचे के बरामदे दिखाये, तीनों फाटक दिखाया, उसकी विशेषता बताई और फिर पश्चिमी फाटक से होकर वहाँ पहुँची जहाँ उसके अब्बा का मज़ार था। नसीम ने छबिया को मज़ार दिखाया। "देखो छबी," नसीम ने कहा, "यही मेरे अब्बा का मज़ार है। इसी में वे दफ़नाये गये हैं। जब भी मैं यहाँ आती हूँ मेरा जी न जाने कैसा होने लगता है। अब्बा की याद अभी बहुत ताज़ा है। उनके मरे कुल तीन ही बरस हुये। अब्बा मेरे बड़े ख़ूबसूरत, सीधे और तरक़्क़ी पसन्द थे। अच्छी आमदनी थी—अच्छे ख़्यालात थे। पापा को वे हमेशा समझाया करते थे कि ज़माना नया है, इसलिये नया तौर तरीक़ा भी होना चाहिये। लेकिन पापा कुछ भी सुनने को राज़ी न थे। तुम शायद नहीं जानतीं कि मुझे अपनी पढ़ाई और तौर तरीक़े के लिये क्या क्या बर्दाश्त करना पड़ा है। अब्बा को आख़िर तक यही सदमा रहा कि वे मुझे तरक़्क़ी करने का पूरा मौक़ा पापा की वजह से न दे सके। पापा के सामने अब्बा लेहाज़ और शर्म की वजह से ज़्यादा बोल न पाते। नतीजे में मेरी मुसीबत बढ़ जाती। जानती हो, आज अब्बा ज़िन्दा होते तो हम लोगों का इस्तक़बाल इस तरह न होता जैसा कि उस दिन हुआ। अब्बा का न रहना मुझे बहुत खल रहा है छबी!"

छबिया की आँखों की डोरियाँ लाल हो रही थीं। लेकिन मंत्र-मुग्ध सी वह सुनती जा रही थी और नसीम कहती जा रही थी, "मैंने विनय से मुहब्बत की। सोचा उन्हीं के साथ रह कर उसी ख़ुशी में अपने दुखों को डुबा दूँगी। लेकिन छबी, ऐसा होना नहीं था। १२६ में नज़रबन्द हैं। कब छूटेंगे कोई नहीं जानता। ख़त भी आ जा नहीं सकते। कैसे हैं मैं नहीं जानती। मेरा दिल बहुत घबराता है बहिन, क्या करूँ!" नसीम रोने लगी।

छबिया को अपनी बातें याद आईं। मदन फ़रार था तब तक

कुशल था। अब घायल होकर अस्पताल में पड़ा है। पता नहीं उसकी तबीयत कैसी है। "हे भगवान, मेरा सोहाग बचाओ, नसीम बहिन का संकट काटो," मन में रोती प्रार्थना करती छबिया ने कहा।

नसीम ने छबिया की गर्दन में हाँथ डालकर अपनी ओर खींचा और दोनों मज़ार के पास बैठ गईं। दोनों एक दूसरे से अपना दुखड़ा रोतीं, अपने दिल की बातें कहतीं, सुनतीं बहुत देर तक वहीं बैठी रहीं।

बड़े मियाँ हर जुमा को नमाज़ के बाद फूल चढ़ाने आते थे मज़ार पर। इस समय अपने काँपते हाँथों में फूल लिये आये तो नसीम और छबिया को वहाँ बैठे देख हिचके आगे बढ़ने से, फिर हिम्मत करके मज़ार के पास आये। झुक कर फूल चढ़ाने लगे तो नसीम ने उन्हें देखा। नसीम उठकर खड़ी हो गई। उसके कन्धे की चादर खिसक गयी थी। सिर के बाल उड़ उड़ कर हवा में बिखर रहे थे। गालों पर अब भी आँसुओं की गीली पंक्तियाँ बनी हुई थीं। सिर नीचा कर नसीम चुपचाप खड़ी रही। उसके पीछे छबिया सिर की साड़ी ज़रा सा आगे खिसकाये, हाँथ बाँधे, गर्दन नीची किये खड़ी हो गई। बड़े मियाँ बैसाखी के सहारे खड़े नम आँखों से कभी नसीम, कभी छबिया की ओर देखते कभी क़ब्र की ओर; उनकी आँखें तर हो गईं। काँपते हाथों से फूल चढ़ाया और बुदबुदाये।

थोड़ी देर इसी तरह बीता तो बड़े मियाँ ने नसीम की ओर मुखातिब होकर कहा, "चलो बेटा, घर चलें," और वे चलने लगे। नसीम और छबिया भी चुपचाप उनके पीछे चलने लगीं।

शाम को नसीम फिर लौटी। अब की बार वह मस्जिद के ऊपर चढ़ी। छबिया पीछे पीछे थी। ऊपर पहुँच दोनों ने बैठ कर विस्तृत मैदान, फैली हरियाली और मकानों के झुरमुटों को देखा। मस्जिद बहुत ऊँची थी और उसके ऊपर से मीलों तक चीज़ें दिखाई पड़ती थीं। नसीम ने दक्खिन की ओर उँगली उठा कर कहा, "देखो छबी, वह गोमती बह रही है। जाने कितने बरसों से वह बहती आई है इसी तरह खेतों,

मैदानों और शहरों से होकर। एक ज़माना था जब जौनपूर हिन्दुस्तान का सब से बड़ा सूबा था। देखती हो वह क़िला ? उसमें शर्की ख़ान्दान के बादशाह रहा करते थे। आज यह क़िला ढह चुका है। शर्की ख़ान्दान मिट चुका है। शान शौकत वाले क़िले की याद में रोने के लिये पत्थर की गिरी ढही दीवारें और क़ब्रों से भरे सूखे मैदान रह गये हैं। जैसे हम तुम ! मैं शर्की खान्दान की ख़ातून हूँ। हमारे बुज़ुर्ग बादशाह और नवाब थे। हमारे पापा अब भी उसी शान और शौकत को अपनी रगों में महसूस करते हैं। लेकिन कितनी फ़जूल बात है यह ! सोचो तो, उन बीती हुई बातों को याद कर झूठा ग़रूर दिखाने से क्या फ़ायदा ? हमें ज़माने के साथ चलना चाहिये। क़िले ढह गये, दीवारें ज़मीन से मिल गईं। पुराने ज़माने का नाम लेने वाला भी कोई नहीं रह गया। लेकिन गोमती बहती जा रही है। वह बहती जायेगी क्योंकि उसमें रवानी है। गोमती को मालूम है कि मौक़ा देख कर रास्तों में कैसे मोड़ और चक्कर देना चाहिये। पत्थर का क़िला ढह गया, पानी की गोमती बहती जा रही है। देखती हो छबी ?" नसीम ने भावावेश में छबिया की ओर देखा।

"हाँ बहिन, देख रही हूँ। आँख खोलकर देख रही हूँ।" छबिया ने कहा।

"गोमती जैसे इस बात की गवाही दे रही है कि वह इन क़िलों और महलों के उरूज और ज़वाल को देख चुकी है, जैसे वह कह रही है कि अगर वे मेरी तरह वक़्त के मुताबिक़ चलते, अपना रास्ता अपने हाथों बनाते हुये तो उनकी यह हालत न होती।" नसीम ने भावुकता से छबिया की ओर देखा और फिर कहा, "छबी बहिन, आज हमारे ज़वाल का दिन है। कल हमारा उरूज भी हो सकता है। तुम्हें मदन और मुझे विनय मिल सकते हैं। थोड़ा सा बर्दाश्त करने की ज़रूरत है। आज की मुसीबत की घड़ियाँ हम हिम्मत और बहादुरी से काट ले जायँ तो कल हमारी ज़िन्दगी का सुनहला सबेरा ज़रूर आयेगा।"

छबिया नसीम की बातें समझकर भी समझ नहीं पा रही थी। वह

टुकुर टुकुर नसीम की ओर देखती रही। नसीम ने फिर उँगली से इशारा किया पश्चिम की ओर। छबिया ने देखा सूरज डूबने जा रहा रहा है। नसीम ने कहा, "यह सूरज डूब रहा है। इसके बाद अंधेरी रात आयेगी। उस के बाद सवेरा होगा। क्यों छबी?"

"हाँ, उसके बाद सबेरा होगा।" सहज ही बोल उठी छबिया।

"तो हमारी ज़िन्दगी की यह काली रात भी ज़रूर कट जायेगी और उसमें जवानी से, मस्ती से भरा सबेरा आयेगा। यक़ीन रखो बहिन, ऐसा ज़रूर होगा।" नसीम ने छबिया की ओर फिर देखा।

छबिया सिर नीचा कर सुनती रही।

नसीम ने फिर कहा, "अब्बा के मज़ार के पास बैठी उस वक़्त जब मैं रो रही थी तभी मुझे ऐसा लग रहा था कि विनय मुझे ज़रूर वापस मिल जायेगा। तुम्हारा मदन तुम्हें ज़रूर सही सलामत मिलेगा। छबी, मेरा दिल रोता है, परेशान होता है। लेकिन उम्मीद की एक दो किरनें ज़रूर उस अँधेरे में चमक उठती हैं। उन्हीं का सहारा है इस वक़्त।"

नसीम अब न बोल सकी। दोनों एक दूसरे के गले में हाँथ डाले कभी सूने मज़ार, कभी डूबते सूरज, कभी बहती गोमती की ओर एक टक देखतीं। ऊपर आसमान में दिन भर की थकी माँदी पंछियों की जोड़ी भी उड़ती चली जाती। दोनों काँप उठतीं, कभी कातरता के कारण, कभी हर्ष-विह्वलता की वजह से।

पश्चिम में सूरज डूबा ही था कि आसमान पर एक झिलमिलाता तारा दिखाई दिया। नसीम उठ खड़ी हुई वापस लौटने के लिये। दोनों की निगाहें उस एकाकी, झिलमिलाते तारे की ओर लगी हुई थीं। ऊपर से पंछियों की शायद आख़िरी जोड़ी अपनी नीड़ की ओर उड़ती चली गई।

"चलो घर चलें," नसीम ने तारा को एक बार और देख कर, पंछियों की ओर निगाह लगाये छबिया से कहा।

अँधेरा गाढ़ा होता जा रहा था। छबिया और नसीम नीचे उतर

आईं।

शाम को बड़े मियाँ ने नसीम की अम्मी को बुलाया और कहा, "देखो, नसीम के दिल को अब मैं और ज़्यादा दुखाना नहीं चाहता। वह नये ज़माने की लड़की है। रहने सहने के नये ढंग उसे पसन्द हैं। निकाह भी वह नये ढंग से करना चाहती है। मैं मुसलमान हूँ और शिया। मेरा ख़ानदान इतना मशहूर और ऊँचा है। उसकी इज़्ज़त इसी में है कि उसके वारिस नीचे तबक़े के ख़ान्दानों के साथ रोटी बेटी का नाता न जोड़ें। लेकिन नसीम उस हिन्दू विनय से शादी करना चाहती है। अँगरेज़ी पढ़ाई का ही यह असर है। दूसरी बात यह कि मैं सरकार का ख़ैरख़्वाह हूँ। उसके ख़िलाफ़ कुछ भी करना या कहना मैं अपने ख़ान्दानी तरीक़ के ख़िलाफ़ समझता हूँ। पुश्त दर पुश्त से हम इस हुकूमत के हामी रहे हैं। अब उस से बग़ावत करना बिल्कुल ग़लत है। फिर भी नसीम ने बग़ावत की और गोलियों का शिकार बनी। मेरे लिये ये दोनों बातें नाक़ाबिल बर्दाश्त हैं। जब मेरी इज़्ज़त में बट्टा लग गया, जब मेरे ख़ान्दान में बट्टा लग गया तो जीकर ही मैं क्या करूँगा? अब मैं मौत के लिये दुआ माँगता हूँ। अपने जीते जी इन में से एक भी बात मैं होने देना नहीं चाहता था। लेकिन मामला बहुत आगे बढ़ चुका है। नसीम के क़दम शायद अब वापिस नहीं लौट सकते। मैं अब ज़ोर भी नहीं डालना चाहता। नसीम जो चाहे करे, मैं उसे अब रोकूँगा भी नहीं। मुझे मालूम है कि मेरी ज़िन्दगी के साथ ही मेरे ख़ान्दान की इज़्ज़त आबरू है। मेरे बाद उसकी किसी को याद भी नहीं रहेगी। मुझे अफ़सोस है मगर मैं मजबूर भी हूँ।" कह कर बड़े मियाँ अपना हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगे।

थोड़ी देर आँखें बन्द किये वह सोचते रहे फिर बोले, "अगर नसीम हो तो उसे बुलाना ज़रा।"

अम्मी नसीम को लेकर वापिस आईं तो बड़े मियाँ ने ध्यान से नसीम की ओर देखा और गम्भीर हो कर कहा, "बेटी, मैं तेरा पापा हूँ। लेकिन तूने हमेशा मुझे अपना दुश्मन समझा। तेरा ऐसा

समझना ठीक भी था। जिस तरह के तौर तरीक़े, रहन-सहन तू पसन्द करती है वह मैं नापसन्द करता हूँ। लेकिन अब मैं तुझे बिल्कुल रोकना नहीं चाहता। तू जो चाहे कर। तेरा पापा अब तेरे रास्ते का रोड़ा बनना नहीं चाहता। यह धन-दौलत, रियासत सब तेरा है। मैं अब अपनी आख़िरी साँसें गिन रहा हूँ। मेरी ज़िन्दगी का अब कोई ठिकाना नहीं। मुझे अफ़सोस है कि आख़िरी वक़्त पर अपनी औलाद की वजह से मुझे इतनी तकलीफ़ हुई। लेकिन मैं तेरी ज़िद और नासमझी के सामने अपना सिर झुकाता हूँ। जा, ख़ुश रह, आबाद रह, तेरा पापा मजबूर होकर तुझे यह दुआ दे रहा है।"

अम्मी और नसीम दोनों चुप रहीं। पापा धीरे धीरे हुक्का गुड़गुड़ाते रहे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "जाओ बेटा, अब मेरे सामने मत आना।"

नसीम उठी और अम्मी के साथ पापा के पास से चली आई। वापस आ माँ बेटी एक दूसरे को बहुत देर तक बैठी बैठी देखती रहीं। पापा की बातें कितनी भयानक थीं! नसीम और अम्मी दोनों को जहाँ एक ओर राहत मिली थी और बोझ हल्का हुआ था वहीं दूसरी ओर उनके सीने पर एक भारी बोझ भी लद गया था। ख़ुशी और रंज दोनों के भँवर में उनके टूटे दिलों की नाव डूब उतरा रही थी।

× × ×

रुआँसी होकर नूरजहाँ ने कप्तान की ओर देखा। कप्तान सहम गया। नूरजहाँ की आँखों में उसे करुणा की बूँदें ही नहीं चुनौती की चिनगारियाँ भी दिखाई दे रही थीं। अपनी व्यथा और पीड़ा को छिपाने की लाख कोशिश करने पर भी जब कप्तान अपने को रोक न सका तो उसने साफ़ कहा, "नूरी, तुम मेरी मदद करो। अब तुम्हीं मेरी मदद कर सकती हो। मैं बहुत परेशान हूँ। पार्टी की भलाई और राष्ट्र की पुकार एक ओर है और दूसरी ओर मेरा कमज़ोर दिल और तुम्हारी भीगी नम पलकें। बताओ मैं क्या करूँ? अपनी पार्टी

के लीडर के आदेशों को न मानना ग़द्दारी है। ऐसा करके मैं देश द्रोह का दोषी बनूँगा। तुम्हारी इच्छाओं को न मानकर मैं अपने दिल, दिमाग़, शरीर सब के प्रति ग़द्दारी करूँगा। कुछ बोलो नूरी।"

"संतोष बाबू की बातों के बाद अब बोलना क्या रह जाता है ? मैं औरत हूँ। असहाय, अबला हूँ। अपना .खून देकर भी मेरा तुम्हारे ऊपर कुछ अधिकार न हो सका। लेकिन संतोष बाबू का तुम्हारे ऊपर पूरा अख़्तियार है। वह जो चाहें तुमसे करा सकते हैं। चुनना तुम्हें है, मुझे नहीं। तुम मुझे आसानी से ठुकरा सकते हो। मेरे अरमानों और मेरी ज़िन्दगी के मोती भरे सपनों को अपने पैरों से कुचल कर, रौंदते हुये तुम चले जा सकते हो। मेरा क्या ? घर वाले छूट ही चुके हैं। बदनाम, अपमानित नर्स की ज़िन्दगी का पाप सिर पर ढोये चली जा रही हूँ। जब तक यह पाप ढो सकूँगी ढोऊँगी उसके बाद फिर जमुना की गोद है ही; वह गोद जहाँ कोई मेरा दिल तोड़ न सकेगा, कोई मेरा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा। कप्तान, मैं कह रही हूँ कि तुम .खुशी .खुशी वापस जाओ। मुझे भूलने की कोशिश करना। मैं भी कोशिश करूँगी कि तुम मुझे याद न आओ। लेकिन मेरे कलेजे का .खून अगर कभी तुम्हारे नसों में उबाल पैदा करे, दिल पर ज़ोर डाले तो कहना, 'घृणित नर्स का .खून, ओफ़ ! कहाँ से आ गया मेरी नसों में !' मेरे .खून के उन दगीले बूँदों से भी तुम घृणा करने की कोशिश करना। ज़रूर करना कप्तान !" नूरजहाँ अपना हाथ छुड़ा उठ कर जाने की कोशिश करने लगी। उसकी आँसू भरी आँखें उसके बाहों में छिपना चाहती थीं।

कप्तान ने नूरजहाँ का हाथ और ज़ोरों से दबाया। दबाये ही रहा। आँखें बन्द कर पड़ा पड़ा संतोष की बातें सोचता रहा। 'मैं गोली खा कर भी अपनी देशभक्ति का परिचय न दे सका। मैं प्रेम करना जानता हूँ और चाहता हूँ, इसलिये अपने प्राणों की बलि चढ़ाने पर भी मैं देशभक्त नहीं बन सकता। क्योंकि देशभक्ति और सहज स्वाभाविक स्नेह प्रेम में कोई सम्बन्ध नहीं। संतोष मुझे चुनौती दे गया है, नूरजहाँ

और पार्टी में मुझे चुनाव करना है। लेकिन क्या दोनों में समन्वय नहीं हो सकता ? क्या संतोष की धारणा सच है ? क्या संतोष पार्टी सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन में इतनी दूर तक दख़ल दे सकता है ? क्या यह सच है कि मैं नूरी से स्नेह करने के कारण पार्टी का काम बिलकुल न कर सकूँगा ? झूठ, बिल्कुल झूठ ! ग़लत ! नूरी मेरे रास्ते का रोड़ा ही बनेगी इसका क्या प्रमाण है ? क्या वह मेरी सहायता नहीं कर सकती ? क्या वह मेरे साथ साथ नहीं चल सकती ?' कप्तान आँखें बन्द किये सोचता रहा, सोचता रहा !

"जाती हूँ कप्तान, जाने दो, मुझे छोड़ दो।" नूरजहाँ ने फिर कहा।

"नहीं," कप्तान बोला।

नूरजहाँ वहीं की वहीं रह गई। कप्तान ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा था। ज़रूर इसका कोई विशेष अर्थ होगा। नूरजहाँ चुपचाप बैठी रही। कप्तान आँखें बन्दकर सोचता रहा, 'नूरी से इन्कार करना, बहुत बड़ी कृतघ्नता होगी। मेरा उसका ख़ून एक हो चुका है। उसे अब अलग नहीं किया जा सकता। जो बात हो चुकी है उसे ज़बान से नहीं करने से क्या फ़ायदा ?' कप्तान ने साँस खींची। उसके दोनों ओंठ सट गये, दृढ़ता का प्रमाण बनकर। कप्तान ने नूरी को अपनी ओर खींचा। उसका हाँथ अपने दिल के ऊपर रखकर कसके दबाया और तेज़ साँसों के कारण हाँफते हुये बोला, "नूरी, बहुत कठिन ज़िन्दगी तुम चुन रही हो। काँटों भरी राह पर चल सकोगी ? मुझसे तुम्हारी ज़िन्दगी का कोई भी अरमान पूरा न होगा। सुख की आशा करना दुराशामात्र होगी। लेकिन अब मैं नहीं चाहता कि तुम कुछ भी सोचो। मेरी नूरी, तुम भी आओ इस तूफ़ानी दरिया में तैरने के लिये, मौत के घाट उतरने के लिए आओ मेरे साथ ! नूरी, आओ, इस नीलकण्ठ के ज़हरीले ओठों पर अमृत-सिंचन करो। ज्वाला की लपटों पर हिमानी की चादर डाल दो। आओ नूरी, हम तुम एक हो जाँय और एक प्राण, एक मन, एक शरीर हो जननी जन्मभूमि के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करें। आओ, मौत से खेलें। आओ,

ज़िन्दगी की रागिनी हमें पुकार बुला रही है। मौत की लोरियाँ और थपकियाँ ज़िन्दगी के कठोर झंझावात के आगे फीकी पड़ती जा रही हैं। आओ प्राण, मेरी रोशनी, मेरी ज़िन्दगी !" कप्तान ने नूरजहाँ को को अपने सीने से लगा लिया। हृदय पर हृदय, ओठ पर ओठ धरे, आँखों में आँखें डाले दोनों पड़े रहे।

बिजली के बल्व का धवल प्रकाश, धवल पर्यंक पर धवल वस्त्र-धारी कप्तान, उसके अंक में निर्मल, शुभ्र, धवल वस्त्रधारिणी नूरजहाँ जैसे शीतल ज्योत्सना की चादर लपेटे, सरोवर की धवल लहरों पर श्वेत कमल और कमलिनी प्रणय-परिरम्भण की मोहक मुद्रा में निद्रालस पड़े हों।

प्राणार्पण और त्यागमय आस्था का शुभ सम्मेलन ! कठोर, गंभीर, सत्य और कोमल, कवितामयी भावुकता का सहज संयोग ! सबल, स्वस्थ, पौरुष का कमनीय, आकर्षक, मोहक माया के हाथों आत्मसमर्पण ! पुरुष का नारी के आँचल की शीतल छाया में आत्म विस्मरण ! आशा के मस्तक पर आश्वासन का वरद हस्त—रक्षामय, कल्याणमय ! नूरजहाँ की क्षीण कटि पर कप्तान की बलिष्ठ भुजाओं का घेरा जैसे स्वीकृति के बाद सोल्लास सक्रियता, जैसे आनन्द की अतल गहराई में अविरोध मार्ग भेदन, जैसे सत्य की विमल ज्योतिराशि पर शीतलता का झीना, झिलमिल आवरण !

रक्तिम डोरियों वाली सालस आँखों को उघार कप्तान ने नूरजहाँ की ओर देखा। नूरजहाँ की अधमुँदी आँखों ने भी कप्तान की ओर देखना चाहा।

कप्तान ने नूरजहाँ को फिर कसके दबा लिया।

दोनों के कलेजे साथ साथ धड़क रहे थे। दोनों के अंग-प्रत्यंग शिथिल हो रहे थे। दोनों निस्पन्द, अडोल, एक दूसरे के अंक में पड़े रहे जैसे जागते हुये भी कोई मोहक, सुखद सपना देख रहे हों।

[१३]

"इस आन्दोलन के पहिले बाहर मेरी जो भी पोज़ीशन रही हो लेकिन इस समय तो तुम्हीं सबके 'हीरो' हो। मुझे इससे क्या एतराज़ हो सकता है? तुम हर दिल अजीज़ बने रहो, सबकी आँखों के तारा बने रहो, इससे मुझे ख़ुशी होगी। तुमने त्याग किया है, बलिदान दिया है। अपनी विचार धारा और दृष्टिकोण को सक्रिय रूप देने के लिए तुमने अमित मूल्य दिया है। तुमने ख़ून पसीना एक किया है, मौत से हँसते हँसते भिड़े हो, ज़िन्दगी के सभी अरमानों को तुमने अपने विश्वास और धारणा के लिये क़ुर्बान कर दिया है इसलिये तुम श्रद्धेय हो। मैं भी तुम्हारा आदर करता हूँ। मानो या न मानो, लाख मत-भेद और विरोध के बावजूद भी मैंने अपने को तुम्हारा हितेच्छु और शुभ चिन्तक ही समझा है। इसीलिये जिस समय तुम यहाँ अस्पताल में दाख़िल हुये मैं तुम्हारे पास आया। मुझे देखते ही तुमने आँखें फेर ली थीं, शायद तुम्हारे ओठों से 'ग़द्दार' शब्द भी बरबस ही फिसल पड़ा था। लेकिन मुझे इन बातों की कुछ भी परवाह नहीं। जब तक मुझे इस बात का विश्वास है कि मेरे हृदय में देशभक्ति है, मैं देश-भक्त हूँ, तब तक मुझे इस बात की परवाह नहीं कि मेरे विरोधियों की शक्ति और संख्या कितनी है। संतोष, इससे अधिक अपनी सफ़ाई में मुझे कुछ नहीं कहना है।"

संतोष अपने बिस्तर पर पड़ा था। विनय की उपरोक्त बातें चुप-चाप सुनता रहा, उसकी आँखें छत की ओर एकटक देख रही थीं। वह अपना शरीर हिला-डुला नहीं सकता था। कभी कभी दो चार वाक्य बोल देता। इतने में उसे थकावट मालूम पड़ने लगती। इतनी उपेक्षा और अपमान के बाद भी विनय का स्नेहपूर्ण व्यवहार देख संतोष विनय को अपने बहुत निकट अनुभव करने लगा। वह विनय को अपने पास ही रखना चाहता था। ख़ुद चाहे कुछ न बोले, लेकिन यह चाहता था कि विनय ज़रूर कुछ न कुछ बोलता रहे। विनय की ये

बातें सुन संतोष मुस्करा पड़ा ।

"विनय, पाँचवें दस्ते वाले की इस प्रकार प्रशंसा करते तुम्हें संकोच नहीं होता ?" चिढ़ाने के लिये संतोष ने कहा ।

"मैं तुम्हें या तुम जैसे लोगों को पाँचवाँ दस्तावाला नहीं समझता। संतोष, तुम्हारी निर्मल, ज्वलन्त देश भक्ति पर मुझे कभी भी सन्देह नहीं रहा । हाँ, इतना मैं ज़रूर कहता रहा हूँ और अभी भी कहने को तैयार हूँ कि तुम और तुम जैसे देशभक्त शासकों के चक्कर में फँस गये। वे चाहते थे कि तुम किसी प्रकार ग़ुस्सा हो जाओ । ग़ुस्से में कुछ ऐसा काम कर बैठो जिससे वे तुम्हारा और जनता का भरपूर दमन कर सकें । और इस प्रकार हमारा सार्वजनिक जीवन टूट फूट कर विशृङ्खलत हो जाय । इसमें हमारे शासक पूर्णतया सफल रहे । इसलिये मैं कहता हूँ कि भावुकता के आवेश में तुम्हें कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान न रहा । तुम्हारी निगाहें ख़ता कर गईं ।" विनय ने सरलता और सुस्पष्टता से अपनी बातें रखीं ।

"तुम्हारा यह कथन किसी विद्वान प्रोफ़ेसर के मुख से अधिक शोभा देता । तुम ख़ुद राजनैतिक कार्यकर्ता हो । तुम्हीं बोलो, अंकगणित के जोड़ बाक़ी की तरह कहीं राजनीति की प्रगति होती है ? युद्ध में हृदय और मस्तिष्क दोनों की आवश्यकता पड़ती है । कोरी बुद्धिवादिता हमें कर्मठ नहीं, कायर बना देती है ।" संतोष ने विनय की ओर देखने की कोशिश की ।

"मैं तुमसे सहमत हूँ । हृदय और मस्तिष्क का सहज स्वाभाविक समन्वय मनुष्य को सक्रिय और कार्यशील बनाता है । लेकिन अगर हृदय मस्तिष्क पर हावी हो गया तो ? जैसे अकेला मस्तिष्क हमें कार्यशीलता के लिये प्रेरणा नहीं दे सकता उसी तरह केवल हृदय हमें सही मार्ग पर नहीं ले चल सकता । बुद्धि का अतिरेक पंगु बना देता है और हृदय का अतिरेक पागल । दोनों का समन्वय हमें कर्मठ कार्यकर्ता और ज़िम्मेदार नेता बना देता है ।"

"अंधा और पागल बना ही चुके । अब और क्या बाक़ी है ?

एक तरफ़ इतनी प्रशंसा, दूसरी ओर अंधा और पागल, कमाल है विनय ! तुम लोग बातें करने में बड़े चुस्त हो ।" संतोष ने चोट की ।

"फिर वही शैतानी ? संतोष, तुम थोड़ी देर भी बिना कटाक्ष किये नहीं रह सकते क्यों ?" विनय चिढ़ गया ।

"मैंने कटाक्ष नहीं किया । तुम्हारे प्रवचन का विश्लेषण कर रहा था और कुछ नहीं ।" संतोष ने सफ़ाई दी ।

"अच्छी बात है, तुम अंधे, पागल दोनों सही । इश्क़ भी तो अंधा और पागल दोनों होता है । तुम मेरे स्नेह भाजन हो भी ।" विनय ने सँभालने की कोशिश की ।

संतोष फिर मुस्कराया । वह कुछ कहने ही को था कि मदन बोल उठा, "भैया, तुम लोगों की नोक झोंक बड़ी मजेदार होती है । चाहे समझ में कुछ न आवे लेकिन अच्छा बहुत लगता है ।"

विनय और संतोष दोनों पर पानी पड़ गया । विनय ने हँस कर पूछा, "यानी, हम लोग वाहियात बातें बक रहे थे । उसमें कोई सार तत्व न था, क्यों ?"

"सो बात नहीं, सार तत्व जरूर रहा होगा । लेकिन मैं अपनी बुद्धि को क्या करूँ ? उसमें कुछ धँसता ही नहीं । तुमने संस्कीरत में कुछ कहा । मैंने समझा संतोष भैया का गुन गा रहे हो । बाद में पता चला कि तुम उन्हें अन्धा, पागल कह रहे थे । मैं डरा कि अब मेरी बारी आवेगी । सोचा कि देखें क्या देवबानी विनय भैया बोलते हैं । शायद ज्यादा पढ़ने लिखने से ऐसा ही बोलने लगता है आदमी ।" मदन ने संतोष की ओर देखा, फिर विनय की ओर ।

विनय हँसा, लेकिन मदन की बातों का उत्तर न दे संतोष से फिर कहने लगा, "भाई देखो, इस समय जेल के अपने साथियों की मनोदशा कैसी है ? क्या इनमें वही पहिले जैसा जोश है ? क्या वे अब भी पहिले जैसा बढ़ बढ़ कर क्रान्ति की बातें करते हैं ? उनका जोश ठंढा पड़ता जा रहा है । उनकी उदासी और निराशा बढ़ती जा रही है । इतनी बड़ी क़ुर्बानी के बाद अगर यही नतीजा होने को था तो क्या

इससे अच्छा यह नहीं था कि कोई दूसरा ही रास्ता शुरू से अख़्तियार किया जाता ? तुम समझते हो कि यह सब काँग्रेस के आदेश और गाँधी जी की अनुमति से हुआ ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस समय आग़ा खाँ पैलेस में बैठे हुये गाँधी जी इस सर्वजनीन विघटन की अवस्था से दुखी हो रहे होंगे।"

"गाँधी जी की दुहाई देकर अपनी अकर्मण्यता छिपाने से क्या लाभ, विनय ? गाँधी जी बाहर होते तो क्या करते इसका चर्चा करने से फ़ायदा ही क्या है ? सवाल यह है कि देश की स्वतन्त्रता के लिये एक आन्दोलन चला। चाहे जो लोग भी उसके चलाने वाले हों, उसमें पूरा हिस्सा लेना हर एक देश भक्त व्यक्ति और पार्टी का कर्तव्य था। जिन लोगों ने इस संकट काल में उसका साथ नहीं दिया वे निश्चय ही ग़द्दार हैं।" संतोष ने ज़ोर देकर कहा।

"और वह लोग जो यह समझते थे कि यह आन्दोलन देश की आज़ादी के लिये नहीं है; बल्कि अपना ग़ुस्सा और खीझ निकालने के लिये भावुकता के आधार पर खड़ी अराजकता और विप्लव है ? जो लोग यह समझते थे कि इसका फल देश के लिये घातक होगा, उससे निष्प्रयोजन रक्त पात और प्राणहोम होगा ? जो यह समझते थे कि यह आन्दोलन असफल अवश्य होगा और हार होने पर लोग जापानियों के एजेन्टों की ओर अवश्य आशा भरी निगाह से देखने लगेंगे ? जो लोग यह समझते थे कि इससे देश की आत्मा का हनन होगा, उसकी क्रान्तिकारी परम्परा का नाश हो जायेगा, आपसी फूट बढ़ेगी, विभिन्न राजनैतिक दलों का आपसी सम्बन्ध और भी अधिक विषाक्त और कड़ुआ हो जायेगा, देश का आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जायेगा और देश की छाती पर शासकवर्ग का उन्मत्त, स्वच्छन्द, ताण्डवनर्तन होगा, उन लोगों का, उनकी पार्टी का क्या कर्तव्य था ? संतोष, पुराने साथी और मित्र के नाते मैं तुमसे यही चाहता हूँ कि तुम स्वयं ठण्डे दिल और दिमाग़ से सोचो। तुम एक पूरी पार्टी के नेता हो। तुम्हारे हाथों में दर्जनों तरुणों का

जीवन है। जेल वह स्थान है जहाँ चिन्तन मनन करके, अपने अनुभवों के आधार पर भविष्य का कार्य-क्रम अच्छी तरह बनाया जा सकता है। मैं यह बिल्कुल आशा नहीं करता कि तुम मेरी बातें मान लोगे लेकिन इतना मैं ज़रूर कहूँगा कि इस अवसर पर रुक कर, ठहर कर, दिमाग़ ठंढा करके सोचना चाहिये।" विनय कहते कहते हाँफने लगा। उसकी कमज़ोरी बढ़ती ही जाती थी। उस दिन बेहोश हो जाने के बाद से वह पूर्णतया स्वस्थ अब तक न हो सका था।

संतोष चुपचाप कमरे की छत की ओर ताकता रहा। विनय ने घड़ी देखी, दवा का समय हो गया था। कुर्सी पर से उठकर उसने संतोष और मदन को दवा पिलाई, ख़ुद एक गिलास पानी पिया और कुर्सी पर आ बैठा। उसने सिगरेट जलाना चाहा तो संतोष ने कहा, "तुम्हारी तन्दुरुस्ती इतनी ख़राब है। तुम सिगरेट कम कर दो। इस तरह कलेजा फूँकने से क्या फ़ायदा?"

"ठीक कहते हो संतोष, मैंने कई बार सोचा कि इस कम्बख़्त से नाता तोड़ूं। लेकिन ऐसा कर नहीं पाता। थक जाता हूँ तो इसी से थोड़ी स्फूर्ति आ जाती है।"

"अच्छी बात है, इस वख़्त थके हो, पी लो, लेकिन कल से जब तक तुम मेरे पास रहोगे सिगरेट नहीं पियोगे। और बैरक में भी उसकी तायदाद कम से कम आधा कर दोगे। क्यों? वायदा करते हो?" संतोष ने स्नेह से विनय की ओर देखा।

विनय ने सिर खुजलाया, फिर मुस्करा कर बोला, "अच्छा भाई, जो हुक्म। पार्टी लीडर का आदेश मुझे मानना ही पड़ेगा।"

"जी हाँ, मानना पड़ेगा।" संतोष ने ज़ोर दिया।

"विनय एक बात मेरे दिल में रहकर उठती है। मैंने कप्तान को एक बार बहुत डांटा था। वह उस नर्स से प्रेम करने लगा था जिसने उसे डेढ़ पाव ख़ून दिया था। मैंने उस वख़्त कप्तान से कह दिया कि पार्टी का कोई भी सदस्य इस तरह इश्क़ मोहब्बत नहीं कर सकता। आवेश में मैंने तो उस समय तो ऐसा कह दिया था लेकिन जब से

यहाँ आया और दिमाग़ में फिर से कुछ सोचने की ताक़त आने लगी मुझे अफ़सोस होने लगा। शायद मैंने कप्तान के साथ ज़्यादती की। उसकी भोली भोली आँसू भरी उद्‌भ्रान्त आँखें मुझे अब भी दिखाई दे रही हैं।" संतोष की बोली में करुणा का पुट था।

"कोई बात नहीं साथी, जेल में और ख़ास तौर से अस्पताल में चिन्ता और ग्लानि से अपना नाता क़ायम नहीं रखना चाहिये। इन सब चीज़ों को बाहर ही छोड़ आना चाहिये। उस समय तुमने जो कुछ किया सब ठीक था और इस समय का तुम्हारा दुखी होना भी उचित है। लेकिन यहाँ तुम्हारा एक ही काम है वह है अपनी तन्दुरुस्ती ठीक करना। तुम इधर उधर की बातें छोड़कर केवल अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दो।" स्नेह-सने विनय के ये शब्द संतोष को बहुत प्रिय लगे। आँखों की कोरों को पोंछ वह ऊपर छत की ओर फिर देखने लगा। विनय समझ गया, सन्तोष भावुक हो रहा है।

"बाहर चलकर नूरजहाँ और कप्तान दोनों को अपने हाथों से मिला देना। यहाँ परेशान होने से क्या फ़ायदा? अपने को फ़ज़ूल थकाओ मत संतोष।" विनय ने जैसे प्रार्थना की।

"नहीं विनय, थकने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। मालूम नहीं कप्तान किन किन मुसीबतों का सामना कर रहा होगा। मैं उसे एक भँवर में, एक उथल पुथल में छोड़ आया हूँ। नूरजहाँ का ही एक सहारा था उसे। वह भी मैंने छीन लिया। दिन भर, रात भर, व्यग्र, चिन्तित और परेशान रहने के बाद स्नेह की शीतल छाँह भी उसे न मिल सकती होगी। बेचारा कप्तान!" संतोष के ओंठ काँपने लगे। उसने अपनी आँखों को फिर पोंछ लिया।

"संतोष, तुम अपनी पार्टी के नेता हो। इस तरह दिल छोटा करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुमने उस समय कप्तान के ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाये वह पार्टी की भलाई के लिये था। बाहर चलकर तुम नूरजहाँ की शादी कप्तान से करना। उस समय तक दोनों आग की भट्टी से तप कर निकले खरे सोने हो चुके होंगे। वह दिन जल्दी ही आयेगा

संतोष, उसमें अधिक देर नहीं है। घबराओ नहीं।"

"अब क्या बाहर निकलेंगे विनय ? अब बाहर निकलना भी नहीं चाहते। अगर इसी तरह बाहर निकलना हो तो मैं यही पसन्द करूँगा कि इस अस्पताल में ही तिल तिल कर समाप्त हो जाऊँ। विनय, मैं तुमसे सच कहता हूँ, अब तो बाहर जाने के नाम पर दिल काँपता है। बड़ी बेइज़्ज़ती, बड़ा अपमान मालूम होता है।"

"इसमें क्या अपमान है ! यह तो लड़ाई के दाँव पेंच हैं। कभी बाहर, कभी अन्दर, यह तो लगा ही रहता है। संतोष, पार्टी पूरी कोशिश कर रही है। दूसरे राजनैतिक दल भी चाहते हैं कि सभी राजनैतिक बन्दी शीघ्र से शीघ्र बाहर वापस चलें।"

"बाहर चलने की बात न करो विनय, मुझे इसमें अपमान मालूम पड़ता है। यह ख़्याल ही जैसे मेरे दिल पर हथौड़े की चोट करने लगता है।"

"कैसी बातें करते हो संतोष, अभी राष्ट्र को तुम्हारी आवश्यकता है। आज़ादी का हवनकुण्ड अभी और भी बलिदान चाहता है। उसकी लपटें अभी ढेरों रक्त मांस चाहती हैं। तुम्हारा काम समाप्त नहीं हुआ है। अभी तो वह शुरू हुआ है। पथिक क्षण भर विश्राम कर आगे बढ़ने की नीयत से ही यहाँ आते हैं। तुम प्रयत्न करो, शीघ्र से शीघ्र पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करो। तुम राष्ट्र की थाती हो। राष्ट्र का यौवन दुर्दमनीय है। तुम उसी अल्हड़ यौवन के प्रतीक हो। तुम्हारे काँधे पर भारी ज़िम्मेदारी है। ऐसे सङ्कटपूर्ण अवसर पर दिल छोटा करना कायरता है, पलायन है।" विनय की भावुकता ने उसकी वाणी को ओजमय बना दिया।

"सुनते हो मदन, विनय क्या कह रहे हैं !" संतोष ने मदन को अपनी सहायता के लिये जैसे पुकारा।

"हाँ भैया, समझने की कोशिश कर रहा हूँ।" मदन ने जबाब दिया।

"मैं ठीक कह रहा हूँ संतोष, मैं समझ बूझ कर कह रहा हूँ !

बाहर के लोग हमें सीखचों के पीछे तिल तिल कर मिटने नहीं देंगे। हमें बाहर चलना ही होगा। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, हमें अपने साथियों के पास वापस चलना ही होगा। हमारा राष्ट्र हमारा इन्तज़ार कर रहा है। माँ हमारी राह देख रही है।" विनय ने फिर दोहराया।

"लेकिन विनय, मुझे लगता है कि मैं नहीं मेरी लाश ही अब बाहर निकलेगी। मैंने यही सोचा समझा है। मुझे यही दिखाई दे रहा है। मैं सोचता हूँ यही उचित भी है। अपमान सहकर, गर्दन झुका कर उन्हीं पुरानी सड़कों पर, गलियों में इधर उधर घूमने से कहीं अच्छा होगा कि हम यहीं इसी जेल की चारदिवारी के भीतर दफ़न हो जाँये। विनय, यह कोरी भावुकता की बात नहीं है। मैं तुमसे सच कह रहा हूँ, मुझे विश्वास है कि अब मैं बाहर ज़िन्दा वापस नहीं जा सकता। मैं जाना भी नहीं चाहता।" उदास हो संतोष ने आँखे बन्द कर लीं।

मदन से विनय ने कहा, "अच्छा, अब मैं जाता हूँ। शीघ्र ही पंडित जी ड्यूटी पर आ जायेंगे। अगर किसी ख़ास चीज़ की ज़रूरत हो तो नम्बरदार से कहलवा देना। बैरक से पंडित जी के हाथ फल वग़ैरह भेज दूँगा।" मदन के पास और नज़दीक जाकर कान में विनय ने कहा, "जब तक मैं रहूँगा, संतोष की चिन्ता कम न होगी। इसी लिये मैं भाग रहा हूँ। तुम भी ज़रा देखना।" कह कर विनय उठा और चुपके से कमरे के बाहर हो गया।

संतोष आँखें बन्द किये किये सो गया। लेकिन जल्दी ही उसकी नींद फिर खुल गई। उसने पुकारा विनय को।

"विनय भैया तो चले गये। पंडित जी आते होंगे थोड़ी देर में। क्या बात है? आऊँ उठ कर?" मदन ने व्यग्रता से पूछा।

"यह बुरा हुआ। मेरा जी बहुत घबरा रहा है मदन। सो गया था, न मालूम क्या अन्ट शन्ट सपना देखने लगा। घबराहट में आँख खुल गई। मुझे बुख़ार सा चढ़ता आ रहा है।"

मदन बहुत कोशिश कर के उठा और सरकते सरकते किसी तरह

संतोष के पास पहुँचा। माथे पर हाथ रखा तो मालूम हुआ बोख़ार तेज़ है। मदन घबरा गया। वह उठ कर दरवाज़े पर आया और नम्बरदार को बुलाने लगा। नम्बरदार को बुला उसने डाक्टर को ख़बर करने को सहेजा।

डाक्टर संतोष की जाँच कर ही रहे थे कि पंडित जी आ गये। डाक्टर ने अच्छी तरह देख कर कहा, "नथिंग टू वरी एबाउट (परेशानी की कोई बात नहीं है)। साधारण मलेरिया है। ठीक हो जायेगा।"

नुसख़ा लिख कर डाक्टर चले गये और कम्पाउडर दवा लाने गया। पंडित जी संतोष के माथे पर हाथ धरे चुपचाप बैठे रहे। संतोष को इससे शान्ति और सान्त्वना मिली। विनय न सही, पंडित जी तो हैं ही। उसने अपना हाथ पंडित जी के हाथ पर धर दिया।

तीन दिन बाद संतोष का बुख़ार उतर गया। लेकिन उसकी कमज़ोरी बढ़ गई। ज़बान का ज़ायक़ा भी ख़राब हो रहा। शाम के वक़्त ९९° तक बोख़ार हो जाता। उसकी दवा होती रही। डाक्टर की राय थी कि टेम्परेचर कमज़ोरी की वजह से है। कमज़ोरी दूर होते ही बुख़ार भी दूर हो जायेगा।

साथी बन्दियों ने अपने राशन में से अधिक दूध और फल कटवा कर संतोष को देना शुरू कर दिया। इस कम बुख़ार से सभी चिन्तित और व्यग्र थे। अस्पताल की दवा का किसी को भरोसा न था। रँगा हुआ पानी और दवा दो चीज़ें हैं। संतोष को क्या दिया जा रहा है इसका पता बन्दियों को न था। यह एक गोपनीय बात थी जिसे छिपाना डाक्टर का कर्तव्य था और जिससे बन्दियों का कोई सम्बन्ध न था। इसका पता पाने का उन्हें अधिकार न था। और दो हफ़्ते हो गये लेकिन संतोष का टेम्परेचर चलता ही गया। उसकी कमज़ोरी बढ़ती गई। डाक्टर से कहने पर उत्तर मिला, "मि० संतोष चिन्ता बहुत करते हैं। चिन्ता करना छोड़ दें और हँसी ख़ुशी से रहें तो बुख़ार आप ही आप भाग जाय।" डाक्टर के उत्तर से किसी को संतोष हो

था न हो, लेकिन उनके पास कुछ और कहने को था नहीं।

पन्द्रह दिन और बीते। सन्तोष की आँखें धँस गईं। चेहरा पीला पड़ गया जिस पर कालिमा की एक छाया सी थी। उसके शरीर के घाव तो सभी अच्छे हो गये थे। लेकिन इस कमज़ोरी के कारण उसका हिलना डुलना असम्भव हो गया था। मदन अब तक अच्छा हो चुका था। लेकिन उसने अस्पताल से बैरक में जाना पसन्द नहीं किया। सन्तोष की सेवा करने के लिये ही वह अस्पताल में रुक गया।

विनय की चिन्ता बहुत बढ़ गई। उसको ख़्याल होता शायद उस दिन की बातों से संतोष बहुत दुखी हो गया, जिसके कारण उसे बुख़ार आगया। और जब उसे यह बात याद आती विनय का दिल कचोटने लगता। 'क्यों ऐसी अवस्था में उसने संतोष से गम्भीर राजनैतिक बातें कीं? मरीज़ों से भी कहीं ऐसी बातें की जाती हैं?' ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते उसका पाश्चात्ताप बढ़ता जाता, उसकी चिन्ता बढ़ती जाती। किसी भयंकर, अशुभ, अशिव भविष्य की सम्भावना उसके कलेजे को दहला जाती।

विनय ने तिकड़म से बाहर ख़बर भेजी। कहलवाया फ़ौरन ज़ोरदार प्रचार किया जाय। या तो संतोष छोड़ा जाय या उसकी दवा बाहर अस्पताल में कराई जाय। अवस्था चिन्ता जनक है। देर करने से अनर्थ हो सकता है।

बाहर ख़बर शीघ्र ही लोगों के पास पहुँच गई। कामरेड सेक्रेटरी ने ज़मीन आसमान एक कर दिया। मुस्लिम लीग, हिन्दू सभा, कम्युनिस्ट पार्टी, उदार दल, मज़दूर सभा सब तरफ़ से माँग की गई कि 'संतोष को फ़ौरन रिहा किया जाय या कम से कम बाहर अस्पताल में रख कर किसी योग्य डाक्टर से उनकी दवा कराई जाय।'

इसी सम्बन्ध में एक सर्वदली डेपूटेशन भी स्थानीय ज़िलाधीश से मिला। लेकिन वहाँ कोरा जवाब मिला। 'संतोष क्रान्तिकारी हैं। उन्हें अस्पताल में रखना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। जेल के अस्पताल में दवा की पूर्ण व्यवस्था है। वहाँ योग्य डाक्टर भी हैं। इस लिये सन्तोष को

रिहाई अथवा बाहर अस्पताल में आने की अभी फ़िलहाल आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती ।'

ख़बर जेल में पहुँची । निराशा और अपमान से सभी बन्दियों का चेहरा तमतमा उठा । अपनी परवशता, लाचारी और कमज़ोरी का अत्यन्त कटु और कठोर अनुभव उन सब लोगों को इस समय हो रहा था । ऊँची ऊँची भयानक दीवारें और मोटे मोटे लोहे के सीख़चे जैसे उनकी हिम्मत और जीवट के लिये उन्हें चुनौती दे रहे हों ।

निराश और उदास विनय अपने कमरे में पड़ा करवटें बदल रहा था । संतोष साथी था, सहकर्मी था, अभिन्न मित्र था । लाख राजनैतिक मतभेदों के होते हुये भी दोनों के दिलों में एक दूसरे के लिये कमज़ोरी छिपी थी । एक एक दिन विनय के लिये एक एक बरस के समान हो रहा था । मालूम पड़ता था कि उद्विग्नता और चिन्ता से वह पागल हो जायगा ।

जेल में हँसी खेल चहल-पहल में धीरे धीरे कमी आने लगी । सब के चेहरे पर हवाई उड़ती रहती । पंडित नरोत्तम प्रसाद, विनय तथा अन्य साथी राजबन्दी बारी बारी से संतोष की सेवा करते । मदन तो संतोष के साथ था ही । धीरे धीरे जेल डाक्टर भी निराश होने लगे । पहिले जैसी आशाप्रद बातें उनके मुँह से अब नहीं निकलती थीं । अब वे कहा करते, "कोई कसर न उठा रखूँगा । 'कोशिश कर रहा हूँ । वैसे जो होना होगा होगा ही ।"

मतई चाचा की भगवद्भक्ति अधिक मात्रा में बढ़ गई । दिन भर वे भगवान का नाम लेते और आर्त हो प्रार्थना करते, "हे प्रभू, सुन लो, मेरे संतोष भैया को दान में ही हमें दे दो । गज को ग्राह से छुड़ाने वाले, हमारी विनती सुन लो । हमने जन्म भर तुम्हारी भक्ति की, हमेशा तुम्हें ही सब कुछ जाना । भगवान, संतोष भैया को बचा दो ।"

रामदीन और कन्हई की वाणी मूक थी । छलछलाये आँखों से सब को ताकते, मुँह ढँक कर कमरे में रो लेते और भगवान से प्रार्थना

करते। चौबीस घण्टा कान लगाये संतोष भैया का समाचार सुनने की कोशिश करते।

बा० रामलाल को अक्सर दूर एकान्त में बैठे आँसू पोछते देख लोगों को दया आती। यह बूढ़ा इन बुढ़ौती के दिनों में यह मुसीबत का जीवन देखने कहाँ से आगया !

कुछ दिन और बीते और विनय चारपाई से लग गया। अधिक चर्चा न हो और लोगों का ध्यान संतोष की सेवा से बँट न जाय इस लिये विनय ने अपनी अवस्था के बारे में केवल पं० नरोत्तम प्रसाद को बताया। विनय अत्यन्त कमज़ोर और दुबला हो गया था। पेट उसका बहुत खराब रहता। मचली हरदम मालूम होती रहती। कई कई रोज़ तक वह खाना गोल कर जाया करता। दवा के नाम पर इसपगोल की भूसी के सिवा वह कुछ और इस्तेमाल न करता। 'दवा वग़ैरह का अधिक शोर करने से बेकार लोगों की परेशानी बढ़ेगी और संतोष की ओर से लोगों का ध्यान कुछ खिंच ही आयेगा।' विनय सोचता

संतोष व्यग्रता से विनय के बारे में पूछता तो उसे बता दिया जाता, 'विनय का पेट ख़राब है। एक दो रोज़ में ठीक हो जाने पर अवश्य आयेगा।' मगर एक दो रोज़ की यह अवधि लम्बी होती ही गई।

विनय ने बाहर कहलवाया, 'प्रान्तीय सरकार तक पहुँचो। अपनी पूरी ताक़त लगा दो। संतोष की जान बचानी है।' बाहर साथी घर घर जाकर हस्ताक्षर लेने लगे। रोज़ ज़िलाधीश के पास सैकड़ों हस्ताक्षरों के साथ यही माँग पहुँचती, 'संतोष को रिहा किया जाय या उनकी दवा का पूरा प्रबन्ध किया जाय। उन्हें अस्पताल में भेजा जाय या पैरोल पर छोड़ा जाय।'

शहर का डेपुटेशन प्रान्तीय गवर्नर के सलाहकार से मिला तो आश्वासन मिला, 'समस्या गंभीर अवश्य है। जाँच करने के बाद उचित कार्रवाई की जायेगी।'

यह समाचार जेल में पहुँचा तो लोगों के दिलों में आशा का थोड़ा

सा सञ्चार हुआ। निराशा के घटाटोप बादल में जैसे एक स्वर्णकिरण चमक गई। विनय ने करवट बदली और बुदबुदाया, "छूट गया संतोष तो शायद बच जाय।"

× × ×

जनवरी के आख़िरी दिन थे। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। चाय के टेबुल के पास बैठी नसीम अख़बार पढ़ रही थी। रोज़ वह अख़बार पढ़ कर छबिया, उसकी माँ और अम्मी को सुनाती। संतोष की बीमारी का हाल अक्सर अख़बार में निकलता। समाचार सुन कर सभी चुप हो रहतीं। नसीम सारी बातें समझती थी, इसलिये वह मन ही मन घुल रही थी। आज समाचार निकला था कि परसों सबेरे संतोष पैरोल पर छोड़ दिये जायेंगे। नसीम को इससे ख़ुशी हो रही थी। बाहर आकर शायद संतोष अच्छा हो जाय। लेकिन उसे यह भी मालूम था कि अवस्था नाज़ुक होने पर ही राजबन्दी छोड़े जाते हैं। इसलिये ख़ुशी होते हुये भी उसकी आशंका बढ़ गई। उसने एक बार सोचा 'चल कर उसे देखना चाहिये। उसकी तबीयत ख़राब है। कुछ भी हो, अपना ही आदमी है। उसकी ख़िदमत करना अपना फ़र्ज़ है।'

अम्मी के सामने नसीम ने अपना प्रस्ताव रखा। अम्मी कुछ कह न सकी। "क्या जवाब दूँ बेटी ! मेरी समझ में कुछ नहीं आता। जाना तो चाहिये ही तुम्हें। लेकिन पापा सुनेंगे तो उन्हें सदमा होगा। उनकी नाराज़गी भी बढ़ जायेगी। उनके ग़ुस्से और ज़िद को तुम जानती ही हो। कितने सङ्गदिल और कट्टर आदमी हैं वे।" अम्मी के शब्दों में व्यग्रता थी।

"मेरी अम्मी, मैं यह सब जानती हूँ", नसीम ने कहा। "पापा मुझ से ख़ुश ही कब थे ? वे मुझे अपना दुश्मन और ख़ान्दान का नाम डुबाने वाली समझते हैं। उनसे ख़ुशी ख़ुशी इजाज़त की उम्मीद करना ग़लत है। जाना मेरा बहुत ज़रूरी है। हम सियासी लोगों का अपना अलग घर होता है, अपना अलग कुनबा जो कि सोसाइटी के आम घरों और कुनबों से अलग होता है। हम एक दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं,

ऐसे जैसे कि आम लोग नहीं कर सकते। लेकिन वक़्त ज़रूरत पर फिर हम लोग एक हो जाते हैं ऐसे जैसे कि आम लोग नहीं हो सकते। सन्तोष की हालत ख़राब है। मालूम नहीं उन्हें किस तरह की ख़िदमत की ज़रूरत हो। अम्मी, मेरा वहाँ पहुँच जाना बहुत ज़रूरी है। तुम मुझे जाने दो।" नसीम ने विनती की आजिज़ी से।

"जैसा चाहो बेटा, मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहती। तुम जो ठीक समझो करो। ख़ुदा करे तुम्हारे सन्तोष बाबू को जल्दी सेहत मिले।" अम्मी ने दुआ दी।

छबिया चुपचाप बैठी रही। उसकी माँ ने पूछा, "और हम लोग?"

"तुम यहाँ रहो माँ! अम्मी के साथ तुम मज़े में रहोगी। छबिया और अकबर को मैं लिये जाती हूँ। जल्दी ही वापस आजाऊँगी। ख़त भी भेजती रहूँगी। घबराना नहीं।"

"अच्छा।" छबिया की माँ ने छबिया की ओर देखा, फिर नसीम की ओर। "हो सके तो विनय भैया, मदन और उन लोगों की ख़बर लेना।" छबिया की माँ ने फिर कहा, अबकी बार उसने एक सर्द आह भी खींची। सन्तोष का हाल सुनकर उसे अपने लोगों के स्वास्थ्य के लिये भी आशंका होने लगी थी। लेकिन इस समय कुछ भी कहना अनुचित था इसलिये उनका हाल जानने के लिये ही कह कर वह चुप हो गई। नसीम ने आश्वासन दिया कि वह पूरी कोशिश करके उनकी तन्दुरुस्ती का पता लगायेगी।

नसीम तैयारी करने लगी। बाहर तार वाले ने आवाज़ दी तो नसीम डर गई। काँपते हाथों से उसने फ़ार्म पर दस्तख़त किया और तार खोला। "पहिली गाड़ी से ही चली आओ, काम ज़रूरी है—फ़ज़ल।" अपने पार्टी सेक्रटरी का इस प्रकार का तार उसे शुभ न जान पड़ा। वह उदास हो गई बहुत ज़्यादा। विनय की तसवीर उसकी आँखों के सामने नाच उठी। मदन का सदा मुस्कराता मुखड़ा उसे स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा।

तार लेकर वापस आई तो छबिया, अम्मी, छबिया की माँ उत्सुक हो नसीम का चेहरा देख रही थीं। सबकी सब घबरा गई थीं। लेकिन क्या बात है, तार में क्या लिखा है, इसे पूछने की हिम्मत किसी की नहीं हुई। तार डर की चीज़ है ही। एक बार तार का नाम सुन कर दिल थर्रा उठता ही है, बाद में चाहे उसमें शादी का शुभ सँदेसा ही लिखा हुआ क्यों न मिले। व्यग्र हो नसीम ने बताया, "साफ़ कुछ नहीं लिखा है। कामरेड फ़ज़ल का तार है। लिखा है 'जल्दी चली आओ, पहिली गाड़ी से।' मैं परेशान हूँ। कुछ समझ में नहीं आता। कामरेड को चाहिये था कि साफ़ साफ़ लिखते। ख़ैर, छबी सब तैयारी कर लो। ट्रेन छूटनी नहीं चाहिये। अकबर कहाँ है? उसे भी सहेज दो, चटपट सामान ठीक कर ले।"

छबिया चुपचाप अकबर से कहने चली गई। अम्मी जान और छबिया की माँ यों ही उदास सी नसीम के सामान बँधवाने में मदद देने लगीं। अकबर ने भी जल्दी की। सामान ठीक हो गया।

नसीम ने जाने की इजाज़त माँगी। अम्मी ने कहा, "पापा के पास हो आओ बेटा, उनसे मिलकर जाओ।"

पहिले तो नसीम सकुची लेकिन फिर हिम्मत बाँधकर वह छबिया के साथ पापा के पास गई। उनको हाल बताया और जाने की इजाज़त माँगी। पापा का चेहरा तमतमा उठा लेकिन वे अपने को रोक ले गये। इतना ही कहा, "जाओ, अच्छी रहो।" नसीम ने सलाम किया और छबिया ने भी और दोनों वापस लौट आईं।

घर से चलते समय वही हृदयद्रावक दृश्य उपस्थित हुआ जो माँ बेटियों के बिछोह के समय अक्सर हुआ करता है। अम्मी ने छबिया के सिर पर हाथ रखा, छबिया की माँ ने नसीम को आशीर्वाद दिया। दोनों बेटियाँ सामने खड़ी थीं, दोनों माँयें छलछलाती आँखों और काँपते ओठों से अचल सोहाग और सुखमय भविष्य का मूक आशीर्वाद दे रही थीं।

"माँ, अम्मी, हम दोनों जा रही हैं। आप लोगों की दुआओं का

ही हमें सहारा है। आशीष दो माँ कि हम लोग सभी मुसीबतों का हँसते खेलते सामना कर सकें। अबकी बार वापस लौटें तो तुम्हारे दामादों के साथ। इजाज़त दो माँ, अम्मी।" नसीम ने रोते रोते कहा। छबिया नसीम के पीछे खड़ी सिसक रही थी। दोनों मातायें जैसे साथ ही बोल उठीं—"जाओ बच्चो, तुम्हारा सोहाग अचल हो।"

भारी दिल से नसीम, छबिया और अकबर ट्रेन में बैठे। चलते जा रहे थे लेकिन आशंका से भयभीत, पीड़ित हृदय की धड़कन बढ़ती जा रही थी। तार की वजह से घबराहट बढ़ गई थी। या तो पार्टी के ऊपर कोई ख़ास आफ़त आई; या, विनय-मदन वग़ैरह के बारे में कोई बात है। सम्भव है संतोष के ही लिये उन्हें बुलाया हो कामरेड फ़ज़ल ने। तरह तरह की भावनायें आतीं और अपना हल्का, गहरा असर छोड़ जातीं उनके दिलों पर, उनके चेहरों पर, उनकी भाव भंगिमा पर।

काश, कि ट्रेन की गति भावनाओं की गति से मेल खाती होती! धुआँ-भाप से चलने वाली यह गाड़ी क्या इतनी तेज़ नहीं हो सकती कि बात की बात में वहाँ पहुँचा दे जहाँ की अनजान घटनायें इन तीनों प्राणियों को अपनी ओर बरबस खींचे लिये जा रही हैं!

१४

अख़बार में छपी सरकारी विज्ञप्ति का पता जेल में रहने वाले बन्दियों को चला तो उन्हें कुछ सान्त्वना मिली और उनकी विह्वलता, परेशानी और निराशा में कमी आई। उनको यह दिखाई देने लगा कि बाहर जाने से संतोष का सारा वातावरण बदल जायेगा, अच्छे डाक्टर से दवा कराई जायेगी और पानी के स्थान पर ठीक दवा दी जायेगी तो अवश्य ही धीरे धीरे संतोष अच्छा हो जायेगा। यद्यपि संतोष की अवस्था जेल ही में चिन्ताजनक बताई जा चुकी थी और जेल डाक्टर निराश हो चुका था फिर भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति की प्रबल आकांक्षा साथियों को यह सोचने के लिये मजबूर कर रही थी कि संतोष ज़रूर स्वस्थ हो जायेगा। मनुष्य की मङ्गलकामनायें स्वतः ही फलवती होने लगतीं तो क्या बात थी!

विनय को यह समाचार मिला तो जैसे स्वयं उसमें नई जान आ गई। अपने बिस्तर पर पड़ा पड़ा अनेकानेक शिव-शुभ कल्पनायें-कामनायें करता रहा। संतोष की बीमारी ने विनय के हृदय की उन तमाम ग़लत फ़हमियों को दूर कर दिया था जिनकी वजह से वह जेल के बाहर संतोष से घृणा और द्वेष करने लगा था। जेल का सहजीवन बन्दियों के आपसी द्वन्द को घटाता है और बढ़ाता भी है। पास पास रहने से लोगों की कमज़ोरियाँ और बुराइयाँ ही अधिकतर नज़र आती हैं। लेकिन जो व्यक्ति अस्वस्थ हो, और इस हद तक कि उसके जीवन-मरण का प्रश्न आ चुका हो उसके प्रति क्या द्वेष, क्या ईर्ष्या, उससे क्या प्रतिद्वन्द्विता? ऐसे सङ्कटपूर्ण अवसरों पर हृदय का सारा कल्मष धुल जाता है, सारी संवेदना और सहानुभूति प्रबल वेग से जाग उठती है। ऊपर से देखने पर लगता है कि बात बात में झगड़ने और पार्टी बन्दी करने वाले ये राजबन्दी कभी आपस में मेल कर ही नहीं सकते। लेकिन गोली और लाठी के सामने, मौत के सामने इनकी उस अटूट एकता का परिचय मिल जाता है जो उन्हें हिम्मत और जवांमर्दी से

हर एक कष्ट और कुर्बानी के लिये बल प्रदान करती है, जो उन्हें आज़ादी का अलमबरदार और क्रान्ति का अग्रदूत बना देती है। हाड़ मास का पुतला मानव, अपनी तमाम कमज़ोरियों और छल-छन्दों का शिकार मानव, उस समय कितना ऊपर उठ जाता है, उसकी मानवता कितनी उदात्त और प्रांजल हो जाती है और देवत्व के कितने नज़दीक वह पहुँच जाता है क्षण मात्र में ही, इसकी झाँकी देखना हो तो इन्हें कोई लाठियों और गोलियों के सामने या फाँसी की सज़ा सुनते समय न्यायाधीश के सामने देख ले। और सच तो यह है कि कुर्बानी की इनकी यही क्षमता ही इन अग्निपूत-अवधूतों को आज़ादी की देवी का मनोमोहक दर्शन कराती है। ये मनचले सौदाई, सिरफिरे नौजवान आज़ादी की देवी से प्रणयालिङ्गन करने की पवित्र चाह में किस प्रकार अपना प्राण होम कर देते हैं! विनय सोचता रहा।

अवसर भावुकतामय कल्पनाओं की उड़ान का था। इस समय हृदय का मस्तिष्क पर हावी हो जाना स्वाभाविक था और विनय भी अपनी अस्वस्थता और अवसादपूर्ण जीवन को भूल कर अगर गुनगुनाने लगा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। विनय अपने बिस्तर पर पड़ा पड़ा संतोष के उस 'हीरोइक' रूप का पावन दर्शन कर रहा था जो शतशः भारतीय हृदयवादी तरुणों को क्रान्ति के रङ्ग मंच पर हँस हँस कर प्राण-विसर्जन करने के लिये प्रेरणा, बल और क्षमता प्रदान करता है।

विनय को अपनी कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आईं और वह जैसे सब कुछ भूलकर गाने लगा!

"जीवन अनन्त, जीवन अनादि, जीवन अक्षय, जीवन गतिमय,
इसलिये अभय तरुणों का दल, करता जीवन का क्रय-विक्रय।
विह्वल तरुणों का मृत्यु प्रिया से, सहज समागम, प्रिय परिणय,
अन्याय, अनय पर नय की जय, निर्भय, निःसंशय, दृढ़ निश्चय।"

इन पंक्तियों को विनय ने अनेक बार दोहराया। उसे आज अपनी ही कविता में इतना रस, इतना आनन्द आ रहा था जिसकी कोई सीमा नहीं। भावुकता के ऐसे स्थल पर मनुष्य कोरी, विवादग्रस्त, राजनैतिक

विचार धाराओं को भूल सहज स्वाभाविक भावना प्रदर्शन में लग जाता है। आख़िर, राजनीति मस्तिष्क और तर्क की वस्तु होती हुई भी हृदय और भावुकता का सहारा लेती ही है। हृदय पक्ष सुदृढ़ न हो तो लाख बुद्धि सङ्कल होते हुये भी राजनीति का क्रीड़ाक्षेत्र प्राणार्पण की होड़ों से सूना ही रह जायगा। सोचने और निश्चय करने की प्रक्रिया प्राथमिक अवश्य है लेकिन उसे कार्यरूप में परिणत करने की प्रक्रिया का भी महत्व कम नहीं है। इसलिये मतभेद के होते हुए भी संतोष की कार्य प्रणाली और त्याग के प्रति विनय की श्रद्धा जाग उठी। बुद्धि लाख कहे कि संतोष ने ग़लत काम किया लेकिन हृदय उस कार्य के पीछे छिपी पवित्र भावनाओं को सराहे बिना रह नहीं सकता था। विनय की आँखों में इस समय संतोष की त्यागमय, बलिदानी 'रक्त-स्वेद-अश्रु से लथ-पथ' शरीर और आत्मा बसी हुई थी। पराधीन देश के स्वत्वों की रक्षा करने के लिये अपने प्राणों की बलि चढ़ाने वाले इन तरुणों का श्रेय किसी वर्ग अथवा समुदाय की क्रान्तिकारी देन से कम नहीं है। बलि-दानों की यह परिपाटी ही राष्ट्र की मुक्ति-प्राप्ति की गारण्टी है।

विनय अपनी चारपाई पर पड़ा अपने विचारों और भावनाओं का ताना बाना बुनता रहा। जेल जीवन के अवसादपूर्ण वातावरण से उसकी कल्पनात्मक विचार-क्रिया में जो निर्जीवता आगई थी और उसे जो यह लगने लगा था कि उसका दिमाग़ ठस हो गया है, कुछ काम नहीं करता; उसमें ओज और सजीवता आगई थी। विचारों की गति में तीव्रता और हृदय की धड़कन में तेज़ी उसकी मनोदशा की परि-चायक थी। संतोष के बाहर जाने के समाचार ने उसके टूटे दिल के तारों को छू दिया।

अन्य वन्दी संतोष को सान्त्वना देने और अपनी शुभाकांक्षा प्रगट करने अस्पताल चले गये लेकिन विनय अपने कमरे में ही पड़ा रहा। उसका उठ बैठ सकना आसान काम न था, अस्पताल तक जाने की बात ही क्या? पड़े पड़े सोचता रहा, 'अगर मैं बाहर होता तो अवश्य ही संतोष की सेवा भरपूर करता। ख़ैर अन्य पार्टी के सदस्य हैं ही, देख-

माल में कमी तो हो नहीं सकती। कामरेड फ़ज़ल ज़रूर पूरा इन्तज़ाम करेंगे। ऐसे मौक़े पर वह चूक थोड़े ही सकते हैं। लेकिन अगर नसीम इस काम को अपने हाथों में लेती तो कितना अच्छा होता! वह अपने स्नेह से ही संतोष का आधा कष्ट दूर कर देती। नसीम कितनी व्यवहार पटु, कितनी चतुर और समझदार है! इस समय उसी की ज़रूरत है। लेकिन यहाँ होगी भी वह? मैंने तो उसे घर चली जाने के लिये कह दिया था। वह यहाँ होगी ही नहीं। होती तो कितना अच्छा होता!'

नसीम की याद आते ही विनय को छबिया, नूरजहाँ, कप्तान सभी याद आने लगे। 'छबिया के दुख की कोई सीमा न थी। नैहर उजड़ गया, ससुराल उजड़ गई। कहाँ होंगी माँ बेटी! नसीम ने ज़रूर इन्त-ज़ाम किया होगा इन लोगों का। लेकिन अगर नसीम पहिले ही घर चली गई हो तो। नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। नसीम ऐसी ग़लती नहीं कर सकती। बेचारी छबिया, गाँव की भोली भाली लड़की और मुसी-बत का यह पहाड़! कैसे बर्दाश्त कर रही होगी ये सब मुसीबतें? और नूरजहाँ, उसका क्या हाल होगा! कितने स्नेह, कितनी श्रद्धा से उसने नसीम और कप्तान की सेवा की थी! संतोष की परिचर्या अगर वह कर सकी तो कितना अच्छा होगा! कप्तान अच्छा तो हो गया होगा। घाव उसके ज़रूर भर गये होंगे। मालूम नहीं बेचारा अब किन गलियों की ख़ाक छान रहा होगा!' विनय इसी प्रकार सोचता रहा। उसके विचार चलते ही रहे।

नम्बरदार ने आकर उसके हाथ में एक बन्द लिफ़ाफ़ा दिया हाथ का बना हुआ। कहा, "बाहर एक बाबू आये थे। आप तक इसे पहुँ-चाने के लिये कहा है। दूध लेने गया था। सो लेता आया। कुछ जवाब देंगे?"

विनय को आश्चर्य हुआ। लिफ़ाफ़ा में क्या है कुछ पता नहीं। ऊपर पता भी नहीं लिखा था कि उससे भेजने वाले का अन्दाज़ लगाया जा सके। विनय लिफ़ाफ़ा हाथ में लिये सोचता रहा। किसने भेजा है, क्या लिखा है? उसकी समझ में कुछ न आया।

काँपते हाथों से उसने सँभाल कर लिफ़ाफ़ा खोला। नम्बरदार बाहर जाकर बीड़ी जला रहा था। लिफ़ाफ़े में पत्र था पेन्सिल से लिखा हुआ और उसकी पुरानी अँगूठी, जिस पर उसका नाम खुदा हुआ था। पत्र नसीम का था। अँगूठी देखकर विनय की आँखें बन्द हो गईं। वह अवाक् रह गया, मूढ़, विमूक, स्तब्ध और स्तम्भित। उसकी चारपाई जैसे नदी में बहती नाव की तरह आलोड़ित हो रही थी। उसकी आँखों की ज्योति जैसे ग़ायब हो गई थी। सोचने समझने की क्षमता ही लुप्त हो गई थी। अँगूठी और लिफ़ाफ़ा हाथ ही में धरे रह गये।

नम्बरदार बीड़ी पी चुका था। आकर बोला, "बाबू जी, जवाब हो तो पहुँचा आऊँ।"

"अभी रुको," झट से विनय ने कहा। "ज़रा इधर उधर घूम आओ। पन्द्रह मिनट में जवाब दूँगा।"

नम्बरदार चला गया। विनय ने ज़ोर लगा कर पत्र पढ़ना शुरू किया:

मेरे प्रान,

घर से वापस आ गई हूँ। कामरेड ने तार देकर बुलाया था। ख़ुद भी अख़बार में संतोष की बीमारी और छूटने का हाल पढ़ कर आने को सोच रही थी। तार पहुँचा तो पहिली गाड़ी से चली आई। अपना फ़र्ज़ पूरा करूँगी, यक़ीन रखो।

छबिया और उसकी माँ मेरे साथ ही जौनपुर गई थीं। छबिया भी साथ आ गई है। माँ वहीं है। हम लोग अपने पुराने मकान में हैं। तुम्हारी बीमारी का हाल कामरेड फ़ज़ल से मिला था। बहुत परेशान हूँ। मेरे लिये अपनी तन्दुरुस्ती सँभालो।

नूरजहाँ और कप्तान की शादी तय हो गई। जोड़ी अच्छी होगी। दोनों बहुत भले और बहादुर हैं। नूरजहाँ सियासी जानकारी में ख़ूब तरक्क़ी कर गई है। सियासत समझने लगी है।

अँगूठी देखकर तुम्हें ताज्जुब भी होगा और तकलीफ़ भी। लेकिन उसे अब छिपाकर रखना ना मुमकिन था। इसे देखकर ही सारी बातें

तुम समझ गये होगे। सोचा था उसका चर्चा तुम से कभी न करूँगी। लेकिन तुम वहाँ और मैं यहाँ तुमसे दूर हूं। यह अँगूठी ही अब तक मुझे ज़िन्दा रख सकी है। मुझे यह, कब और कहाँ से मिली, इसके बारे मे मत सोचना। मैं इसे पार्टी सेक्रेटरी को दिखा चुकी हूँ। उन्होंने मेरी इल्तजा क़बूल भी करली है। तुम्हें किसी भी तरह की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं।

तुम्हारे लायक़ अपने को बना सकूँ और जब तुम बाहर आओ तो मुझे देखकर तुम्हें शर्मिन्दा और नादिम न होना पड़े इसकी पूरी कोशिश कर रही हूँ।

अँगूठी चूम कर वापस कर देना, हिफ़ाज़त से रखूँगी। दो लाइनों में जवाब भी दे देना।

तुम्हारी अपनी

न······

विनय ने पत्र कितनी बार पढ़ा यह उसे स्वयं याद नहीं। पूरा पूरा समझ पाया इसकी भी गवाही वह नहीं दे सकता था। उसने अँगूठी चूम लिया, कई बार चूमा। अपनी ही अँगूठी जिस पर अपना ही नाम खुदा हुआ था चूमते विनय को न जाने कैसा लगता। लेकिन नसीम का आदेश था, पालन करना ज़रूरी था। वह नसीम का आदेश मानने के लिये मजबूर था। ऐसे मौकों पर कहीं बुद्धि भी इस्तेमाल की जाती है!

"अँगूठी और पत्र मिला, आदेश का पालन किया। अँगूठी भेज रहा हूँ। संतोष की सेवा करना। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखूँगा। नूरी और कप्तान, छबिया आदि सभी को प्यार। तुमको भी।

वि········"

नम्बरदार को बुलाया, और लिफ़ाफ़ा भेज दिया।

यह सब विनय ने मशीन की तरह किया था। होश में नहीं, बेहोशी में। नम्बरदार के चले जाने पर उसका दिमाग़ कुछ ठीक होने लगा। उसे शान्ति मिली। तब वह सोचने भी लगा।

विनय को अपनी बूढ़ी दादी की याद आई। दादी को उसने अपने मिलने का पता बताया था। मुमकिन है दादी ने ही यह अँगूठी नसीम को दी हो। दादी के अलावा और किसी को इस अँगूठी का का पता न था। लेकिन दादी ने यह अँगूठी नसीम को क्यों दी होगी ? कैसी है दादी, कहाँ है इसका भी तो कुछ पता नहीं। इतने दिन हो गये लेकिन उसके पास जाने के लिये विनय को समय ही नहीं मिलता था। कितने संकटों का सामना करना पड़ा होगा बेचारी बूढ़ी अम्मा को। विनय को अपनी उपेक्षा की नीति पर पछतावा हो रहा था। दादी से उसे मिलते रहना चाहिये था। अब उसका क्या हाल होगा, मेरी दादी का ?

विनय को वह रात भी याद आई जब नसीम ने उसे अकबर के ज़रिये बुलवाया था और वहाँ पहुँचने पर अपने पास सो जाने के लिये प्रस्ताव किया था। बाद में अपना सब उठा लाकर वहीं रहने के लिये नसीम ने उसे मजबूर किया था। यों तो नसीम ने इसके पहिले भी अपना सम्बन्ध अत्यन्त स्नेह पूर्ण बना रखा था, लेकिन उस रात के बाद अत्यन्त निकट आती गई दिनों दिन नसीम। ऐसा क्यों हुआ ? नसीम के अन्दर यह परिवर्तन, दिनों दिन बढ़ने वाली घनिष्टता और बाद में अत्यन्त घनिष्ट, प्रेम पूर्ण सम्बन्ध और सब के बाद में ८ अगस्त की तूफ़ानी रात में, मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश में स्वयं उसकी बातें— क्या इन सब का स्त्रोत कहीं और है ? ऐसा तो नहीं कि नसीम को उसकी ज़िन्दगी के अत्यन्त गोपनीय राज़ मालूम हो चुके रहे हों इन बातों के पहिले ! नसीम का उसके हर काम में मदद करना, पार्टी के आदेश के अनुसार जनता और पुलिस के बीच में खड़ी हो कप्तान को बचाने के लिये गोली खा लेना और इन सब के बाद आज इस जेल में उसका अँगूठी भेजना—ये बातें किस चीज़ का द्योतक हैं ? श्रद्धा, स्नेह और नैकट्य के भावों से अभिभूत हो विनय सजल नेत्रों से अपने कमरे की छत की ओर देखने लगा।

उसने सोचा 'अब संतोष बाहर जायेगा और नसीम जी भर उसकी

सेवा करेगी। संतोष अगर अच्छा हो गया तो क्या बात है! अगर दुर्भाग्यवश वह न भी अच्छा हुआ तो कम से कम यह संतोष तो हो ही जायेगा कि सेवा और परिचर्या में कोई कमी नहीं बाक़ी रखी गई। नसीम-उसकी नसीमा-कितनी भाग्य शालिनी है! स्वजनों की रक्षा के लिये उसने जान की बाज़ी लगाई और गोलियों का स्वागत किया, सच्ची विराङ्गना की भाँति। आज फिर एक साथी की जान बचाने का मौक़ा आया और नसीम अपनी ड्यूटी पर डट गई। दूसरों के सङ्कट और परेशानी में काम आने में कितना संतोष और कितना गर्व होता है! मगर यदि अपनों के ही काम आने का अवसर मिले तो प्रसन्नता की सीमा ही नहीं रहती—जैसे अपनी सारी सुकृतियों का फल मिल गया हो। स्वजनों की सेवा और परिचर्या में मिलने वाला संतोष शायद अन्य किसी वस्तु से नहीं मिल सकता! सचमुच नसीम का भाग्य अच्छा है। आज ऐसा करके वह परस्पर विरोधी राजनैतिक दलों के बीच ऐसी सुनहली डोरी बाँध रही है जो अत्यन्त कोमल होते हुये भी अटूट है और जिसमें गुँथ कर हमारे राष्ट्र कर्मी ऐसी अभेद्य लोहे की दीवार बन जायेंगे जिसे छिन्न भिन्न कर सकना सबल से सबल शासक वर्ग के लिये भी कठिन ही नहीं असम्भव भी होगा।

विनय को जैसे परिस्थिति से कुछ संतोष हो चला था। यह सच था कि वह बन्दी था और वह संतोष की सेवा करने और अपनी सेवा और सद्भावना के ज़रिये उसके अपने बीच की गहरी खाई को भर देने में अपने को असमर्थ पा रहा था। फिर भी उसके स्थान पर स्वयं नसीम यह काम कर रही है और इस वजह से उसके राजनैतिक प्रतिद्वन्दी परन्तु अन्तरंग मित्र की जान बच जाने की सम्भावना अधिक बढ़ गई है यह ख़ुशी की बात थी। नसीम उसका प्रतिनिधित्व कर रही है और ऐसे संकटपूर्ण समय में बिना हिचकिचाहट अपना धर्म निबाह रही है इसके एहसास से विनय को नसीम के ऊपर या यों कहें कि स्वयं अपने ऊपर गर्व हो रहा था। विनय लेटे लेटे मंगलकामना कर रहा था, "संतोष अच्छा हो जाता तो नसीम को कितनी प्रसन्नता होती! संतोष

नसीम को मानता तो था ही। उसकी सेवा से उसे सुख मिलेगा, उसे शान्ति मिलेगी, ढाढ़स बँधेगा। नूरजहाँ की स्नेहपूर्ण सेवा-परिचर्या और नसीम की कोमल, भावुकतापूर्ण, संवेदनाशील व्यवहारकुशलता और त्यागमय ख़िदमत का अन्जाम ज़रूर अच्छा होगा। उसकी मेह-नत रायगाँ न जायेगी, उसकी सदिच्छायें ज़रूर फल लायेंगी, उसकी मंगल कामनायें संतोष को निश्चय ही उठाकर खड़ा कर देंगी।" लगता था कि अनीश्वरवादी होते हुये भी किसी अज्ञातशक्ति से विनय प्रार्थना कर रहा हो। उसका हृदय जैसे बार बार ज़ोरों से धड़क कर कह रहा हो, "संतोष अच्छा हो जाता!"

शाम हुई तो विनय दो आदमियों के सहारे अस्पताल पहुँचा। *वहाँ लोगों का ताँता लगा ही हुआ था। साथी राजबन्दियों ने संतोष* की सेवा परिचर्या में जैसे होड़ लगा रखी थी। कोई कुछ करता, कोई कुछ। ज़रा सा पानी देने को दो चार आदमी दौड़ पड़ते। संतोष ऐसी निधि था जिसकी रक्षा करना सभी अपना परम धर्म मान रहे थे। संतोष बीमार था। उसके प्राण संकट में थे। वह अपनी क़ुर्बानी से सब की आँखों का तारा बन चुका था। लोग अपनी ज़िन्दगी से अधिक क़ीमती संतोष की ज़िन्दगी को समझते थे। उस टिमटिमाते दिये को अपने आँचल में छिपाये, आँधी के प्रबल थपेड़ों से जैसे उसकी रक्षा करते हुये साथी राजबन्दियों की मानसिक अवस्था वही थी जो कि शंकालु-हृदय, भावुक, कोमलांगियों की होती है। कर्मठ, सौदाई, देश-भक्त जो निर्मोही, कट्टर और कठोरता की मूरत माने जाते हैं, जो शरीर की पीड़ा और कष्टों पर हँस देने के ही आदी हैं, संतोष के कष्ट के सामने वैसे ही द्रवित होते जा रहे थे जैसे बर्फ़ का टुकड़ा धूप के सामने, जैसे मोमबत्ती दीपशिखा के सामने।

संतोष सब कुछ देख रहा था, सब कुछ समझ रहा था। स्वजनों की सेवा-परिचर्या में चुस्ती, उनकी भावभंगी, उनके चेहरों की ओज-हीन कान्ति और असमाध्य शान्ति अनजाने ही संतोष की इस धारणा को दृढ़ किये दे रही थी कि उसका स्वास्थ्य चिन्ताजनक है। शरीर

कमज़ोर था और अनुभूति की शक्ति बढ़ गई थी। ऐसे समय जल्दी जल्दी आँखों में आँसू उमड़ ही आया करते हैं। संतोष बरबस निकलते आँसुओं को रोकने का प्रयत्न करता ही जाता। ज़्यादा बोल न पाता, इशारे से ही आवश्यक वस्तुओं को माँगता, लेकिन ओंठ उसके अक्सर काँप उठते! उसे सारी बीती बातें याद आतीं—विनय से उसकी दोस्ती के साथ साथ राजनीतिक सहकारिता और असहयोग, नसीम, फिर राजनीतिक मतभेद और घृणा की सीमा तक पहुँचने वाली प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्दिता और ग़लतफ़हमी, फलतः प्रतिहिंसा—फिर काराजीवन, बीमारी, पश्चात्ताप और आपसी सम्बन्धों में सहानुभूति और संवेदनशीलता—सारी बातें चित्रपट पर घूमती फिरती तसवीरों की भाँति उसकी आँखों के सामने नाचती रहतीं। असीम, अगाध श्रद्धा से वह अपने साथियों की ओर देखता। जिनसे उसे चिढ़ थी, जिन्हें वह नवीं अगस्त के बाद नाकारा, बड़ी बड़ी बातें करने वाला और कायर समझा करता था उन्हें अपनी सेवा में संलग्न और जुटा देख कर उसके दिल का कल्मष धुल गया था और वह अपने को उनके बिलकुल नज़दीक, बिल्कुल उनका सम्बन्धी समझने लगा था। सारे के सारे लोग कितने मधुर हो रहे थे उस समय! संतोष अपनी भावुकता के आवेग में हर व्यक्ति को सुन्दर, स्नेह-युक्त और उत्कृष्ट समझ रहा था। सबके हृदय उसे प्रेम के छलकते प्याले सरीखे दिखाई देते थे। संतोष उनका था और वे संतोष के। कितनी ही बार इसी विचार ने उसे रुलाया कि यह स्नेह का संसार, प्रेम का पारावार कहीं छूट तो नहीं जायेगा!

और विनय जब सामने आया तो अपने को ज़ब्त कर सकना दुस्तर हो गया संतोष के लिये। "तुम काहे को आये भैया, इतनी तकलीफ़ करके?" कहते कहते वह रो पड़ा। विनय शरीर से कमज़ोर तो था ही दिल से भी कमज़ोर हो गया था। रुँधे गले से उत्तर दिया, "यों ही, चला आया था ज़रा मिलने। कई रोज़ बाद आ सका।"

"तुम्हारे बोख़ार का क्या हाल है?" पतली काँपती आवाज़ में

संतोष ने पूछा ।

"अच्छा है, अब तो नहीं आता । कमज़ोरी थोड़ी बहुत है । ठीक हो जायेगी जल्दी ही ।" सब कुछ एक साँस में विनय ने इसलिये कह दिया कि संतोष को अधिक पूछना न पड़े ।

"अच्छा ।" कहकर संतोष ने फिर आँखें बन्द कर लीं ।

विनय ने आँखें उठाकर मदन की ओर देखा । मदन की डबडबाई आँखें जैसे कह रही हों "विनय, तुम मानो या न मानो, हमारे लिये कोई और रास्ता न था । संतोष के जीवन की बलि देने पर भी मुझे इसका पछतावा नहीं है ।" मदन की आँखों से जिस गर्व, निष्ठा और आत्म विश्वास की सूचना मिल रही थी, उससे विनय को संतोष हुआ । विनय ने आँखें नीची कर लीं ।

विनय पास में ही कुर्सी पर थोड़ी देर बैठा रहा । बैरिक बन्द होने का समय आया तो विनय ने मदन से कहा, "अच्छा, अब तो चलता हूँ मदन, तुम भाग्यशाली हो, स्वजनों की सेवा का बहुमूल्य अवसर तुम्हें सहज ही सुलभ हो गया । एक मैं हूँ कि इसी जेल में रहते हुये भी अपने साथी की सेवा न कर सका । ख़ैर, संतोष शीघ्र ही आरोग्य लाभ करें यही कामना है ।"

मदन चुपचाप खड़ा खड़ा विनय की ओर देखता रहा ।

संतोष ने सिर घुमाया । "जा रहा हूँ भैया, सुबह फिर आ जाऊँगा ।" मदन की ओर देखकर कहा, "सुबह आठ नौ बजे तक जायेंगे बाहर संतोष ?"

"हाँ और क्या ?" मदन ने कहा ।

"अच्छा मैं सबेरे ही आ जाऊँगा ।" कह कर विनय बाहर की ओर पैर उठाने वाला ही था कि संतोष ने उँगली के इशारे से विनय को अपनी ओर बुलाया । विनय संतोष के पास आकर झुक गया । संतोष ने उसका दाहिना हाथ अपने ओठों के पास ले जाकर चूम लिया और उसे अपने सीने पर एक दो मिनट दबाये रहा । फिर धीरे से कहा, "अच्छा, अब जाओ ।" और उसका हाथ ढीला कर दिया ।

विनय ने दूसरी ओर आँखें कर आँसू पोंछे और हाथ जोड़, नमस्कार कर, कमरे के बाहर हो गया।

लौटते समय विनय की उदासी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। संतोष के चेहरे पर एक काली छाया सी उसने देखी थी। आँखों के चारों ओर गढ़े पड़ गये थे जो कि गहरे काले थे। आँखें निष्प्रभ, ज्योतिहीन सी मालूम पड़ रही थीं। विनय डर गया था। रास्ते भर व्याकुल और चिन्तित हो वह सोचता रहा।

बैरक में खाना खाने के बाद विनय के ही कमरे में सब लोग इकट्ठे हुये। उनकी उदासी और शान्ति-समन्वित गंभीरता किसी आगामी अघट घटना का सूचक थी। विनय अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ था। पंडित जी स्टूल पर बैठे हुये थे। सभी जाड़े की वजह से सिकुड़े थे। कल संतोष बाहर आयेगा इसी बात का चर्चा चल रहा था सभी ओर। पंडित जी वगैरह भी बैठे इसी के बारे में सोच रहे थे।

"तुम्हारी तबीयत का क्या हाल है, विनय भैया?" मतई चाचा ने पूछा।

"ठीक है, मुझे क्या हुआ है? पेट ठीक हो जाय तो सब कुछ ठीक हो जाय। लेकिन यहाँ जेल में बैठे बैठे पेट का ठीक होना असम्भव है। मिचली भी आती रहती है। परेशान हो गया हूँ।" विनय ने कहा।

"विनय, अब तुम्हारी भी फ़िक्र होनी चाहिये। मुझे लगता है कि हम लोगों की लापरवाही से ही संतोष की तन्दुरुस्ती इतनी ख़राब हो गई। हमने शुरू से परवाह की नहीं, जब उसकी तन्दुरुस्ती इतनी बिगड़ गई तो दौड़धूप शुरू की। अब तुम भी अपना ध्यान अधिक रखो।" पंडित जी ने विनय से कहा।

"क्या ध्यान रखूँ? यहाँ कुछ हो ही नहीं सकता। अस्पताल की दवाओं का हाल आप जानते ही हैं। बाहर से दवायें आ नहीं सकतीं। इसी तरह घुट घुट कर मरना है। परवाह क्या की जाय? साधन हो तो अपने शरीर को कष्ट देकर जल्दी सुधारने की कोशिश भी की जाय।" विनय के ये निराशापूर्ण शब्द पंडित जी को लगे। चोटीले होकर वह बोले,

"ऐसी बातें क्यों कहते हो विनय ? पेट की ख़राबी तो भोजन, व्यायाम से ही ठीक होती है। तुम शाम और सबेरे टहलना शुरू करो, हल्का भोजन करो। जाड़े का समय है, निश्चय ही लाभ होगा। यह ठीक है कि यहाँ अधिक कुछ प्रबन्ध नहीं हो सकता फिर भी जैसा समय हो उसी के अनुसार काम करना चाहिये। चारपाई पर पड़े पड़े तरह तरह के तर्क वितर्कों से अपने को परेशान करने से फ़ायदा ?"

"पंडित जी, कुछ समझ में नहीं आता। हरदम पड़े रहने से दिमाग़ पर भी असर पड़ने लगता है। संतोष की बीमारी से मेरे ऊपर बहुत बुरा असर पड़ा है। संतोष मेरा साथी है। आपको मालूम है कि हम दोनों साथ साथ माधोपूर की पञ्चायत में काम किया करते थे। हमारे उसके विचारों में ज़मीन आसमान का अन्तर था, फिर भी छिपे छिपे मन के भीतर उसके लिये एक कमज़ोरी थी। आज उसकी यह दशा देख कर मुझे बहुत दुख हो रहा है। और, मैं आपसे कहता हूँ यही हाल हज़ारों संतोषों का सारे देश में हो रहा होगा। इतनी बड़ी क्रान्ति के फल-स्वरूप हमें अपमान और हानि के सिवा और मिला ही क्या ? अख़बारों से हम दूर हैं। अख़बार हमसे दूर हैं। जेलों में बन्द हमारे राष्ट्र नायकों का क्या हाल है यह किसी को नहीं मालूम। मेरी समझ में यह बीमारी अथवा ख़राब तनदुरुस्ती की समस्या संतोष अथवा अकेली मेरी नहीं है। शासक प्रतिहिंसक हो गये हैं। जेल अधिकारियों का रुख़ आप देख ही रहे हैं। अपने साथियों में एकता नहीं, मेल नहीं, उत्साह नहीं। अपनी अपनी बैरकों के कमरों में ऐसे पड़े रहते हैं जैसे दरबों में कबू-तर। सहयोगी राजनैतिक जीवन का नामोनिशान नहीं है। इन सब बातों का असर मेरे ऊपर पड़ रहा है। लेटे लेटे ये सब बातें मैं सोचा करता हूँ। दिमाग़ जाने कहाँ कहाँ चक्कर लगाया करता है। बाहर की थोड़ी बहुत ख़बरें छन कर जब यहाँ पहुँचती हैं तो और ज़्यादा जी घबराने लगता है।" विनय कहता ही जाना चाहता था।

"तो गोया तुम्हारे ही कंधों पर सारा भार है। थोड़ा सा दूसरों के सोचने के लिये भी छोड़ देते तो कैसा होता ? क्या बहुत बुरा होता ?

यह क्या तुम्हारी आदत पड़ गई। जब स्वास्थ्य ही ख़राब रहेगा तो दिमाग़ी कलाबाज़ी से क्या लाभ होगा ?" खीझकर पंडितजी ने कहा।

विनय सहम कर चुप हो गया। पंडित जी का कथन सर्वथा उचित था। लेकिन वह सम्भाव्य भी था ? बीमार का काम ही है पड़े पड़े सोचना। मतई चाचा ने बात बदलने के लिये कहा, "संतोष भैया तो अच्छे ज़रूर हो जायेंगे ? क्यों पंडित जी ?"

"देखो भाई, क्या होता है। चाहते तो हम सब यही हैं, आगे जैसी ईश्वर की मर्ज़ी। मैं तो बहुत डर रहा हूँ।" पंडित जी के ये शब्द कमरे में गूँज उठे। सभी लोग उदास थे। मतई ने मौन तोड़ा, "पंडित जी, भगवान सब अच्छा करेंगे। उनके दरबार में अन्याय नहीं हो सकता। संतोष हमारे अपने सगे हैं। उनकी हानि नहीं हो सकती। जो दूसरों की भलाई के लिये अपना सब कुछ मिटा सकता है, उसकी रच्छा परमात्मा करता है।"

"यही तो देखना है कि तुम्हारे परमात्मा में कितना दम है।" विनय ने अविश्वास से मतई चाचा की ओर देखा।

"विनय, घबराओ नहीं। संतोष अच्छा होगा। उसे अच्छा होना ही पड़ेगा। अभी उसका काम पूरा नहीं हुआ है। गोलियों की बौछार से जब वह बच निकला तो अब उसका बाल बाँका नहीं हो सकता।" आवेश और स्नेहातिरेक से पंडितजी की वाणी में कँपकपी आ गई थी।

विनय रो पड़ा। उसकी आँखें रो पड़ीं। अश्रुधार प्रवाहित होने लगी। कमरे का सारा वातावरण करुण रस से भर गया। विनय से अन्य सभी लोग बड़ी उम्र के थे। संतोष विनय का समवयस्क मित्र था, दूसरे उसे अपना बेटा या छोटा भाई समझते थे। संतोष का स्वास्थ्य अगर न सुधरा तो सब को उतनी ही बड़ी हानि होगी, जितनी बड़ी हानि अपने स्वजन के निधन से होती है। सब का दिल भारी था, सब की पलकें भीगीं थीं। सभी ठंढी साँस भरते रह रह कर।

जेल में शायद ही कोई सोया हो रातभर सुख से। नींद कहाँ से आती ? चिन्ता की ज्वाला झुलसा झुलसा कर लोगों को जगाये दे रही

थी। बहुत रात गये तक बैरकों और कमरों में यही चर्चा चलता रहा। लोग प्रसन्न थे कि संतोष बाहर जा रहा है। लेकिन वह बाहर जाकर निश्चय ही अच्छा हो जायेगा इसका क्या भरोसा? हर्ष और विषाद का यह संयोग उन्हें उद्वेलित और पीड़ित कर रहा था। करवटें बदल कर लोगों ने सबेरा किया।

सबेरा आया लेकिन उसमें स्फूर्ति न थी, प्राण न था। उठते, उभरते सूरज को उदास बादामी बादल ढँके हुये थे। काटती हुई हवा चल रही थी। लोग जल्दी जल्दी अस्पताल पहुँचे। मदन की आँखें लाल हो रही थीं। रात जागकर उसने बिताई थी। रोया भी होगा ज़रूर वह। लोग चुपचाप संतोष के बिस्तर के आसपास खड़े हो गये। संतोष की अधमुँदी आँखों ने किसी को ढूँढ़ा। वह चारों ओर किसी को ढूँढ़ पाने की कोशिश कर रही थीं। निराश हो मदन की ओर देख धीरे से उसने पूछा, "विनय?"

"आते होंगे भैया। तबीयत उनकी खराब थी न। जल्दी आ जायेंगे।" मदन ने आशा बँधाई। संतोष की आँखें रो रही थीं। वह बारबार करवटें लेने की कोशिश करता। रह रह कर मदन की ओर देखता। उसकी व्याकुल आँखें विनय को ढूँढ़ रही थीं।

विनय नम्बरदार के सहारे धीरे धीरे आया। उसे देखते ही संतोष ख़ुशी से रो पड़ा। उसके हाथ की पतली उँगली उठी जिसने इशारा किया, 'विनय मेरे पास जल्दी आओ।'

विनय संतोष के और निकट आया। उसकी भी आँखें डबडबाई हुई थीं। झुक कर उसने संतोष का माथा चूम लिया। उसका हाथ अपने हाथों में ले थोड़ी देर तक उसी प्रकार खड़ा रहा। संतोष ने झुकने का इशारा किया। विनय झुक गया। संतोष ने काँपती, रुकती, महीन आवाज़ में कहा, "विनय, मैं तो जा रहा हूँ। अच्छा होने की आशा मुझे बिल्कुल नहीं है। कब फिर मुलाक़ात होगी, होगी भी या नहीं, इसमें मुझे पूरा शक है। मैं अपनी ज़िन्दगी से निराश हो चुका हूँ। इसलिये तुमसे तीन बातें कहना चाहता हूँ। पहिली, मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में

जो भी कल्मष हो उसे निकालने की कोशिश करना। मैंने जो कुछ किया अपनी समझ में सही किया। उसके लिये मुझे गर्व है। लेकिन मैं तुम्हें देशद्रोही नहीं समझता। दूसरी, तुम बाहर निकल कर नसीम से शादी कर लेना और प्रयत्न करना कि कप्तान और नूरजहाँ का भी ब्याह हो जाय। तीसरी, जिस तरह से तुमने मेरे साथ निभाया उसी तरह कप्तान के साथ भी निभाना, उसकी देखरेख करना। इन तीन बातों के लिये तुम वचन दो।" संतोष इतने धीरे धीरे बोल रहा था कि अन्य उपस्थित राजबन्दी शायद ही उसकी बातें सुन सके हों।

विनय हर्ष विह्वल हो मुस्कराया। "इनमें से अधिकांश बातें पूरी हो चुकी हैं। कप्तान और नूरजहाँ नसीम और मेरा सम्बन्ध निश्चित हो चुका है। कप्तान के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा। निश्चिन्त हो, सुखपूर्वक तुम बाहर आओ और अपनी दवा के सहारे, हिम्मत और बहादुरी के साथ इस संकट का मुक़ाबिला करो। संतोष, तुम क्रान्तिदूत हो, अजातशत्रु हो। विश्वास मानो मौत और ज़िन्दगी की इस लड़ाई में ज़िन्दगी की जीत होना निश्चित है। तुम प्रयत्न करो। प्रयत्न सफल होगा। तुम्हारे साथी की यह मंगलकामना निष्फल न जायेगी।" कहते कहते विनय फिर भावुक हो गया। उसने संतोष का हाथ अपने कलेजे से दबा लिया। उसका माथा एक बार फिर चूमा और पीछे हट आया। संतोष ने आँखें बन्द कर लीं।

विनय थक गया था। एक ओर जाकर बैठ गया। मदन ने सारा सामान दुरुस्त कर दिया था और डाक्टर का इन्तज़ार हो रहा था। डाक्टर आया, उसने नाड़ी देखी, सीना देखा और शरीर के अन्य भागों को देखकर चला गया। स्ट्रेचर आया और कम्पाउन्डर के सहारे नम्बरदारों ने संतोष को सँभाल कर उस पर लेटाया। आगे आगे संतोष चार आदमियों के काँधों पर, स्ट्रेचर पर लेटा, चला जा रहा था। पीछे पीछे साथी राजबन्दियों की छोटी सी भीड़। सभी का सिर झुका हुआ। कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र आर्द्र था। दृश्य कैसा था इसका वर्णन न करना ही अधिक शुभ होगा।

फाटक पर पहुँच कर स्ट्रेचर नीचे उतारा गया। पं० नरोत्तमप्रसाद सिरहाने खड़े थे। पैर की तरफ़ मदन और आसपास मतई चाचा वग़ैरह। साथी राजबन्दियों ने एक बार फिर संतोष की ओर देखा जैसे उनकी आँखें चाहती थीं कि संतोष उनमें समा जाय। संतोष ने हाथ उठाने का प्रयत्न किया और किसी प्रकार काँपते काँपते सबको नमस्कार किया। सबने हाथ जोड़ कर बिदा किया। मदन ने पैर छुआ। पं० नरोत्तम प्रसाद ने आशीर्वाद दिया और मतई चाचा ने भगवान को याद किया। संतोष एक बार फिर विनय को देखना चाहता था। विनय दूर खड़ा था। नम्बरदार के सहारे पास आया। संतोष ने कहा, "जाता हूँ भैया।"

"जाओ साथी, फिर मिलेंगे", विनय ने आवेश में कहा।

संतोष बुदबुदाया। आवाज़ साफ़ न निकली और स्ट्रेचर छोटे फाटक में होता हुआ बाहर चला गया।

साथी वापस लौटे। अबकी आपस में बातचीत भी नहीं हुई। सब के हृदय में एक ही बात थी—"अच्छा हो जाता संतोष किसी प्रकार।" लोग सोच रहे थे, 'क्या इतने साथियों की मंगलकामना भी फलवती न होगी? क्या संतोष बच न सकेगा?'

विनय लौटा तो उसका बोख़ार कुछ बढ़ गया था। काफ़ी थक गया था। चुपचाप अपने बिस्तर पर पड़ रहा। पंडित जी, मदन, मतई चाचा, बा० रामलाल सभी बैठे हुये थे। कुछ देर तक संतोष सम्बन्धी बातें होती रहीं। लोग विनय के स्वास्थ्य के बारे में चिन्तित होने लगे थे। विनय को इससे उलझन हो रही थी। अन्त में जब सभी लोगों ने एक साथ, एक स्वर में यही चर्चा शुरू कर दिया तो विनय बोल उठा, "आप लोग सभी एक साथ इसी का चर्चा क्यों कर रहे हैं? आप समझते हैं, मैं इस तरह तिलतिल कर मर जाऊँगा? यह असम्भव है। मेरी बीमारी का कारण मेरी मानसिक उलझन और चिन्ता है। मैं आपसे वायदा करता हूँ कि मैं अपनी बीमारी से लड़ूँगा और उसे ख़तम करके मानूँगा।"

पंडित जी मुस्करा पड़े। विनय उलझन और ग़ुस्से में भी कैसी बातें करता है!

विनय ने फिर कहा, "संतोष बाहर गया है। अगर वह अच्छा हो जाय तो मैं समझूँगा कि मैं अच्छा हो गया। संतोष की ज़िन्दगी केवल इसलिये बहुमूल्य नहीं है कि वह मेरा दोस्त है या साधारण राजनैतिक कार्यकर्ता है, बल्कि इसलिये कि वह हमारे राष्ट्र की विरोधी आत्मा का प्रतीक है। संतोष शासन-सत्ता के साथ समझौता नहीं कर सकता। बग़ावत ग़ुलाम जनता का जन्मसिद्ध अधिकार है। ग़ुलाम देश का यौवन बाग़ी न हुआ तो और क्या होगा? जवान ख़त्म हो जायेंगे। तोपों के दहाने उनके पार्थिव शरीर को भूँज डालेंगे। लेकिन जवानी ख़त्म नहीं हो सकती। जवानी—अल्हड़, मस्त, बेलौस जवानी हमारे राष्ट्र की थाती है! आंधड़ और तूफ़ान, आग और शोला, प्रलय और महाप्रलय सबका आवाहन करने वाला तरुण हृदय मुश्किलों पर हँसता है, आसानियों पर कुढ़ता है, विफलता को चुनौती समझता है, सफलता का माथा चूमने के लिये उतावला रहता है। संतोष, हाँ, एक नहीं अनेक संतोष काम आ जायेंगे। क्रान्ति मार्ग का रजकण बनकर इनकी हड्डियाँ शहादत का सबूत देने जाने वाली जनता की अपार भीड़ का पैर चूमेंगी। इस चुम्बन में बिजली का असर होगा, अमर स्फूर्ति होगी। ठिठकने वालों, रुकने वालों, झुकने वालों के पैरों में ये रजकण ख़ार बन के धँसेंगे। उन्हें सचेत करेंगे और कहेंगे, "आगे बढ़ो, अभी मंज़िल दूर है। रुकने का समय नहीं है। झुकने का नाम न लो। वह देखो, आज़ादी की देवी तुम्हारी राह देख रही है। जाओ, बढ़ो, आगे जाओ, उसका माथा चूम लो। संतोष, आह मेरा साथी, मेरा दुश्मन—नहीं, नहीं, मेरा साथी, साथी और कुछ नहीं।" पागलों के प्रलाप सी विनय की इन बातों ने जैसे बिजली कौंधा दी। सब लोग उसके चकाचौंध में आ गये। समझने न समझने का किसी को ध्यान न रहा। विमूढ़ और विमुग्ध हो वे सुनते रहे और विनय कहता गया, "आज़ादी की क़ीमत हमारी ज़िन्दगी है। हमारी राष्ट्रीय ज़िन्दगी है। हमारी

राष्ट्रीय ज़िन्दगी के प्रतिनिधि हमारे तरुण हैं। जनता को, सारे देश को उसकी ओर देखने की आदत है। और ठीक है। सफलता, असफलता हमारे चरणों की चेरी हैं। अदम्य उत्साह और बेलौस प्राणार्पण हमारी परिपाटी है। हम आज़ादी की क़ीमत जानते हैं। हम उसे देंगे। हमने उसे दिया है। जो समझते हैं कि हममें मतभेद है, हम एक नहीं हो सकते वे मूर्ख हैं, बदमाश हैं। हम एक थे, एक हैं, एक रहेंगे और हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र होगा। हमारी एकता, लौह एकता के सहारे। आह संतोष····" विनय आवेश से मूर्छित हो गया। उसकी गर्दन तकिये के पास मदन के हाथों के सहारे लटकी पड़ी थी!

× × ×

एम्बुलेन्स कार में संतोष की धूमिल आँखों ने नसीम और फ़ज़ल दोनों को देखा था। लेकिन थकावट के कारण वह उनसे कुछ भी बोल न सका। कार चली तो उसे झपकी जैसी आ गई। कार अच्छी थी, सड़क भी अच्छी। इसलिये किसी तरह का कष्ट उसे न हुआ। वह सोता ही चला गया। नसीम और फ़ज़ल भी चुप ही थे। बोलने का मौक़ा ही न था, बोलते क्या? बार बार नसीम संतोष के पीले चेहरे को देखती और आँखें फेर लेती। जमुना-पुल पर आते ही उसकी आँखें सजल हो गईं। यही जमुना की लहरें हैं जिनपर वह संतोष और विनय के साथ कितनी बार अपनी ज़िन्दगी की अच्छी से अच्छी घड़ियाँ बिता चुकी है। कितनी चाँदनी रातें आपस के आमोद-प्रमोद, जलक्रीड़ा, हसी मज़ाक़ में इसी जमुना में वह काट चुकी है। उसकी विस्मृत स्मृतियाँ जाग उठीं। उसके कलेजे में हूक उठी, दर्द हुआ टीस हुई, पीड़ा हुई और वह क्लान्त और अप्रतिभ हो गई। गुज़री हुई बातें, गुज़रे हुये फ़िसाने बड़े मीठे मालूम होते हैं। उन्हें याद करने में मज़ा आ जाता है। दर्द होता रहता है लेकिन दिल चाहता है कि याद किये ही जाओ। विगत घटनाओं की सुखद स्मृतियाँ दिल को मरोड़ती हैं, लेकिन उस मरोड़ में भी एक मिठास होती है, एक रस जो अनिर्वचनीय है, जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। और नसीम संतोष के

स्वास्थ्य की संकटपूर्ण अवस्था की भयानक, दर्दनाक पृष्ठभूमि में अपनी पुरानी बातें याद करता जा रहा था, धक्-धक्, धक्-धक् कर! मोटर चली जा रही थी !

कामरेड फ़ज़ल स्वभावतः गम्भीर और मितभाषी होने के कारण कुछ बोल न सके। संतोष को देखकर वह उदास और दुःखी थे। सोच रहे थे, इतना तगड़ा आदमी, इतना तन्दुरुस्त, हट्टा कट्टा नौजवान और यह हालत! उन्हें याद आये न मालूम कितने नौजवान जो इसी तरह तिल तिल कर जेलों में गल रहे होंगे। उन्हें याद आई वह घटनाएँ जो राजनैतिक दृष्टि से ग़लत, अव्यावहारिक और नीति विरुद्ध मानी जाती हुई भी रोमांचकारी, मार्गदर्शक, स्फूर्तिदायक थीं। अगस्त की वह नौ तारीख़, वह मंज़र, वह नज़ारा, जैसे दिये पर पतंगे टूट पड़ते हैं सिर्फ़ मिटकर जलने के लिये। विशाल जनसमूह, यह जानते हुए भी कि दमन होगा, तोपों के दहाने आग उगलेंगे, बंदूक़ों की तोपें उनके सीने पर होंगी, लाठियाँ तड़ातड़ बरसेंगी, बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। जनता के दिलों में जोश था, आज़ादी पाने की लगन थी, बेहद उत्साह था। क्या नहीं था? क़ुर्बानियों और जाँफ़िशानी का सबूत दिया लोगों ने। उसी क़ुर्बानी, जाँफ़िशानी की सजीव प्रतिमूर्ति संतोष, गोलियों की बौछार से बच कर भी आज मौत के अँधेरे गढ़ की ओर धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है। संतोष हमारी क़ौमी तहरीक का नुमाइन्दा है। वह सिरसे पैर तक हमारी क़ौम का कुचला हुआ, टूटा हुआ दिल है—वह दिल जिसमें अरमान और वलवले अभी बाक़ी हैं लेकिन उम्मीद नहीं!

कार अस्पताल पहुँची। नूरजहाँ और ज़ुबैदा बाहर ही खड़ी इन्तज़ार कर रही थीं। कार आकर संतोष के लिये पहिले से ठीक ठाक किये हुये स्पेशल वार्ड में रुकी। स्ट्रेचर आया और संतोष को बहुत सँभाल कर बिस्तर पर लेटा दिया गया। कैप्टेन सालोमन ने जाँच की। उनके चेहरे पर उदासी देख सभी काँप गये। फ़ज़ल और नसीम को अलग बुलाकर उन्होंने कहा, "केस सीरियस है। दिल बहुत कमज़ोर है।

उमेद कम है। लेकिन कोशिश करना अपना फ़र्ज़ है।" फ़ज़ल ने नसीम की ओर देखा, नसीम ने फ़ज़ल की ओर। कैप्टेन सालोमन ने विश्वास दिलाया, "ईश्वर की मर्ज़ी का कुछ ठिकाना नहीं है। दवा तो मैं करता हूँ, लेकिन अच्छा करना उसी का काम है। आप लोगों को धोखे में नहीं रखना चाहता था, इसलिये साफ़ साफ़ कह दिया।"

डाक्टर चला गया। नसीम, फ़ज़ल, छबिया परिचर्या में लग गये। लेकिन नूरजहाँ की परेशानी सबसे ज़्यादा थी। दिक्क़त यह थी कि वह चिकित्सा सम्बन्धी सारी बातें जानती थी और जो कुछ आँखों के सामने हो रहा था उसकी गंभीरता को वह समझती थी। लेकिन अपने दिल की बात वह कह भी नहीं सकती थी। कहती भी तो किससे? नसीम, छबिया, फ़ज़ल, सभी घबराये हुये थे। कैप्टेन सालोमन ने साफ़ कह दिया था कि कोई आशा नहीं है। और संतोष की हालत हर घण्टे ख़राब होती जा रही थी। नूरजहाँ भीतर ही भीतर घुट रही थी। संतोष उसके प्रेमी का, पति का नेता था। संतोष ने उसकी शादी में बाधा पहुँचाई थी तो क्या हुआ? उसने ऐसा देश के लाभ के ही लिये किया था। देश व्यक्तियों से अधिक बड़ा, अधिक महत्वपूर्ण है भी। फिर, जब कमान संतोष की इतनी पूजा करता है, उसकी इतनी इज़्ज़त करता है तो वह कैसे न करे? जिस व्यक्ति की इज़्ज़त की जाय अगर वह सङ्कट में पड़ जाय तो दिल पर क्या गुज़रती है? नूरजहाँ को कमान की बड़ी याद आई। अगर वह फ़रार न होता और यहाँ आ पाता तो संतोष को उसे देख कर कितनी ख़ुशी होती! नूरजहाँ दवा पिलाते, सेंक करते, परिचर्या करते यही सब सोचती जाती। लेकिन वह सजग और चैतन्य रहने की कोशिश करती थी। उसे परिस्थिति की भयङ्करता का पूरा अन्दाज़ था। वह क़रीब क़रीब अच्छी तरह समझती थी कि क्या होने वाला है।

छबिया को खाना बनाने का, पानी गरम करने आदि का काम सौंपा गया था। मरीज़ के पास रह कर वह अधिक काम न कर सकती थी। इतने व्यक्तियों का स्वास्थ्य ठीक रहे इसलिये ज़रूरी था कि

इनको ठीक वक़्त पर खाना मिले। छबिया चूल्हे के पास से हटने का नाम न लेती। पहिले तो वह कुछ बोल भी लेती थी, लेकिन जब से वह वार्ड में आई, उसकी ज़बान जैसे खुली ही नहीं। चुप चाप चूल्हे के पास बैठी आग तापती, पानी गरम करती या खाना बनाती। एकान्त में बैठे उसे स्वयं अपने जीवन की बीती घटनायें याद आतीं। उसका मदन का इन्तज़ार करना, जमुना तट पर दोनों की भेंट, फिर शादी, मदन की फ़रारी, चोरी, नथुआ की बदमाशी, विनय का समझाना, मदन का जेल जाना, सब कुछ उसे याद आते। लेकिन उसे यह याद न आता कि वह कितनी बार रोई और क्यों? इस समय उसकी आँखों में आँसू न थे। कलेजा भी धड़कता नहीं था। ओंठ भी हिलते न थे। कभी कभी लगता कि दिमाग़ बिलकुल ख़ाली हो गया है। फिर ऐसा लगता वह पत्थर के किसी बड़े सिल के नीचे दबा दी गई है और उसका हिलना डुलना नामुमकिन है।

अकबर बाज़ार का सौदा लाता। झाड़ू लगाता, सफ़ाई करता और ऊपर के काम करता। दिन में कई बार संतोष को देख आया। आँखें छलछलाई रहतीं लेकिन वह बोलता कुछ नहीं था। "इतने बड़े डाक्टर की दवा हो रही है। अल्लाह ने चाहा तो संतोष बाबू ज़रूर अच्छे हो जायेंगे।" अपने को विश्वास दिलाने की कोशिश करता अकबर। लेकिन इतनी लम्बी ज़िन्दगी का उसका तजरबा उसे बार बार यह मानने को मजबूर कर रहा था कि संतोष की आख़िरी घड़ियाँ आ रही हैं बहुत तेज़ी से। समझते हुये भी अकबर यह मानने को तैयार न था। यह सोचकर कि अगर ऐसा हुआ तो नसीम का क्या होगा, विनय का क्या होगा—वह पागल होने लगता, उसका दिल बैठने लगता, आँखों के सामने अँधेरा छाने लगता। अकबर नसीम को अपनी बेटी समझता था। नसीम संतोष की सेवा भरपूर कर रही थी। अकबर नसीम को देखता तो उसे विनय की याद आती वह भी तो जेल ही में है, उसी जेल में जिसमें संतोष था। सोचकर अकबर काँप उठता।

चार बजते बजते संतोष की हालत ज़्यादा ख़राब होने लगी। साँस

में अन्तर आ गया। नूरजहाँ समझ गई, अवस्था गंभीर है। वह हाउस सर्जन के पास गई। हाउस सर्जन दौड़ कर आये, हालत देखी और एक नोट लिख कर कैप्टेन सोलोमन के पास आदमी दौड़ाया। कैप्टेन सालोमन ने एक एन्जेक्शन दिया और पीने की दवा भी दी। हाउस सर्जन ने नूरजहाँ को बुला कर कहा, "इनके घरवालों को साफ़ बता देना चाहिये। वरना, एकाएक धक्का ज़्यादा ज़ोर का लगेगा।"

नूरजहाँ सिर नीचा किये खड़ी रही। हाउस सर्जन ने फिर कहा तो नूरजहाँ नसीम और फ़ज़ल को बुला लाई। हाउस सर्जन ने उन्हें बताया, "अब आपसे क्या छिपाना? भगवान से प्रार्थना कीजिये, वह सुन ले तो कुछ शायद हो सकता है। वरना, मैं नाउमेद हो चुका हूँ।"

"जो भगवान क़ौम के लाड़ले लालों को इस तरह तिल तिल करके मार सकता है, वह भगवान नहीं शैतान है उससे दुआ माँगने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ।" नसीम ने भावुकता, आवेश और घबराहट में कह दिया।

"डाक्टर साहब, अब कोई भी इन्जेक्शन या दवा हमारे संतोष को नहीं बचा सकता?" कामरेड फ़ज़ल ने पूछा।

- "नहीं, हम लोगों के बस के बाहर की बात है अब। मुझे बहुत अफ़सोस है।" कहता हुआ सिर नीचा कर डाक्टर चला गया।

नसीम कुछ भी बोल न पाई। वह फ़ज़ल के कंधे पर सिर रख कर के सुबकने लगी। दोनों ओठों को दबा वह कोशिश कर रही थी कि उसकी आवाज़ न निकले। उसका कलेजा हिल गया था। वह फूटना चाहती थी, लेकिन समय, स्थान, परिस्थिति ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। वह अपने आँसू को पीती हुई बोली, "अब क्या होगा, कामरेड!"

फ़ज़ल ने चश्मा साफ़ किया, आँखों के आँसू पोंछे और नसीम के सिर पर हाथ फेरते हुये बोले, "चलो भीतर चलें। हमें वहां रहना चाहिये।"

इन्जेक्शन ने अपना काम किया। संतोष की पुतली, बन्द होती

आँखें खुल गईं। उसकी आवाज़ भी कुछ अच्छी हो गई। शरीर में भी कुछ ज़ोर आया। उसने नसीम की ओर देखा। नसीम नज़दीक आ गई। साँय साँय करते हुये संतोष बोला, "छमिया कहाँ है? नूरी और कामरेड कहाँ हैं, बुलाओ सबको।"

सामने नूरी, छमिया, कामरेड को देखा संतोष ने तो प्रयत्न करके उनसे कहना शुरू किया, "अब मैं जा रहा हूँ। नूरी, तुम कप्तान से शादी कर लेना, कहना कप्तान से वह मुझे माफ़ करे।" ओठ सूख रहे थे संतोष के। नूरी ने पानी दिया। संतोष ने एक घूंट पानी पिया और कहा, "छबी रानी, मेरी बहिन, तुम्हें मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई। क्षमा करना। मदन वहाँ मज़े में है। जल्दी छूटेगा। और नसीम, तुमसे क्या कहूँ? तुम दोनों साथ साथ क़ौम की ख़िदमत करो। कहना विनय से—मैं उसे ग़द्दार नहीं समझता। मुझे उस पर नाज़ है। मैं अब न बचूँगा। अच्छा हुआ इस समय तुम आ गईं। अब मैं सुख से तुम्हारी गोद में हमेशा के लिये सो जाऊँगा। और कामरेड—तुम, तुमसे क्या कहूँ? मुझे अपनी करनी पर पछतावा नहीं है। उस समय मैंने जो ठीक समझा किया। साथी, जा रहा हूँ लेकिन दिल मेरा साफ़ है। तुम ख़ुश-क़िस्मत हो। तुम्हें अपने राष्ट्र की सेवा का अवसर अभी मिलेगा और मैं ......ओह, जी घबरा र......हा ... है।" संतोष की आँखें फिर झँपने लगीं। आसपास में खड़ी नसीम, छमिया, फ़ज़ल, नूरी सभी के पैरों के नीचे की धरती खिसक गई। संतोष की साँस तेज़ चलने लगी।

एक एक मिनट में हालत ख़राब होने लगी। आक्सीजन से गला थोड़ा सा साफ़ ज़रूर हुआ, लेकिन साँस ख़राब होती ही गई। अकबर ने ध्यान से देखा—साँस उल्टी चल रही थी। अब कुछ मिनटों की बात थी।

संतोष ने एक बार फिर आँख खोलने की कोशिश की। आँखें न खुल सकीं......हाथ उठाने की कोशिश की—न उठ सका.........बोलने की कोशिश की, ओठ न हिले, न खुले......और साँस तेज़ हो गई। जैसे गले से आ रही हो।

हाउस सर्जन चुपचाप पीछे से आकर देखता रहा। आक्सीजन का भी प्रभाव जाता रहा। साँस उखड़ने लगी। संतोष बेचैन था, गला घरघरा रहा था, साँस उखड़ती जा रही थी। कलेजा जोरों से हिल रहा था। ज़ोर पड़ने से ओठ रह रह कर बिचक जाते। छबिया, नसीम, नूरजहाँ, फ़ज़ल और अकबर पाँचों बेबस तमाशबीन की तरह यह सब देखते रहे।

नसीम धीरे धीरे हाय हाय कर रही थी। फ़ज़ल ने इशारा किया नसीम ने संतोष का सिर अपने हाथों में ले लिया। उसकी आख़िरी साँस उखड़ गई। गर्दन लटक गई एक ओर।

नसीम ने फ़ज़ल की ओर देखा, छबिया ने नसीम की ओर और नूरी ने संतोष की ओर। सब की आँखें सूखी थीं। सब चुप थे, स्थिर, अडोल।

